प्राप्ति-स्थान :

(१) श्री दि० जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट
पो० सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

(२) श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४ बापूनगर, पो० जयपुर (राज०)

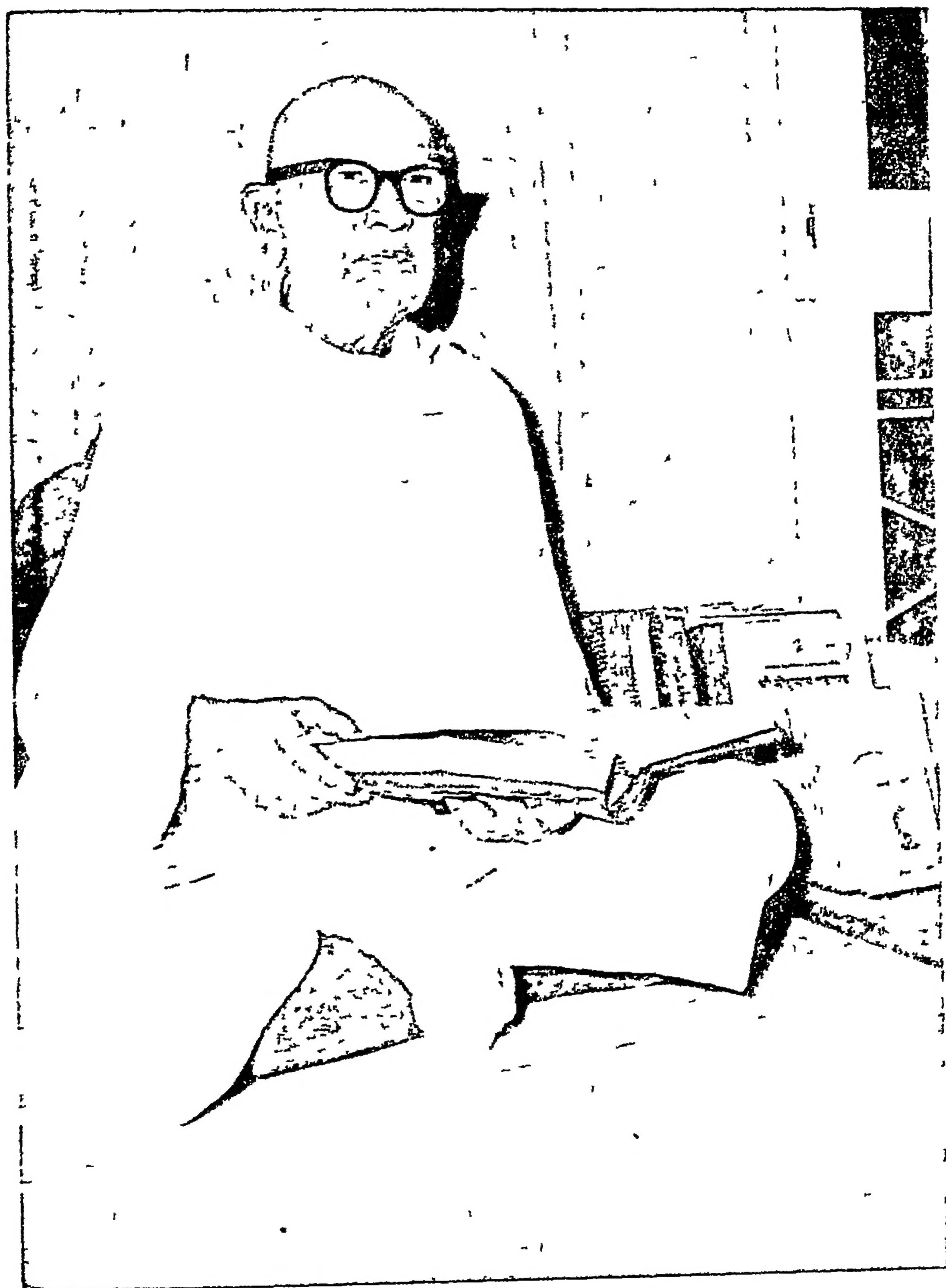
卐

ायावृत्ति
२०००

वीर नि० सं० २५०३

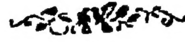
मूल्य ७)५०
[प्लास्टिक कव्हर सहित]

मुद्रक :
पाँचूलाल जैन
कमल प्रिन्टर्स
मदनगज -किशनगढ (राज०)



पू० श्री कानजी स्वामी स्वाध्याय करते हुए

प्रकाशकीय निवेदन



भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव ने श्री "समयसार" (समयप्राभृत) की रचना की उसपर श्री भगवान् अमृतचन्द्राचार्यदेव ने "आत्मख्याति" टीका लिखी। टीका मे आचार्यदेवने पद्य/कलश (जिन मन्दिर के शिखर पर सुवर्ण कलश के समान) भी लिखे। उन कलशो पर आत्मसचेतनका निर्मल रसास्वाद लेनेवाले प० श्री राजमल्लजी पाडे ने वर्तमान चालती ढूँढारी भापामे स्वतत्र टीका की। प्रत्येक श्लोक की टीका मे पडितजी ने अपूर्व अर्थ व भावका उद्घाटन किया है।

विक्रम स १६५७ मे स्वर्गीय ब्रह्मचारी श्री शीतलप्रसादजी द्वारा अनेक हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर सपादित इस ग्र थका श्री मूलचन्द किशनदास कापडिया द्वारा सूरत से प्रकाशन हुआ था। उसीके आधार पर पडित श्री फूलचन्दजी सिद्धात शास्त्री ने हिन्दी भापा मे अनुवाद किया है। सूरत से प्रकाशित प्रतिमे छूटे हुए स्थलो के सशोधन के लिए पडित फूलचन्दजी ने अकलेश्वर श्री दि० जैन समाज से तथा भगवानदास शोभालाल सागरवालो से प्राप्त हस्तलिखित प्रतियोसे सहायता ली है।

हिन्दी भापा परिवर्तनमे मूल ढूँढारी का भाव पूरी तरह से आ जाय इस अभिप्रायसे अध्यात्म मूर्ति श्री कानजी स्वामी के सानिध्य मे श्री रामजी भाई, पडित हिम्मतभाई, श्री खेमचन्द भाई, ब्रह्मचारी चन्दूभाई इत्यादि विद्वानो व श्रीमानो ने सशोधन मे सहयोग दिया है।

वर्तमान प्रकाशन श्री दि० जैन स्वाध्याय मदिर ट्रस्ट सोनगढ से प्रकाशित वि० स० २०२३ की प्रति के अनुसार किया गया है। अत हमारा ट्रस्ट स्वाध्याय मदिर ट्रस्ट, हिन्दी भापा परिवर्तनकार पडित फूलचन्दजी व उनके कार्य मे सहयोगी विद्वानो व श्रीमानो का आभारी है।

समयसार कलश टीका ग्रंथ लम्बे समयसे अप्राप्य था अतः इस ग्रन्थ मे जिज्ञासु जीवोंको आत्मलाभ मिले इस दृष्टि से हम इसका प्रकाशन करा रहे हैं। अधिक से अधिक व्यक्ति इस ग्रंथ का लाभ लेवें इस हेतु लागत कीमतसे २५ प्रतिशत कम इस ग्रंथ की कीमत रखी गई है।

अंत में हम भावना करते हैं कि इस ग्रंथ के हार्द को समझकर अंतर में तदनुरूप परिणमन होकर सर्व जिज्ञासु निराकुल सुखको प्राप्त हों।

भावनगर (गुजरात)
अष्टाह्निका
फाल्गुन शुक्ला ८
वि. सं. २०३३

विनीत :
ट्रस्टीगण
श्री वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
भावनगर (गुजरात)



टीका और टीकाकार

कविवर राजमल्ल जी

राजस्थानके जिन प्रमुख विद्वानोने आत्म-साधनाके अनुरूप साहित्य आराधनाको अपना जीवन अर्पित किया है उनमे कविवर राजमल्लजी का नाम विशेषरूपसे उल्लेखनीय है। इनका प्रमुख निवासस्थान ढूँढाहढ प्रदेश और मातृभाषा ढूँढारी रही है। सस्कृत और प्राकृत भाषाके भी ये उच्चकोटिके विद्वान् थे। सरल बोधगम्य भाषामे कविता करना इनका सहज गुण था। इन द्वारा रचित साहित्यके अवलोकन करनेसे विदित होता है कि ये स्वयको इस गुणके कारण 'कवि' पद द्वारा सबोधित करना अधिक पसन्द करते थे। कविवर बनारसीदासजीने इन्हे 'पांडे' पद द्वारा भी सबोधित किया है। जान पडता है कि भट्टारकोके कृपापात्र होनेके कारण ये या तो गृहस्थाचार्य विद्वान् थे, क्योकि आगराके आसपास क्रियाकाण्ड करनेवाले व्यक्ति को आज भी 'पांडे' कहा जाता है। या फिर अध्ययन-अध्यापन और उपदेश देना ही इनका मुख्य कार्य था। जो कुछ भी हो, थे ये अपने समयके मेधावी विद्वान् कवि।

जान पडता है कि इनका स्थायी कार्यक्षेत्र वैराट नगरका पार्श्वनाथ जिनालय रहा है। साथ ही कुछ ऐसे भी तथ्य उपलब्ध हुए है जो इस बातके साक्षी है कि ये बीच बीचमे आगरा, मथुरा और नागौर आदि नगरोसे भी न केवल अपना सम्पर्क बनाये हुए थे बल्कि उन नगरोमे भी आते-जाते रहते थे। इसमे सदेह नही कि ये अति ही उदाराशय परोपकारी विद्वान् कवि थे। आत्म-कल्याणके साथ इनके चित्तमे जनकल्याणकी भावना सतत जागृत रहती थी। एक ओर विशुद्धतर परिणाम और दूसरी ओर समीचीन सर्वोपकारिणी बुद्धि इन दो गुणोका सुमेल इनके बौद्धिक जीवनकी सर्वोपरि विशेषता थी। साहित्यिक जगतमे यही इनकी सफलताका बीज है।

ये व्याकरण, छन्दशास्त्र, स्याद्वाद विद्या आदि सभी विद्याओमे पारगत थे। स्याद्वाद और अध्यात्मका तो इन्होने तलस्पर्शी गहन परिशीलन किया था। भगवान् कुन्दकुन्द-रचित समयसार और प्रवचनसार प्रभृति पमुख ग्रन्थ इन्हे कण्ठस्थ थे। इन ग्रन्थोमे प्रतिपादित अध्यात्मतत्त्वके आधारसे जनमानसका निर्माण हो इस सदभिप्रायसे प्रेरित होकर इन्होने मारवाड़ और मेवाड प्रदेशको अपना प्रमुख कार्य क्षेत्र बनाया था। जहां भी ये जाते, सर्वत्र इनका सोत्साह स्वागत होता था। उत्तरकालमे अध्यात्मके चतुर्मुखी प्रचारमे इनकी साहित्यिक व अन्य प्रकार की सेवाऐ विशेष कारगर सिद्ध हुई।

कविवर बनारसीदासजी वि० १७ वी शताब्दीके प्रमुख विद्वान् है । जान पडता है कि कविवर राजमल्लजीने उनसे कुछ ही काल पूर्व इस वसुधाको अलकृत किया होगा । अध्यात्मगगा को प्रवाहित करनेवाले इन दोनो मनीषियोका साक्षात्कार हुआ है ऐसा तो नही जान पडता, किन्तु इन द्वारा रचित जम्बूस्वामीचरित और कविवर बनारसीदासजीकी प्रमुख कृति अर्द्ध कथानकके अवलोकनसे यह अवश्य ही ज्ञात होता है कि इनके इहलीला समाप्त करनेके पूर्व ही कविवर बनारसीदासजीका जन्म हो चुका था ।

रचनाऐं

इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी इसका सकेत हम पूर्वमे ही कर आये है । परिणाम स्वरूप इन्होने जिन ग्रन्थोका प्रणयन किया या टीकाऐ लिखी वे महत्वपूर्ण है । उनका पूरा विवरण तो हमें प्राप्त नही, फिर भी इन द्वारा रचित साहित्यमें जो सकेत मिलते हैं उनके अनुसार इन्होने इन ग्रन्थोंकी रचना की होगी ऐसा ज्ञात होता है । विवरण इस प्रकार है ·—

१ जम्बूस्वामीचरित, २ पिंगल ग्रन्थ—छदोविद्या, ३ लाटीसहिता, ४, अध्यात्मकमल मार्त्तण्ड, ५ तत्त्वार्थसूत्र टीका, ६. समयसार कलश बालबोध टीका और ७. पचाध्यायी । ये उनकी प्रमुख रचनाएँ या टीका ग्रन्थ है । यहाँ जो क्रम दिया गया है, सभवत: इसी क्रमसे इन्होने जनकल्याणहेतु ये रचनाएँ लिपिबद्ध की होगी । सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

१ कविवर अपने जीवनकालमे अनेकबार मथुरा गये थे । जब ये प्रथमबार मथुरा गये तब तक इनकी विद्वत्ताके साथ कवित्वशक्ति पर्याप्त प्रकाशमे आ गई थी । अतएव वहाँ की एक सभामे इनसे जम्बूस्वामीचरितको लिपिबद्ध करनेकी प्रार्थना की गई । इस ग्रन्थके रचे जानेका यह सक्षिप्त इतिहास है । यह ग्र थ वि० स० १६३३ के प्रारम्भके प्रथम पक्षमे लिखकर पूर्ण हुआ है । इस ग्रन्थकी रचना करानेमे भटानियाँकोल (अलीगढ) निवासी गर्गगोत्री अग्रवाल टोडर साहू प्रमुख निमित्त हैं । ये वही टोडर साहू हैं जिन्होने अपने जीवन कालमे मथुराके जैनस्तूपोका जीर्णोद्धार कराया था । इनका राजपुरुषोके साथ अति निकटका सबन्ध (परिचय) था । उनमे कृष्णामगल चौधरी और गढमल्ल साहू मुख्य थे ।

इसके बाद पर्यटन करते हुए कविवर कुछ कालके लिये नागौर भी गये थे । वहा इनका सम्पर्क श्रीमाल ज्ञातीय राजा भारमल्लसे हुआ । ये अपने कालके वैभवशाली प्रमुख राजपुरुष थे । इन्हीकी सत्प्रेरणा पाकर कविवरने पिंगलग्रन्थ—छन्दोविद्या ग्रन्थका निर्माण किया था । यह ग्रन्थ प्राकृत, सस्कृत, अपभ्र श और तत्कालीन हिन्दीका सम्मिलित नमूना है ।

३ तीसरा ग्र थ लाटीसहिता है । मुख्य रूपसे इसका प्रतिपाद्य विषय श्रावकाचार है । जैसा कि मैं पूर्वमे निर्देश कर आया हूँ कि ये भट्टारक परम्पराके प्रमुख विद्वान् थे । यही कारण है

कि इसमे भट्टारको द्वारा प्रचारित परम्पराके अनुरूप श्रावकाचारका विवेचन प्रमुखरूपसे हुआ है। २८ मूलगुणोमे जो षडावश्यक कर्म है, पूर्वकालमे व्रती श्रावकोके लिये वे ही षडावश्यक कर्म देशव्रतके रूपमे स्वीकृत थे। उनमे दूसरे कर्मका नाम चतुर्विंशतिस्तव और तीसरा कर्म वन्दना है। वर्त्तमान कालमे जो दर्शन-पूजनविधि प्रचलित है, यह उन्ही दो आवश्यक कर्मोका रूपान्तर है। मूलाचारमे वन्दनाके लौकिक और लोकोत्तर ये दो भेद दृष्टिगोचर होते है। उनमेसे लोकोत्तर वन्दनाको कर्मक्षपणका हेतु बतलाया गया है। स्पष्ट है कि लौकिक वन्दना मात्र पुण्य बन्धका हेतु है। इन तथ्यो पर दृष्टिपात करनेसे विदित होता है कि पूर्वकालमे ऐसी ही लौकिक विधि प्रचलित थी जिसका लोकोत्तर विधिके साथ सुमेल था। इस समय उसमे जो विशेष फेरफार दृष्टिगोचर होता है वह भट्टारकीय युगकी देन है। लाटीसहिताकी रचना वैराटनगरके श्री दि० जैन पार्श्वनाथ मन्दिरमे वैठकर की गई थी। रचनाकाल वि० स० १६४१ है। इसकी रचना करानेमे साहू फामन और उनके वशका प्रमुख हाथ रहा है।

४ चौथा ग्रन्थ अध्यात्मकमलमार्त्तण्ड है। यह भी कविवरकी रचना मानी जाती है। इसकी रचना अन्य किसी व्यक्तिके निमित्तसे न होकर स्वसवित्तिको प्रकाशित करनेके अभिप्रायसे की गई है। यही कारण है कि इसमे कविवरने न तो किसी व्यक्ति विशेषका उल्लेख किया है और न अपने सवन्धमे ही कुछ लिखा है। इसके स्वाध्यायसे विदित होता है कि इसकी रचनाके काल तक कविवरने अध्यात्ममे पर्याप्त निपुणता प्राप्त कर ली थी। यह इसीसे स्पष्ट है कि वे इसके दूसरे अध्यायका प्रारम्भ करते हुए यह स्पष्ट सकेत करते है कि पुण्य और पापका आस्रव और बन्ध तत्त्वमे अन्तर्भाव होनेके कारण इन दो तत्त्वोका अलगसे विवेचन नही किया है। विषय प्रतिपादनकी दृष्टिसे जो प्रौढता पचाध्यायीमे दृष्टिगोचर होती है उसकी इसमे एक प्रकारसे न्यूनता ही कही जायेगी। आश्चर्य नही कि यह ग्रन्थ अध्यात्मप्रवेशकी पूर्वपीठिकाके रूपमे लिखा गया हो। अस्तु,

५ से ७ जान पडता है कि कविवरने पूर्वोक्त चार ग्रन्थोके सिवाय तत्त्वार्थसूत्र और समयसार कलशकी टीकाएं लिखनेके वाद पचाध्यायीकी रचना की होगी। समयसार-कलशकी टीकाका परिचय तो हम आगे करानेवाले है, किन्तु तत्त्वार्थसूत्र टीका हमारे देखनेमे नही आई, इसलिए वह कितनी अर्थगर्भ है यह लिखना कठिन है। रहा पचाध्यायी ग्र थराज सो इसमे सदेह नही कि अपने कालकी सस्कृत रचनाओमे विषय प्रतिपादन और शैली इन दोनो दृष्टियोसे यह ग्र थ सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसे तो समाजका दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि कविवरके द्वारा ग्र थके प्रारम्भमे की गई प्रतिज्ञाके अनुसार पाच अध्यायोमे पूरा किया जाने वाला यह ग्रन्थराज केवल डेढ अध्याय मात्र लिखा जा सका। इसे भगवान् कुन्दकुन्द और आचार्य अमृतचन्द्रकी रचनाओका अविकल दोहन कहना अधिक उपयुक्त है। कविवरने इसमे जिस विषयको स्पर्श किया है उसकी आत्माको स्वच्छ दर्पणके समान खोलकर रख दिया है। इसमे प्रतिपादित अध्यात्मनयो और सम्यक्त्वकी प्ररूपणामे जो अद्भुत

विशेषता दृष्टिगोचर होती है उसने ग्रन्थराजकी महिमाको अत्यधिक बढा दिया है इसमे सदेह नही।

श्री समयसार परमागम

कविवर और उनकी रचनाओके सम्बन्धमे इतना लिखनेके बाद समयसारकलश वालवोध टीकाका प्रकृतमे विशेष विचार करना है। यह कविवरकी अध्यात्मरससे ओतप्रोत तत्सम्बन्धी समस्त विषयो पर सागोपाग तथा विशद प्रकाश डालनेवाली अपने कालकी कितनी सरल, सरस और अनुपम रचना है यह आगे दिये जानेवाले उसके परिचयसे भलीभाति सुस्पष्ट हो जायगा।

इसमे अणुमात्र भी सदेह नही कि श्री समयसार परमागम एक ऐसे आत्मज्ञानी महात्मा की वाणीका सुखद प्रसाद है जिनका आत्मा आत्मानुभूति स्वरूप निश्चय सम्यग्दर्शनसे सुवासित था, जो अपने जीवनकालमे ही निरन्तर पुनः पुनः अप्रमत्त भावको प्राप्त कर ध्यान, ध्याता और ध्येयके विकल्प से रहित परम समाधिरूप आत्मीक सुखका रसास्वादन करते रहते थे, जिन्हे अरिहन्त भट्टारक भगवान् महावीरकी वाणीका सारभूत रहस्य गुरु परम्परासे भले प्रकार अवगत था, जिन्होंने अपने वर्तमान जीवनकालमे ही पूर्वमहाविदेहस्थित भगवान् सीमधर स्वामीके साक्षात् दर्शनके साथ उनकी दिव्यध्वनिको आत्मसात् किया था तथा अप्रमत्त भावसे प्रमत्तभावमे आने पर जिनका शीतल और विवेकी चित्त करुणाभावसे ओतप्रोत होनेके कारण ससारी प्राणियोके परमार्थ स्वरूप हितसाधनमे निरन्तर सन्नद्ध रहता था। आचार्यवर्य्यने श्रीसमयसार परमागममे अनादि मिथ्यात्वसे प्लावित चित्तवाले मिथ्यादृष्टियोके गृहीत और अगृहीत मिथ्यात्वको छुडानेके सदभिप्रायवश द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मसे भिन्न एकत्वस्वरूप जिस आत्माके दर्शन कराये हैं और उसकी प्राप्तिका मार्ग सुस्पष्ट किया है वह पूरे जैनशासनका सार है। जिसके प्राप्त होने पर सिद्धस्वरूप आत्माकी साक्षात् प्राप्ति है और जिसके न प्राप्त होने पर भववन्धनकी रखडना है।

आत्मख्याति वृत्ति

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिस प्रकार साररूप अपूर्व प्रमेयको सुस्पष्ट करनेवाला यह ग्रन्थराज है उसी प्रकार इसके हार्दको सरल, भावमयी और सुमधुर किन्तु सुस्पष्ट रचना द्वारा प्रकाशित करनेवाली तथा बुधजनो द्वारा स्मरणीय आचार्यवर्य्य अमृतचन्द्रकी आत्मख्याति वृत्ति है। यदि इसे वृत्ति न कहकर नय विशेषसे श्रीसमयसार परमागमके स्वरूपको प्रकाशित करनेवाला उसका आत्मभूत लक्षण कहा जाये तो कोई अत्युक्ति न होगी। श्रीसमयसार परमागम की यह वृत्ति किस प्रयोजनसे निवद्ध की गई है इस तथ्यको स्पष्ट करते हुए आचार्य अमृतचन्द्र तीसरे कलशमे स्वय लिखते हैं कि इस द्वारा शुद्धचिन्मात्र मूर्तिस्वरूप मेरे अनुभवरूप परिणतिकी परम विशुद्धि अर्थात् रागादि विभाव परिणति रहित उत्कृष्ट निर्मलता होओ। स्पष्ट है कि उन द्वारा स्वग आत्मख्याति वृत्तिके विषयमे ऐसा भाव व्यक्त करना उसी तथ्यको सूचित करता है जिसका हम पूर्वमे निर्देश कर आये हैं। वस्तुत

आत्मख्यातिवृत्तिका प्रतिपाद्य विषय श्री समयसार परमागममे प्रतिपादित रहस्यको सुस्पष्ट करना है। इसलिए श्रीसमयसार परमागम और आत्मख्यातिवृत्तिमे प्रतिपाद्य प्रतिपादक सम्बन्ध होनेके कारण आत्मख्यातिवृत्ति द्वारा श्रीसमयसार परमागमका आत्मा ही सुस्पष्ट किया गया है। इसलिये नय विशेषसे इसे श्रीसमयसार परमागमका आत्मभूत लक्षण कहना उचित ही है। इसकी रचनाकी अपनी मौलिक विशेषता है। जहा यह श्रीसमयसार-परमागमकी प्रत्येक गाथाके गूढतम अध्यात्म विषयको एकलोलीभावसे आत्मसात् करने मे दक्ष है वहा यह बीच बीचमे प्रतिपादित श्री जिन-मन्दिरके कलशस्वरूप कलशोद्वारा विषयको साररूपमे प्रस्तुत करनेकी क्षमता रखती है। कलश-काव्योकी रचना आसन्न भव्य जीवोके हृदयरूपी कुमुदको विकसित करनेवाली चन्द्रिकाके समान इसी मनोहारिणी शैलीका सुपरिणाम है। यह अमृतका निर्झर है और इसे निर्झरित करनेवाले चन्द्रोपम आचार्य अमृतचन्द्र हैं। लोकमे जो अमरता प्रदान करनेवाले अमृतकी प्रसिद्धि है, जान पडता है कि अमृतके निर्झर स्वरूप इस आत्मख्यातिवृत्तिसे प्राप्त होनेवाली अमरताको दृष्टिमे रखकर ही उक्त ख्यातिने लोकमे प्रसिद्धि पाई है। धन्य हैं वे भगवान् कुन्दकुन्द, जिन्होने समग्र परमागमका दोहन कर श्रीसमयसार परमागम द्वारा पूरे जिनशासनका दर्शन कराया ! और धन्य हैं वे आचार्य अमृतचन्द्र, जिन्होने आत्मख्यातिवृत्तिकी रचना कर पूरे जिनशासनके दर्शन करानेमे अपूर्व योगदान प्रदान किया।

समयसारकलश बालबोध टीका—

ऐसे हैं ये दोनो श्री समयसार परमागम और उसके हार्दको सुस्पष्ट करनेवाली आत्मख्याति-वृत्ति। यह अपूर्व योग है कि कविवर राजमल्लजीने परोपदेशपूर्वक या तदनुरूप पूर्व सस्कारवश निसर्गत उनके हार्दको हृदयगम करके अपने जीवनकालमे प्राप्त विद्वत्ताका सदुपयोग साररूपसे निबद्ध कलशोकी बालबोध टीकाको लिपिबद्ध करनेमे किया। यह टीका मोक्षमार्गके अनुरूप अपने स्वरूपको स्वय प्रकाशित करती है, इसलिए तो प्रमाण है ही। साथ ही वह जिनागम, गुरु-उपदेश, युक्ति और स्वानुभव प्रत्यक्षको प्रमाण कर लिखी गई है, इसलिए भी प्रमाण है, क्योकि जो स्वरूपसे प्रमाण न हो उसमे परतः प्रमाणता नही आती ऐसा न्याय है। यद्यपि यह ढूँढारी भाषामे लिखी गई है, फिर भी गद्यकाव्य सम्बन्धी शैली और पदलालित्य आदि सब विशेषताओसे ओत-प्रोत होनेके कारण वह भव्यजनोके चित्तको आह्लाद उत्पन्न करनेमे समर्थ है। वस्तुत इसकी रचनाशैली और पदलालित्य अपनी विशेषता है।

इसकी रचनामे कविवर सर्व प्रथम कलशगत अनेक पदोके समुदायरूप वाक्यको स्वीकार कर आगे उसके प्रत्येक पदका या पदगत शब्दका अर्थ स्पष्ट करते हुए उसका मथितार्थ क्या है यह लिपि-बद्ध करनेके अभिप्रायसे 'भावार्थं इस्यो' यह लिखकर उस वाक्यमे निहित रहस्यको स्पष्ट करते हैं। टीकामे यह पद्धति प्राय सर्वत्र अपनाई गई है। यथा—

तत् नः अयं एकः आत्मा अस्तु—तत् कहतां तिहि कारण तहि, नः कहतां हम कहुं अयं कहतां विद्यमान छै, एक कहतां शुद्ध, आत्मा कहतां चेतन पदार्थ, अस्तु कहतां होउ । भावार्थ इस्यो–जो जीव वस्तु चेतना लक्षण तौ सहज ही छै। परि मिथ्यात्व परिणाम करि भम्यो होतो अपना स्वरूप कहु नहीं जाने छै। तिहि सहि अज्ञानी ही कहिजे । तहि तहि इसौ कह्यो जो मिथ्या परिणामके गया थी यौ ही जीव अपना स्वरूपकौ अनुभवनशीली होहु । कलश ६ ।

स्वभावतः खण्डान्वयरूपसे अर्थ लिखनेकी पद्धतिमे विशेषणो और तत्सम्वन्धी सन्दर्भका स्पष्टीकरण वादमे किया जाता है । ज्ञात होता है कि इसी कारण उत्तर कालमे प्रत्येक कलशके प्रकृत अर्थको 'खण्डान्वय सहित अर्थ' पद द्वारा उल्लिखित किया जाने लगा है । किन्तु इसे स्वय कविवरने स्वीकार किया होगा ऐसा नही जान पड़ता, क्योकि इस पद्धतिसे अर्थ लिखते समय जो शैली स्वीकार की जाती है वह इस टीकामे अविकलरूपसे दृष्टिगोचर नही होती ।

टीकामे दूसरी विशेषता अर्थ करने की पद्धतिसे सम्वन्ध रखती है, क्योकि कविवरने प्रत्येक शव्दका अर्थ प्रायः शव्दानुगामिनी पद्धतिसे न करके भावानुगामिनी पद्धतिसे किया है । इससे प्रत्येक कलशमे कौन शव्द किस भावको लक्ष्यमे रखकर प्रयुक्त किया गया है इसे समझनेमे वडी सहायता मिलती है । इसप्रकार यह टीका प्रत्येक कलशके मात्र शव्दानुगामी अर्थको स्पष्ट करनेवाली टीका न होकर उसके रहस्यको प्रकाशित करनेवाली भावप्रवण टीका है ।

इसमे जो तीसरी विशेषता पाई जाती है वह आध्यात्मिक रहस्यको न समझनेवाले महानुभावोको उतनी रुचिकर प्रतीत भले ही न हो पर इतने मात्रसे उसकी महत्ता कम नही की जा सकती । उदाहरणार्थ तीसरे कलश को लीजिए । इसमे षष्ठ्यन्त 'अनुभूतेः' पद और उसके विशेषणरूपसे प्रयुक्त हुआ पद स्त्रीलिंग होनेपर भी उसे 'मम' का विशेषण वनाया गया है । कविवरने ऐसा करते हुए 'जो जिस समय जिस भावसे परिणत होता है, तन्मय होता है' इस सिद्धान्तको ध्यान मे रखा है । प्रकृतमे सार वात यह है कि कवि अपने द्वारा किये गये अर्थद्वारा यह सूचित करते है कि यद्यपि द्रव्यार्थिक दृष्टिसे आत्मा चिन्मात्रमूर्ति है, तथापि अनुभूतिमे जो कल्मषता शेष है तत्स्वरूप मेरी परम विशुद्धि होओ अर्थात् रागका विकल्प दूर होकर स्वभावमे एकत्व बुद्धिरूप मैं परिणमूँ । सम्यग्दृष्टि द्रव्यदृष्टि होता है, इसलिए वह स्वभावके लक्ष्यसे उत्पन्न हुई पर्यायको तन्मयरूपसे ही अनुभवता है । आचार्य अमृतचन्द्र द्वारा भेद विवक्षासे किये गये कथन मे यह अर्थ गर्भित है यह कविवरके उक्त प्रकारसे किये गये अर्थका तात्पर्य है । यह गूढ रहस्य है जो तत्त्वदृष्टिके अनुभवमे ही आ सकता है ।

इस प्रकार यह टीका जहा अर्थगत अनेक विशेषताओको लिए हुए है वहा इस द्वारा अनेक रहस्योपर भी सुन्दर प्रकाश डाला गया है । यथा—

नमः समयसाराय (क० १)—समयसारको नमस्कार हो। अन्य पुद्गलादि द्रव्यो और ससारी जीवोको नमस्कार न कर अमुक विशेषणोसे युक्त समयसारको ही क्यो नमस्कार किया है ? वह रहस्य क्या है ? प्रयोजनको जाने विना मन्द पुरुष भी प्रवृत्ति नही करता ऐसा न्याय है। कविवरके सामने यह समस्या थी। उसी समस्याके समाधान स्वरूप वे 'समयसार' पदमे आये हुए 'सार' पदसे व्यक्त होनेवाले रहस्यको स्पष्ट करते हुए लिखते है—

'शुद्ध जीवके सारपना घटता है। सार अर्थात् हितकारी, असार अर्थात् अहितकारी। सो हितकारी सुख जानना, अहितकारी दुख जानना। कारण कि अजीव पदार्थ पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, कालके और संसारी जीवके सुख नहीं, ज्ञान भी नही, और उनका स्वरूप जानने पर जाननहारे जीवको भी सुख नहीं, ज्ञान भी नहीं, इसलिए इनके सारपना घटता नहीं। शुद्ध जीवके सुख है, ज्ञान भी है, उनको जानने पर—अनुभवने पर जाननहारेको सुख है, ज्ञान भी है, इसलिए शुद्ध जीवके सारपना घटता है।'

ये कविवर के सप्रयोजन भावभरे शब्द हैं। इन्हे पढते ही कविवर दौलतरामजीके छहढालाके ये वचन चित्तको आकर्षित कर लेते हैं—

तीन भुवन मे सार वीतराग विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार नमहुं त्रियोग सम्हारके ।।१।।

आतमको हित है सुख, सो सुख आकुलता बिन कहिये।
आकुलता शिवमांहि न, तातें शिवमग लाग्यो चहिये ।।

मालुम पडता है कि कविवर दौलतरामजीके समक्ष यह टीका वचन था। उसे लक्ष्यमे रखकर ही उन्होने इन साररूप छन्दोकी रचना की है।

प्रत्यगात्मनः (क० २)—दूसरे कलश द्वारा अनेकान्त स्वरूप भाववचनके साथ स्याद्वादमयी दिव्यध्वनिकी स्तुति की गई है। अतएव प्रश्न हुआ कि वाणी तो पुद्गलरूप अचेतन है, उसे नमस्कार कैसा ? इस समस्त प्रसगको ध्यानमे रखकर कविवर कहते हैं—

'कोई वितर्क करेगा कि दिव्यध्वनि तो पुद्गलात्मक है, अचेतन है, अचेतनको नमस्कार निषिद्ध है। उसके प्रति समाधान करनेके निमित्त यह अर्थ कहा कि वाणी सर्वज्ञस्वरूप-अनुसारिणी है। ऐसा माने विना भी वने नहीं। उसका विवरण—वाणी तो अचेतन है। उसको सुनने पर जीवादि पदार्थका स्वरूप ज्ञान जिस प्रकार उपजता है उसी प्रकार जानना—वाणीका पूज्यपना भी है।'

कविवरके इस वचनसे दो वातें ज्ञात होती है—प्रथम तो यह कि दिव्यध्वनि उसीका नाम है जो सर्वज्ञके स्वरूपके अनुरूप वस्तुस्वरूपका प्रतिपादन करती है। इसी तथ्यको स्पष्ट करनेके अभिप्राय-से कविवरने 'प्रत्यगात्मन्' शब्दका अर्थ सर्वज्ञ वीतराग किया है जो युक्त है। दूसरी बात यह ज्ञात होती

है कि सर्वज्ञ वीतराग और दिव्यध्वनि इन दोनोके मध्य निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। दिव्यध्वनिकी प्रमाणिकता भी इसी कारण व्यवहार पदवीको प्राप्त होती है। स्वत:सिद्ध इसी भावको व्यक्त करने-वाला कविवर दौलतरामजीका यह वचन ज्ञातव्य है—

भविभागनि वचिजोगे वसाय।
तुम धुनि ह्वै सुनि विभ्रम नसाय ॥

जिनवचसि रमन्ते (क० ४)—इस पदका भाव स्पष्ट करते हुए कविवरने जो कुछ अपूर्व अर्थका उद्‌घाटन किया है वह हृदयगम करने योग्य है। वे लिखते हैं—

'वचन पुद्‌गल है उसकी रुचि करने पर स्वरूपकी प्राप्ति नहीं। इसलिये वचनके द्वारा कही जाती है जो कोई उपादेय वस्तु उसका अनुभव करने पर फल प्राप्ति है।'

कविवरने 'जिनवचसि रमन्ते' पदका यह अर्थ उसी कलशके उत्तरार्द्धको दृष्टिमे रखकर किया है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि दोनो नयोके विषयको जानना एक बात है और जानकर निश्चय नयके विषयभूत शुद्ध वस्तुका आश्रय लेकर उसमे रममाण होना दूसरी बात है। कविवरने उक्त शब्दों द्वारा इसी आशयको अभिव्यक्त किया है।

प्राक्पदव्यां (क० ५)—अर्वाचीनपदव्या[1]—व्यवहारपदव्यां[2]। ज्ञानी जीवकी दो अवस्थाऐं होती हैं—सविकल्प दशा और निर्विकल्प दशा। प्रकृतमे 'प्राक्पदवी' पदका अर्थ 'सविकल्प दशा' है। इस द्वारा यह अर्थ स्पष्ट किया गया है कि यद्यपि सविकल्प दशामे व्यवहारनय हस्तावलम्ब है, परन्तु अनुभूति अवस्थामे (निर्विकल्प दशामें) उसका कोई प्रयोजन नही। इसी भावको कविवर इन शब्दोमे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—

'जो कोई सहजरूपसे, अज्ञानी (मन्दज्ञानी) हैं, जीवादि पदार्थोंका द्रव्य-गुण पर्याय स्वरूप जाननेके अभिलाषी हैं, उनके लिये गुण-गुणी भेदरूप कथन योग्य है।'

नवतत्त्वगतत्वेऽपि यदेकत्वं न मुञ्चति (क० ७)—जीववस्तु नौ तत्त्वरूप होकर भी अपने एकत्वका त्याग नही करती इस तथ्यको समझानेका कविवरका दृष्टिकोण अनूठा है। उन्हीके शब्दोमें पढिये—

'जैसे अग्नि दाहक लक्षणवाली है, वह काष्ठ, तृण, कण्डा आदि समस्त दाह्यको दहती है, दहती हुई अग्नि दाह्याकार होती है, पर उसका विचार है कि जो उसे काष्ठ, तृण और कण्डेकी आकृतिमे देखा जाये तो काष्ठकी अग्नि, तृणकी अग्नि और कण्डेकी अग्नि ऐसा कहना सांचा ही है। और जो अग्निकी उष्णतामात्र विचारा जाये तो उष्णमात्र है। काष्ठकी अग्नि, तृणकी अग्नि और कण्डेकी अग्नि ऐसे समस्त विकल्प झूठे हैं। उसी प्रकार नौ तत्त्वरूप जीवके परिणाम हैं। वे

---

१. पद्मनन्दीपचविंशतिका एकत्त्वसप्तति अधिकार श्लोक १६। २ उसकी टीका।

परिणाम जितने ही सत्यरूप हैं, जितने ही असत्यरूप हैं। जो तो परिणाममें ही देखा जाये तो वो ही सत्य साँचे हैं और जो वस्तुमात्र अनुभव किया जाये तो वो ही विकल्प झूठे हैं।'

इसी तथ्यको कलश ८ में स्वर्ण और वानभेदको दृष्टान्तरूपमें प्रस्तुत कर कविवरने और भी आलङ्कारिक भाषा द्वारा समझाया है। यथा—

'स्वर्णमात्र न देखा जाये, वानभेदमात्र देखा जाय तो वानभेद है; स्वर्णकी शक्ति ऐसी भी है। जो वानभेद न देखा जाय, केवल स्वर्णमात्र देखा जाय तो वानभेद झूठा है। इसी प्रकार जो शुद्ध जीव वस्तुमात्र न देखी जाय, गुण-पर्यायमात्र या उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमात्र देखा जाय तो गुण-पर्याय हैं तथा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हैं; जीव वस्तु ऐसी भी है। जो गुण-पर्याय भेद या उत्पाद व्यय-ध्रौव्य भेद न देखा जाय, वस्तुमात्र देखी जाय तो समस्त भेद झूठा है ऐसा अनुभव सम्यक्त्व है।'

उदयति न नयश्रीः (क० ९)—अनुभव क्या है और अनुभवके कालमें जीवकी कैसी अवस्था होती है इसे स्पष्ट करते हुए कविने जो वचन प्रयोग किया है वह अद्भुत है। रसास्वाद लीजिये—

'अनुभव प्रत्यक्ष ज्ञान है। प्रत्यक्ष ज्ञान है अर्थात् वेद्य-वेदकभावसे आस्वादरूप है और वह अनुभव परसहायसे निरपेक्ष है। ऐसा अनुभव यद्यपि ज्ञानविशेष है तथापि सम्यक्त्वके साथ अविनाभूत है, क्योंकि यह सम्यग्दृष्टिके होता है, मिथ्यादृष्टिके नहीं होता है ऐसा निश्चय है। ऐसा अनुभव होने पर जीववस्तु अपने शुद्धस्वरूपको प्रत्यक्षरूपसे आस्वादती है, इसलिये जितने कालतक अनुभव होता है उतने कालतक वचन व्यवहार सहज ही बन्द रहता है।'

इसी तथ्यको स्पष्ट करते हुए वे आगे पुनः लिखते हैं—

'जो अनुभवके आने पर प्रमाण-नय-निक्षेप ही झूठा है। वहाँ रागादि विकल्पोंकी क्या कथा। भावार्थ इस प्रकार है—जो रागादि तो झूठा ही है, जीवस्वरूपसे बाह्य है। प्रमाण-नय-निक्षेपरूप बुद्धिके द्वारा एक ही जीवद्रव्यका द्रव्य-गुण-पर्यायरूप अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप भेद किया जाता है, वे समस्त झूठे हैं। इन सबके झूठे होने पर जो कुछ वस्तुका स्वाद है सो अनुभव है।'

इसी तथ्यको कलश १० की टीकामें इन शब्दोंमें व्यक्त किया है—

'समस्त संकल्प-विकल्पसे रहित वस्तुस्वरूपका अनुभव सम्यक्त्व है।'

रागादि परिणाम अथवा सुख-दुःख परिणाम स्वभाव परिणतिसे बाह्य कैसे है, इसका ज्ञान कराते हुए कलश ११ की टीकामें कविवर कहते हैं—

'यहाँ पर कोई प्रश्न करता है कि जीवको तो शुद्धस्वरूप कहा और वह ऐसा ही है, परन्तु राग-द्वेष-मोहरूप परिणामोंको अथवा सुख-दुःख आदिरूप परिणामोंको कौन करता है, कौन भोगता

है ? उत्तर इस प्रकार है कि इन परिणामों को करे तो जीव करता है और जीव भोगता है। परन्तु यह परिणति विभावरूप है, उपाधिरूप है। इस कारण निजस्वरूप विचारने पर यह जीवका स्वरूप नहीं है ऐसा कहा जाता है।'

शुद्धात्मानुभव किसे कहते हैं इसका स्पष्टीकरण कलश १३ की टीकामे पढिये—

'निरुपाधिरूपसे जीव द्रव्य जैसा है वैसा ही प्रत्यक्षरूपसे आस्वाद आवे इसका नाम शुद्धात्मानुभव है ।'

द्वादशाङ्गज्ञान और शुद्धात्मानुभवमे क्या अन्तर है इसका जिन सुन्दर शब्दोमे कविवरने कलश १४ की टीकामे स्पष्टीकरण किया है वह ज्ञातव्य है—

'इस प्रसङ्गमें और भी संशय होता है कि द्वादशाङ्गज्ञान कुछ अपूर्व लब्धि है। उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि द्वादशाङ्गज्ञान भी विकल्प है। उसमे भी ऐसा कहा है कि शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग है, इसलिये शुद्धात्मानुभूतिके होनेपर शास्त्र पढ़नेकी कुछ अटक नहीं है।'

मोक्ष जानेमे द्रव्यान्तरका सहारा क्यो नही है इसका स्पष्टीकरण कविवरने कलश १५ की टीकामे इन शब्दोमे किया है—

'एक ही जीव द्रव्य कारणरूप भी अपनेमें ही परिणमता है और कार्यरूप भी अपनेमें परिणमता है। इस कारण मोक्ष जानेमें किसी द्रव्यान्तरका सहारा नहीं है, इसलिये शुद्ध आत्माका अनुभव करना चाहिये।'

शरीर भिन्न है और आत्मा भिन्न है मात्र ऐसा जानना कार्यकारी नही। तो क्या है इसका स्पष्टीकरण कलश २३ की टीकामे पढिये—

'शरीर तो अचेतन है, विनश्वर है। शरीरसे भिन्न कोई तो पुरुष है ऐसा जानपना ऐसी प्रतीति मिथ्यादृष्टि जीवके भी होती है पर साध्यसिद्धि तो कुछ नहीं। जब जीव द्रव्यका द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप प्रत्यक्ष आस्वाद आता है तब सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र है, सकल कर्मक्षय मोक्ष लक्षण भी है।'

जो शरीर सुख-दुःख रागद्वेष-मोहकी त्यागबुद्धिको कारण और चिद्रूप आत्मानुभवको कार्य मानते है उनको समझाते हुए कविवर क० २६ मे क्या कहते हैं यह उन्हीके समर्पक शब्दोमे पढिये—

'कोई जानेगा कि जितना भी शरीर, सुख, दुख, राग, द्वेष, मोह है उसकी त्यागबुद्धि कुछ अन्य है—कारणरूप है। तथा शुद्ध चिद्रूपमात्रका अनुभव कुछ अन्य है—कार्यरूप है। उसके प्रति उत्तर इस प्रकार है कि राग, द्वेष, मोह, शरीर, सुख, दुःख आदि विभाव पर्यायरूप परिणति हुए जीवका जिस कालमें ऐसा अशुद्ध परिणामरूप सस्कार छूट जाता है उसी कालमे इसके अनुभव है। उसका विवरण

—जो शुद्धचेतनामात्रका आस्वाद आये विना अशुद्ध भावरूप परिणाम छूटता नहीं और अशुद्ध संस्कार छूटे बिना शुद्ध स्वरूपका अनुभव होता नहीं। इसलिए जो कुछ है सो एक ही काल, एक ही वस्तु, एक ही ज्ञान, एक ही स्वाद है।'

जो समझते हैं कि जैनसिद्धान्तका वारवार अभ्यास करनेसे जो दृढ प्रतीति होती है उसका नाम अनुभव है। कविवर उनकी इस धारणाको कलश २० मे ठीक न वतलाते हुए लिखते हैं—

'कोई जानेगा कि जैनसिद्धान्तका वारवार अभ्यास करनेसे दृढ़ प्रतीति होती है उसका नाम अनुभव है सो ऐसा नहीं है। मिथ्यात्वकर्मका रसपाक मिटने पर मिथ्यात्वभावरूप परिणमन मिटता है तो वस्तुस्वरूपका प्रत्यक्षरूपसे आस्वाद आता है, उसका नाम अनुभव है।'

विधि प्रतिषेधरूपसे जीवका स्वरूप क्या है इसे स्पष्ट करते हुए कलश ३३ की टीकामें वतलाया है—

'शुद्ध जीव है, टंकोत्कीर्ण है, चिद्रूप है ऐसा कहना विधि कही जाती है। जीवका स्वरूप गुणस्थान नहीं, कर्म-नोकर्म जीवके नहीं, भावकर्म जीवका नहीं ऐसा कहना प्रतिषेध कहलाता है।'

हेय-उपादेयका ज्ञान कराते हुए कलश ३६ की टीकामे कहा है—

'जितनी कुछ कर्मजाति है वह समस्त हेय है। उसमें कोई कर्म उपादेय नहीं है।

इसलिये क्या कर्त्तव्य है इस वातको स्पष्ट करते हुए उसीमें वतलाया है—

'जितने भी विभाव परिणाम हैं वे सब जीवके नहीं हैं। शुद्ध चैतन्यमात्र जीव है ऐसा अनुभव कर्त्तव्य है।'

कलश ३७ की टीकामे इसी तथ्यको पुन. स्पष्ट करते हुए लिखा है—

'वर्णादिक और रागादि विद्यमान दिखलाई पड़ते हैं। तथापि स्वरूप अनुभवने पर स्वरूप-मात्र है, विभाव-परिणतिरूप वस्तु तो कुछ नहीं।'

कर्मवन्ध पर्यायसे जीव कैसे भिन्न है इसे दृष्टान्त द्वारा समझाते हुए कलश ४४ की टीकामे कहा है—

'जिस प्रकार पानी कीचड़के मिलने पर मैला है। सो वह मैलापन रङ्ग है, सो रंगको अंगी-कार न कर वाकी जो कुछ है सो पानी है। उसी प्रकार जीवकी कर्मवन्ध पर्यायरूप अवस्थामें रागादिभाव रंग है, सो रंगको अंगीकार न कर वाकी जो कुछ है सो चेतन धातुमात्र वस्तु है। इसीका नाम शुद्ध-स्वरूप अनुभव जानना जो सम्यग्दृष्टिके होता है।'

इसी तथ्यको स्पष्ट करते हुए कलश ४५ की टीकामे लिखा है—

'जिस प्रकार स्वर्ण और पाषाण मिले हुए चले आ रहे हैं और भिन्न-भिन्नरूप हैं। तथापि अग्निका सयोग जव ही पाते हैं तभी तत्काल भिन्न-भिन्न होते हैं। उसी प्रकार जीव और कर्मका

संयोग अनादिसे चला आ रहा है और जीव कर्म भिन्न-भिन्न हैं। तथापि शुद्धस्वरूप अनुभव बिना प्रगटरूप से भिन्न-भिन्न होते नहीं, जिस काल शुद्धस्वरूप अनुभव होता है उस काल भिन्न-भिन्न होते हैं।'

विपरीत बुद्धि और कर्मबन्ध मिटनेके उपायका निर्देश करते हुए कलश ४७ की टीकामे लिखा है—

'जैसे सूर्यका प्रकाश होने पर अंधकारको अवसर नहीं, वैसे शुद्धस्वरूप अनुभव होने पर विपरीतरूप मिथ्यात्व बुद्धिका प्रवेश नहीं। यहाँ पर कोई प्रश्न करता है कि शुद्ध ज्ञानका अनुभव होने पर विपरीत बुद्धिमात्र मिटती है कि कर्मबन्ध मिटता है? उत्तर इस प्रकार है कि विपरीत बुद्धि मिटती है, कर्मबन्ध भी मिटता है।'

कर्ता-कर्मका विचार करते हुए कलश ४९ की टीकामे लिखा है—

'जैसे उपचारमात्रसे द्रव्य अपने परिणाममात्रका कर्त्ता है, वही परिणाम द्रव्यका किया हुआ है वैसे अन्य द्रव्यका कर्ता अन्य द्रव्य उपचारमात्रसे भी नहीं है, क्योंकि एकसत्त्व नहीं, भिन्न सत्त्व हैं।'

जीव और कर्मका परस्पर क्या सम्बन्ध है इस तथ्यको स्पष्ट करते हुए कलश ५० की टीकामे लिखा है—

'जीव द्रव्य ज्ञाता है, पुद्गलकर्म ज्ञेय है ऐसा जीवको कर्मको ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है, तथापि व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध नहीं है, द्रव्योंका अत्यन्त भिन्नपना है, एकपना नहीं है।'

कर्ता-कर्म-क्रियाका ज्ञान कराते हुए कलश ५१ की टीकामे पुन: लिखा है—

'कर्ता-कर्म क्रियाका स्वरूप तो इस प्रकार है, इसलिये ज्ञानावरणादि द्रव्य पिण्डरूप कर्मका कर्ता जीवद्रव्य है ऐसा जानना झूठा है, क्योंकि जीवद्रव्यका और पुद्गलकर्मका एक सत्त्व नहीं; कर्ता-कर्म-क्रियाकी कौन घटना?'

इसी तथ्यको कलश ५२-५३ मे पुन स्पष्ट किया है—

'ज्ञानावरणादि द्रव्यरूप पुद्गलपिण्ड कर्मका कर्ता जीववस्तु है ऐसा जानपना मिथ्याज्ञान है, क्योंकि एक सत्त्वमें कर्ता-कर्म-क्रिया उपचारसे कहा जाता है। भिन्न सत्त्वरूप है जो जीवद्रव्य-पुद्गल-द्रव्य उनको कर्ता-कर्म-क्रिया कहाँसे घटेगा?'

'जीवद्रव्य- पुद्गलद्रव्य भिन्न सत्तारूप हैं सो जो पहले भिन्न सत्तापन छोडकर एक सत्तारूप होवें तो पीछे कर्ता-कर्म-क्रियापना घटित हो। सो तो एकरूप होते नही, इसलिये जीव-पुद्गलका आपसमे कर्ता-कर्म-क्रियापना घटित नहीं होता।'

जीव अज्ञानसे विभावका कर्ता है इसे स्पष्ट करते हुए कलश ५८ की टीकामे लिखाहै—

'जैसे समुद्रका स्वरूप निश्चल है, वायुसे प्रेरित होकर उछलता है और उछलनेका कर्ता भी होता है, वैसे ही जीव द्रव्यस्वरूपसे अकर्ता है। कर्म सयोगसे विभावरूप परिणमता है, इसलिये

विभावपनेका कर्ता भी होता है। परन्तु अज्ञानसे, स्वभाव तो नहीं।'

जीव अपने परिणामका कर्ता क्यो है और पुद्गल कर्मका कर्ता क्यो नही इसका स्पष्टीकरण कलश ६१ की टीकामे इस प्रकार किया है—

'जीवद्रव्य अशुद्ध चेतनारूप परिणमता है, शुद्ध चेतनारूप परिणमता है, इसलिये जिस कालमे जिस चेतनारूप परिणमता है उस कालमे उसी चेतनाके साथ व्याप्य-व्यापकरूप है, इसलिये उस कालमे उसी चेतनाका कर्ता है। तो भी पुद्गल पिण्डरूप जो ज्ञानावरणादि कर्म है उसके साथ तो व्याप्य-व्यापकरूप तो नहीं है। इसलिये उसका कर्ता नहीं है।'

जीवके रागादिभाव और कर्म परिणाममे निमित्त-नैमित्तिकभाव क्यो है, कर्ता-कर्मपना क्यो नही इसका स्पष्टीकरण कलश ६८ की टीकामे इसप्रकार किया है—

'जैसे कलशरूप मृत्तिका परिणमती है, जैसे कुम्भकारका परिणाम उसका बाह्य निमित्त कारण है, व्याप्य-व्यापकरूप नहीं है उसी प्रकार ज्ञानावरणादि कर्म पिण्डरूप पुद्गलद्रव्य स्वय व्याप्य-व्यापकरूप है। तथापि जीवका अशुद्धचेतनारूप मोह, राग, द्वेषादि परिणाम बाह्य निमित्त कारण है, व्याप्य-व्यापकरूप तो नहीं है।'

वस्तुमात्रका अनुभवशीली जीव परम सुखी कैसे है इसे स्पष्ट करते हुए कलश ६९ की टीकामे कहा है—

'जो एक सत्त्वरूप वस्तु है, उसका द्रव्य-गुण-पर्यायरूप, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप विचार करनेपर विकल्प होता है, उस विकल्पके होनेपर मन आकुल होता है, आकुलता दु ख है, इसलिये वस्तुमात्रके अनुभवने पर विकल्प मिटता है, विकल्पके मिटनेपर आकुलता मिटती है, आकुलताके मिटनेपर दु ख मिटता है, इससे अनुभवशीली जीव परम सुखी है।'

स्वभाव और कर्मोपाधिमे अन्तरको दिखलाते हुए कलश ९१ की टीकामे लिखा है—

'जैसे सूर्यका प्रकाश होनेपर अंधकार फट जाता है उसीप्रकार शुद्ध चैतन्यमात्रका अनुभव होनेपर यावत् समस्त विकल्प मिटते हैं। ऐसी शुद्ध चैतन्यवस्तु है सो मेरा स्वभाव, अन्य समस्त कर्मकी उपाधि है।'

नय विकल्पके मिटनेके उपायका निर्देश करते हुए कलश ९२-९३ की टीकामे लिखा है—

'शुद्ध स्वरूपका अनुभव होनेपर जिसप्रकार नयविकल्प मिटते हैं उसीप्रकार समस्त कर्मके उदय से होनेवाले जितने भाव हैं वे भी अवश्य मिटते है ऐसा स्वभाव है।'

'जितना नय है उतना श्रुतज्ञानरूप है, श्रुतज्ञान परोक्ष है, अनुभव प्रत्यक्ष है, इसलिये श्रुतज्ञान विना जो ज्ञान है वह प्रत्यक्ष अनुभवता है।'

जीव अज्ञान भावका कब कर्ता है और कब अकर्ता है इसका स्पष्टीकरण करते हुए कलश ६५ की टीकामे लिखा है—

'कोई ऐसा मानेगा कि जीव द्रव्य सदा ही अकर्ता है उसके प्रति ऐसा समाधान कि जितने काल तक जीवका सम्यक्त्व गुण प्रगट नहीं होता उतने कालतक जीव मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यादृष्टि हो तो अशुद्ध परिणामका कर्ता होता है। सो जब सम्यक्त्व गुण प्रगट होता है तब अशुद्ध परिणाम मिटता है, तब अशुद्ध परिणामका कर्ता नहीं होता।'

अशुभ कर्म बुरा और शुभ कर्म भला ऐसी मान्यता अज्ञानका फल है इसका स्पष्टीकरण करते हुए १०० की टीकामे लिखा है—

'जैसे अशुभकर्म जीवको दुःख करता है उसी प्रकार शुभकर्म भी जीवको दुःख करता है। कर्ममें तो भला कोई नहीं है। अपने मोहको लिये हुए मिथ्यादृष्टि जीव कर्मको भला करके मानता है। ऐसी भेद प्रतीति शुद्ध स्वरूपका अनुभव हुआ तबसे पाई जाती है।'

शुभोपयोग भला, उससे क्रमसे कर्म निर्जरा होकर मोक्ष प्राप्ति होती है यह मान्यता कैसे झूठी है इसका स्पष्टीकरण करते हुए कलश १०१ की टीकामे लिखा है—

'कोई जीव शुभोपयोगी होता हुआ यतिक्रियामें मग्न होता हुआ शुद्धोपयोगको नहीं जानता, केवल यतिक्रियामात्र मग्न है। वह जीव ऐसा जानता है कि मै तो मुनीश्वर, हमको विषय-कषाय सामग्री निषिद्ध है। ऐसा जानकर विषय कषाय सामग्रीको छोड़ता है, आपको धन्यपना मानता है, मोक्षमार्ग मानता है। सो विचार करनेपर ऐसा जीव मिथ्यादृष्टि है। कर्मबन्धको करता है, कांई भलापन तो नहीं है।'

क्रिया सस्कार छूटनेपर ही शुद्धस्वरूपका अनुभव सभव है इसका स्पष्टीकरण कलश १०४ की टीकामे इसप्रकार किया है—

शुभ-अशुभ क्रियामें मग्न होता हुआ जीव विकल्पी है, इससे दु खी है। क्रिया संस्कार छूटकर शुद्धस्वरूपका अनुभव होते ही जीव निर्विकल्प है, इससे सुखी है।'

कैसा अनुभव होनेपर मोक्ष होता है इसका स्पष्टीकरण कलश १०५ की टीकामे इसप्रकार किया है—

'जीवका स्वरूप सदा कर्मसे मुक्त है। उसको अनुभवने पर मोक्ष होता है ऐसा घटता है, विरुद्ध तो नहीं।'

स्वरूपाचरण चारित्र क्या है इसका स्पष्टीकरण कलश १०६ की टीकामे इस प्रकार किया है—

'कोई जानेगा कि स्वरूपाचरण चारित्र ऐसा कहा जाता है जो आत्माके शुद्ध स्वरूपको विचारे अथवा चिन्तवे अथवा एकाग्ररूपसे मग्न होकर अनुभवे। सो ऐसा तो नहीं, उसके करने पर बन्ध

होता है, क्योंकि ऐसा तो स्वरूपाचरण चारित्र नहीं है। तो स्वरूपाचरण चारित्र कैसा है? जिस प्रकार पन्ना (सुवर्ण पत्र) पकानेसे सुवर्णमेकी कालिमा जाती है, सुवर्ण शुद्ध होता है उसी प्रकार जीव द्रव्यके अनादिसे अशुद्ध चेतनारूप रागादि परिणाम था, वह जाता है, शुद्ध स्वरूपमात्र शुद्ध चेतनारूप जीव द्रव्य परिणमता है, उसका नाम स्वरूपाचरण चारित्र कहा जाता है, ऐसा मोक्षमार्ग है।'

शुभ-अशुभ क्रिया आदि वन्धका कारण है इसका निर्देश करते हुए कलश १०७ की टीकामें लिखा है—

'जो शुभ-अशुभ क्रिया, सूक्ष्म-स्थूल अन्तर्जल्प वहिर्जल्परूप जितना विकल्परूप आचरण है वह सब कर्मका उदयरूप परिणमन है, जीवका शुद्ध परिणमन नहीं है, इसलिए समस्त ही आचरण मोक्षका कारण नहीं है, वन्धका कारण है।'

विषय-कषायके समान व्यवहार चारित्र दुष्ट है इसका स्पष्टीकरण करते हुए कलश १०८ मे लिखा है—

'यहां कोई जानेगा कि शुभ-अशुभ क्रियारूप जो आचरणरूप चारित्र है सो करने योग्य नहीं है उसी प्रकार वर्जन करने योग्य भी नहीं है? उत्तर इस प्रकार है—वर्जन करने योग्य है। कारण कि व्यवहार चारित्र होता हुआ दुष्ट है, अनिष्ट है, घातक है, इसलिए विषय-कषायके समान क्रियारूप चारित्र निषिद्ध है।'

(कलश १०९) ज्ञानमात्र मोक्षमार्ग कहनेका कारण—

'कोई आशंका करेगा कि मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनका मिला हुआ है, यहाँ ज्ञानमात्र मोक्षमार्ग कहा सो क्यो कहा? उसका समाधान ऐसा है—शुद्धस्वरूप ज्ञानमे सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्र सहज ही गर्भित हैं, इसलिए दोष तो कुछ नहीं, गुण है।'

(कलश ११०) मिथ्यादृष्टिके समान सम्यग्दृष्टिका शुभ क्रियारूप यतिपना भी मोक्षका कारण नही है इसका खुलासा—

'यहां कोई भ्रान्ति करेगा जो मिथ्यादृष्टिका यतिपना क्रियारूप है सो बन्धका कारण है, सम्यग्दृष्टिका है जो यतिपना शुभ क्रियारूप सो मोक्षका कारण है। कारण कि अनुभव ज्ञान तथा दया व्रत तप सयमरूप क्रिया दोनो मिलकर ज्ञानावरणादि कर्मका क्षय करते हैं। ऐसी प्रतीति कितने ही अज्ञानी जीव करते हैं। वहां समाधान ऐसा—जितनी शुभ-अशुभ क्रिया, बहिर्जल्परूप विकल्प अथवा अन्तर्जल्परूप अथवा द्रव्योका विचाररूप अथवा शुद्ध स्वरूपका विचार इत्यादि समस्त कर्म बन्धका कारण है। ऐसी क्रियाका ऐसा ही स्वभाव है। सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टिका ऐसा भेद तो कुछ नहीं। ऐसी करतूतिसे ऐसा बन्ध है। शुद्धस्वरूप परिणमनमात्रसे मोक्ष है। यद्यपि एक ही कालमें सम्यग्दृष्टि जीवके शुद्ध ज्ञान भी है, क्रियारूप परिणाम भी है। तथापि क्रियारूप है जो परिणाम उससे अकेला बन्ध होता है, कर्मका क्षय एक अंशमात्र भी नहीं होता है। ऐसा वस्तुका स्वरूप, सहारा

किसका। उसी समय शुद्ध स्वरूप अनुभव ज्ञान भी है। उसी समय ज्ञानसे कर्मक्षय होता है, एक अंशमात्र भी वन्ध नहीं होता है। वस्तुका ऐसा ही स्वरूप है।'

(कलश ११२) समस्त क्रियामे ममत्वके त्यागके उपायका कथन—

'जितनी क्रिया है वह सव मोक्षमार्ग नहीं है ऐसा जान समस्त क्रियामे ममत्वका त्यागकर शुद्ध ज्ञान मोक्षमार्ग है ऐसा सिद्धान्त सिद्ध हुआ।'

(कलश ११४) स्वभावप्राप्ति और विभावत्यागका एक ही काल है—

'जिस काल शुद्ध चैतन्य वस्तुकी प्राप्ति होती है उसी काल मिथ्यात्व-राग-द्वेषरूप जीवका परिणाम मिटता है, इसलिए एक ही काल है, समयका अन्तर नहीं है।'

(कलश ११५) सम्यग्दृष्टि जीवके द्रव्यास्रव और भावास्रवसे रहित होनेके कारणका निर्देश—

'आस्रव दो प्रकारका है। विवरण—एक द्रव्यास्रव है, एक भावास्रव है। द्रव्यास्रव कहने पर कर्मरूप वैठे हैं आत्माके प्रदेशोमे पुद्गलपिण्ड, ऐसे द्रव्यास्रवसे जीव स्वभाव ही से रहित है। यद्यपि जीवके प्रदेश, कर्मपुद्गलपिण्डके प्रदेश एक ही क्षेत्रमें रहते हैं तथापि परस्पर एक द्रव्यरूप नहीं होते हैं, अपने अपने द्रव्य-गुण पर्यायरूप रहते हैं इसलिए पुद्गलपिण्डसे जीव भिन्न है। भावास्रव कहनेपर मोह, राग, द्वेषरूप विभाव अशुद्ध चेतन परिणाम सो ऐसा परिणाम यद्यपि जीवके मिथ्यादृष्टि अवस्थामे विद्यमान ही था तथापि सम्यक्त्वरूप परिणमने पर अशुद्ध परिणाम मिटा। इस कारण सम्यग्दृष्टि जीव भावास्रवसे रहित है। इससे ऐसा अर्थ निपजा कि सम्यग्दृष्टि जीव निरास्रव है।'

(कलश ११६) सम्यग्दृष्टि कर्मवन्धका कर्ता क्यो नही इसका निर्देश—

'कोई अज्ञानी जीव ऐसा मानेगा कि सम्यग्दृष्टि जीवके चारित्रमोहका उदय तो है, वह उदयमात्र होने पर आगामी ज्ञानावरणादि कर्मका वन्ध होता होगा? समाधान इस प्रकार है—चारित्रमोहका उदयमात्र होने पर वन्ध नहीं है। उदयके होने पर जो जीवके राग, द्वेष, मोह परिणाम हो तो कर्मवन्ध होता है, अन्यथा सहस्र कारण हो तो भी कर्मवन्ध नहीं होता। राग, द्वेष, मोह परिणाम भी मिथ्यात्व कर्मके उदयके सहारा है, मिथ्यात्वके जाने पर अकेले चारित्रमोहके उदयके सहाराका राग, द्वेष, मोह परिणाम नहीं है। इस कारण सम्यग्दृष्टिके राग, द्वेष, मोह परिणाम होता नहीं, इसलिए कर्मवन्धका कर्त्ता सम्यग्दृष्टि जीव नहीं होता।'

(कलश १२१) सम्यग्दृष्टिके वन्ध नही है इसका तात्पर्य—

'जव जीव सम्यक्त्वको प्राप्त करता है तब चारित्रमोहके उदयमे बन्ध होता है, परन्तु वन्धशक्ति हीन होती है, इसलिए वन्ध नहीं कहलाता।'

(कलश १२४) निर्विकल्पका अर्थ काष्ठके समान जड नही इस तथ्यका खुलासा—

'शुद्धस्वरूपके अनुभवके काल जीव काष्ठके समान जड़ है ऐसा भी नहीं है, सामान्यतया सविकल्पी जीवके समान विकल्पी भी नहीं है, भावश्रुतज्ञानके द्वारा कुछ निर्विकल्प वस्तुमात्रको अवलम्बता है, अवश्य अवलम्बता है।'

(कलश १२५) शुद्धज्ञानमे जीतपना कैसे घटता है—

'आस्रव तथा सवर परस्पर अति ही वैरी हैं, इसलिए अनन्त कालसे लेकर सर्व जीवराशि विभाव मिथ्यात्वरूप परिणमता है, इस कारण शुद्ध ज्ञानका प्रकाश नहीं है। इसलिए आस्रवके सहारे सर्व जीव हैं। काललब्धि पाकर कोई आसन्न भव्य जीव सम्यक्त्वरूप स्वभाव परिणति परिणमता है, इससे शुद्ध प्रकाश प्रगट होता है, इससे कर्मका आस्रव मिटता है, इससे शुद्ध ज्ञानका जीतपना घटित होता है।'

(कलश १३०) भेदज्ञान भी विकल्प है इसका सकारण निर्देश—

'निरन्तर शुद्ध स्वरूपका अनुभव कर्त्तव्य है। जिस काल सकल कर्मक्षय लक्षण मोक्ष होगा उस काल समस्त विकल्प सहज ही छूट जायेंगे। वहा भेदविज्ञान भी एक विकल्परूप है, केवलज्ञानके समान जीवका शुद्ध स्वरूप नहीं है, इसलिए सहज ही विनाशीक है।'

(कलश १३३) निर्जराका स्वरूप—

'सवरपूर्वक जो निर्जरा सो निर्जरा, क्योकि जो संवरके विना होती है सब जीवो को उदय देकर कर्मकी निर्जरा सो निर्जरा नहीं है।'

(कलश १३९) हेयोपादेय विचार—

शुद्ध चिद्रूप उपादेय, अन्य समस्त हेय।

(कलश १४१) विकल्प का कारण—

'कोई ऐसा मानेगा कि जितनी ज्ञानकी पर्याय है वे समस्त अशुद्धरूप हैं सो ऐसा तो नहीं, कारण कि जिस प्रकार ज्ञान शुद्ध है उसी प्रकार ज्ञानकी पर्याय वस्तुका स्वरूप है, इसलिए शुद्धस्वरूप है। परन्तु एक विशेष—पर्यायमात्रका अवधारण करने पर विकल्प उत्पन्न होता है, अनुभव निर्विकल्प है, इसलिये वस्तुमात्र अनुभवने पर समस्त पर्याय भी ज्ञानमात्र है, इसलिए ज्ञानमात्र अनुभव योग्य है।

(कलश १४४) अनुभव ही चिन्तामणि रत्न है—

'जिस प्रकार किसी पुण्यवान् जीवके हाथमे चिंतामणि रत्न होता है, उससे सब मनोरथ पूरा होता है, वह जीव लोहा, ताँबा, रूपा ऐसी धातुका संग्रह करता नहीं उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीवके पास शुद्ध स्वरूप अनुभव ऐसा चिन्तामणि रत्न है, उसके द्वारा सकल कर्मक्षय होता है। परमात्मपदकी प्राप्ति होती है। अतीन्द्रिय सुखकी प्राप्ति होती है। वह सम्यग्दृष्टि जीव शुभ अशुभरूप अनेक क्रियाविकल्पका संग्रह करता नही, कारण कि इनसे कार्यसिद्धि होती नहीं।'

(कलश १५३) सम्यग्दृष्टिके दृष्टान्त द्वारा वाछापूर्वक क्रियाका निषेध—

'जिस प्रकार किसीको रोग, शोक, दारिद्र विना ही वांछाके होता है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीवके जो कोई क्रिया होती है सो विना ही वाछा के होती है।'

(कलश १६३) कर्मबन्धके मेटनेका उपाय—

'जिस प्रकार किसी जीवको मदिरा पिलाकर विकल किया जाता है, सर्वस्व छीन लिया जाता है, पदसे भ्रष्ट कर दिया जाता है उसी प्रकार अनादिकालसे लेकर सर्व जीवराशि राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणामसे मतवाली हुई है। इससे ज्ञानावरणादि कर्मका बन्ध होता है। ऐसे बन्धको शुद्ध ज्ञानका अनुभव मेटनशील है, इसलिए शुद्ध ज्ञान उपादेय है।'

(कलश १७५) द्रव्यके परिणामके कारणोका निर्देश—

'द्रव्यके परिणामका कारण दो प्रकारका है—एक उपादान कारण है, एक निमित्त कारण है। उपादान कारण द्रव्यके अन्तर्गभित है अपने परिणाम-पर्यायरूप परिणमनशक्ति वह तो जिस द्रव्य की उसी द्रव्यमें होती है, ऐसा निश्चय है। निमित्त कारण—जिस द्रव्यका संयोग प्राप्त होनेसे अन्य द्रव्य अपनी पर्यायरूप परिणमता है, वह तो जिस द्रव्यको उस द्रव्यमें होती है, अन्य द्रव्यगोचर नहीं होती ऐसा निश्चय है। जैसे मिट्टी घट पर्यायरूप परिणमती है। उसका उपादान कारण है मिट्टीमें घटरूप परिणमनशक्ति। निमित्त कारण है वाह्यरूप कुम्हार, चक्र, दण्ड इत्यादि। वैसे ही जीवद्रव्य अशुद्ध परिणाम मोहराग द्वेषरूप परिणमता है। उसका उपादान कारण है जीवद्रव्यमे अन्तर्गभित विभावरूप अशुद्ध परिणामशक्ति।'

(कलश १७६-१७७) अकर्ता-कर्ता विचार

'सम्यग्दृष्टि जीवके रागादि अशुद्ध परिणामोका स्वामित्वपना नहीं है, इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव कर्ता नहीं है।'

'मिथ्यादृष्टि जीवके रागादि अशुद्ध परिणामोका स्वामित्वपना है, इसलिए मिथ्यादृष्टि जीव कर्ता है।'

(कलश १८०) मात्र भेदज्ञान उपादेय है—

'जिसप्रकार करोतके वार वार चालू करनेसे पुद्गल वस्तु काष्ठ आदि दो खण्ड हो जाता है उसी प्रकार भेदज्ञानके द्वारा जीव पुद्गलको बार-बार भिन्न-भिन्न अनुभव करने पर भिन्न-भिन्न हो जाते हैं, इसलिए भेदज्ञान उपादेय है।'

(कलश १८१) जीव कर्मको भिन्न करनेका उपाय—

'जिस प्रकार यद्यपि लोहसारको छैनी अति पैनी होती है तो भी सन्धिका विचार कर देने पर छेद कर दो कर देती है उसी प्रकार यद्यपि सम्यग्दृष्टि जीवका ज्ञान अत्यन्त तीक्ष्ण है तथापि जीव-

कर्मकी है जो भीतरमे सन्धि उसमे प्रवेश करने पर प्रथम तो बुद्धिगोचर छेदकर दो कर देता है। पश्चात् सकल कर्मका क्षय होनेसे साक्षात् छेदकर भिन्न भिन्न करता है।'

(कलश १६१) मोक्षमार्गका स्वरूप निरूपरग—

सर्व अशुद्धपनाके मिटनेसे शुद्धपना होता है। उसके सहाराका है शुद्ध चिद्रूपका अनुभव, ऐसा मोक्षमार्ग है।

(कलश १६३) स्वरूप विचारकी अपेक्षा जीव न बद्ध है न मुक्त है—

'एकेन्द्रियसे लेकर पञ्चेन्द्रियतक जीवद्रव्य जहाँ तहाँ द्रव्य स्वरूप विचारकी अपेक्षा बन्ध ऐसे मुक्त ऐसे विकल्पसे रहित है। द्रव्यका स्वरूप जैसा है वैसा ही है।'

(कलश १६६) कर्मका (भावकर्मका) कर्तापन-भोक्तापन जीवका स्वभाव नही—

'जिस प्रकार जीवद्रव्यका अनन्तचतुष्टय स्वरूप है उस प्रकार कर्मका कर्तापन भोक्तापन स्वरूप नहीं है। कर्मकी उपाधिसे विभावरूप अशुद्ध परिणतिरूप विकार है। इसलिए विनाशीक है। उस विभाव परिणतिके विनाश होने पर जीव अकर्ता है, अभोक्ता है।'

(कलश २०३) भोक्ता और कर्ताका अन्योन्य सम्बन्ध है—

'जो द्रव्य जिस भावका कर्ता होता है वह उसका भोक्ता भी होता है। ऐसा होने पर रागादि अशुद्ध चेतन परिणाम जो जीव कर्म दोनोने मिलकर किया होवे तो दोनो भोक्ता होगे सो दोनों भोक्ता तो नहीं हैं! कारण कि जीव द्रव्य चेतन है तिस कारण सुख दुःखका भोक्ता होवे ऐसा घटित होता है, पुद्गल द्रव्य अचेतन होनेसे सुख दु खका भोक्ता घटित नहीं होता। इसलिए रागादि अशुद्ध चेतन परिणमनका अकेला संसारी जीव कर्ता है, भोक्ता भी है।'

(कलश २०६) विकल्प अनुभव करने योग्य नही—

'जिस प्रकार कोई पुरुष मोतीकी मालाको पोमा जानता है, माला गूँथता हुआ अनेक विकल्प करता है सो वे समस्त विकल्प झूठे हैं, विकल्पोंमे शोभा करनेकी शक्ति नहीं है। शोभा तो मोतीमात्र वस्तु है, उसमे है। इसलिए पहिननेवाला पुरुष मोतीकी माला जानकर पहिनता है, गूँथनेके बहुत विकल्प जानकर नहीं पहिनता है, देखनेवाला भी मोती की माला जानकर शोभा देखता है, गूँथनेके विकल्पोंको नहीं देखता है उसी प्रकार शुद्ध चेतनामात्र सत्ता अनुभव करने योग्य है। उसमे घटते हैं जो अनेक विकल्प उन सबकी सत्ता अनुभव करने योग्य नहीं है।'

(कलश २१२) जानते समय ज्ञान ज्ञेयरूप नही परिरगमा—

'जीवद्रव्य समस्त ज्ञेय वस्तुको जानता है ऐसा तो स्वभाव है, परन्तु ज्ञान ज्ञेयरूप नहीं होता है, ज्ञेय भी ज्ञानद्रव्यरूप नहीं परिरगमता है ऐसी वस्तुकी मर्यादा है।'

(कलश २१४) एक द्रव्य दूसरे द्रव्यको करता है यह झूठा व्यवहार है—

'जीव ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्मको करता है, भोगता है। उसका समाधान इस प्रकार है कि झूठे व्यवहारसे कहनेको है। द्रव्यके स्वरूपका विचार करनेपर परद्रव्यका कर्ता जीव नहीं है।'

(कलश २२२) ज्ञेयको जानना विकारका कारण नहीं—

'कोई मिथ्यादृष्टि जीव ऐसी आशंका करेगा कि जीव द्रव्य ज्ञायक है, समस्त ज्ञेयको जानता है, इसलिए परद्रव्यको जानते हुए कुछ थोड़ा बहुत रागादि अशुद्ध परिणतिका विकार होता होगा? उत्तर इस प्रकार है कि परद्रव्यको जानते हुए तो एक निरंशमात्रभी नहीं है, अपनी विभाव परिणति करनेसे विकार है। अपनी शुद्ध परिणति होने पर निर्विकार है।'

इत्यादि रूपसे अनेक तथ्योंका अनुभवपूर्ण वाणी द्वारा स्पष्टीकरण इस टीकामें किया गया है। टीकाका स्वाध्याय करनेसे ज्ञात होता है कि आत्मानुभूति पूर्वक निराकुलत्व लक्षण सुखका रसास्वादन करते हुए कविवरने यह टीका लिखी है। यह जितनी सुगम और सरल भाषामें लिखी गई है उतनी ही भव्य जनोंके चित्तको आल्हाद उत्पन्न करनेवाली है। कविवर बनारसीदास जी ने इसे बालबोध टीका इस नामसे सम्बोधित किया है। इसमें संदेह नहीं कि यह अज्ञानियों या अल्पज्ञों को आत्मसाक्षात्कारके सन्मुख करनेके अभिप्रायसे ही लिखी गई है। इसलिए इसका बालबोध यह नाम सार्थक है। कविवर राजमल्लजी और इस टीकाके सबंधमें कविवर बनारसीदासजी लिखते हैं—

'पांडे राजमल्ल जिनधर्मी। समयसार नाटकके मर्मी ॥
तिन्हें ग्रन्थकी टीका कीन्ही। बालबोध सुगम करि दीन्ही ॥
इह विधि बोध वचनिका फैली। समै पाइ अध्यातम सैली ॥
प्रगटी जगत मांहि जिनवाणी, घर घर नाटक कथा बखानी ॥

कविवर बनारसीदासजी ने कविवर राजमल्लजी और उनकी इस टीकाके सम्बन्धमें थोड़े शब्दोंमें जो कुछ कहना था, सब कुछ कह दिया है। कविवर बनारसीदासजी ने छन्दोंमें नाटक समयसारकी रचना इसी टीकाके आधारसे की है। अपने इस भावको व्यक्त करते हुए कविवर स्वयं लिखते हैं—

नाटक समैसार हितजीका, सुगमरूप राजमल टीका।
कवितबद्ध रचना जो होई, भाषा ग्रन्थ पढ़ै सब कोई ॥
तब बनारसी मनमें आनी, कीजे तो प्रगटे जिनवानी।
पंच पुरुषकी आज्ञा लीनी। कवितबन्ध की रचना कीनी ॥

जिन पाँच पुरुषोंको साक्षी करके कविवर बनारसी दास जी ने छन्दोंमें नाटक समयसारकी रचना की है। वे हैं—१ पं० रूपचन्दजी, २. चतुर्भुजजी, ३. कविवर भैया भगवतीदासजी, ४. कौर-

पालजी और ५ धर्मदासजी। इनमे प० रूपचन्दजी और भैया भगवतीदासजी का नाम विशेषरूपसे उल्लेखनीय है। स्पष्ट है कि इन पाँचो विद्वानोने कविवर वनारसीदासजी के साथ मिलकर कविवर राजमल्लजी की समयसार कलश वालवोध टीकाका अनेक वार स्वाध्याय किया होगा। यह टीका अध्यात्मके प्रचारमे काफी सहायक हुई यह इसीसे स्पष्ट है। प० श्री रूपचन्दजी जैसे सिद्धान्ती विद्वान् को यह टीका अक्षरश मान्य थी यह भी इससे सिद्ध होता है!

यह तो मैं पूर्वमे ही लिख आया हूँ कि यह टीका ढूँढारी भाषामे लिखी गई है। सर्वप्रथम मूलरूपमे इसके प्रचारित करनेका श्रेय श्रीमान् सेठ नेमचन्द बालचन्द जी वकील उसमानावादवालो को है। यह वीर स० २४५७ मे स्व० श्रीमान् ब्र० शीतलप्रसादजी के आग्रहसे प्रकाशित हुई थी। प्रकाशक श्री मूलचन्द किशनदासजी कापडिया (दि० जैन पुस्तकालय) सूरत हैं। श्रीमान् नेमचन्दजी वकीलसे मेरा निकटका सम्वन्ध था। वे उदाराशय और विद्याव्यासगी विचारक वकील थे। अध्यात्म मे तो उनका प्रवेश था ही, कर्मशास्त्रका भी उन्हे अच्छा ज्ञान था। उनकी यह सेवा सराहनीय है। मेरा विश्वास है कि वहुजन प्रचारित हिन्दीमे इसका अनुवाद हो जानेके कारण अध्यात्म जैसे गूढतम तत्त्वके प्रचारमे यह टीका अधिक सहायक होगी। विज्ञेषु किमधिकम्।

—फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

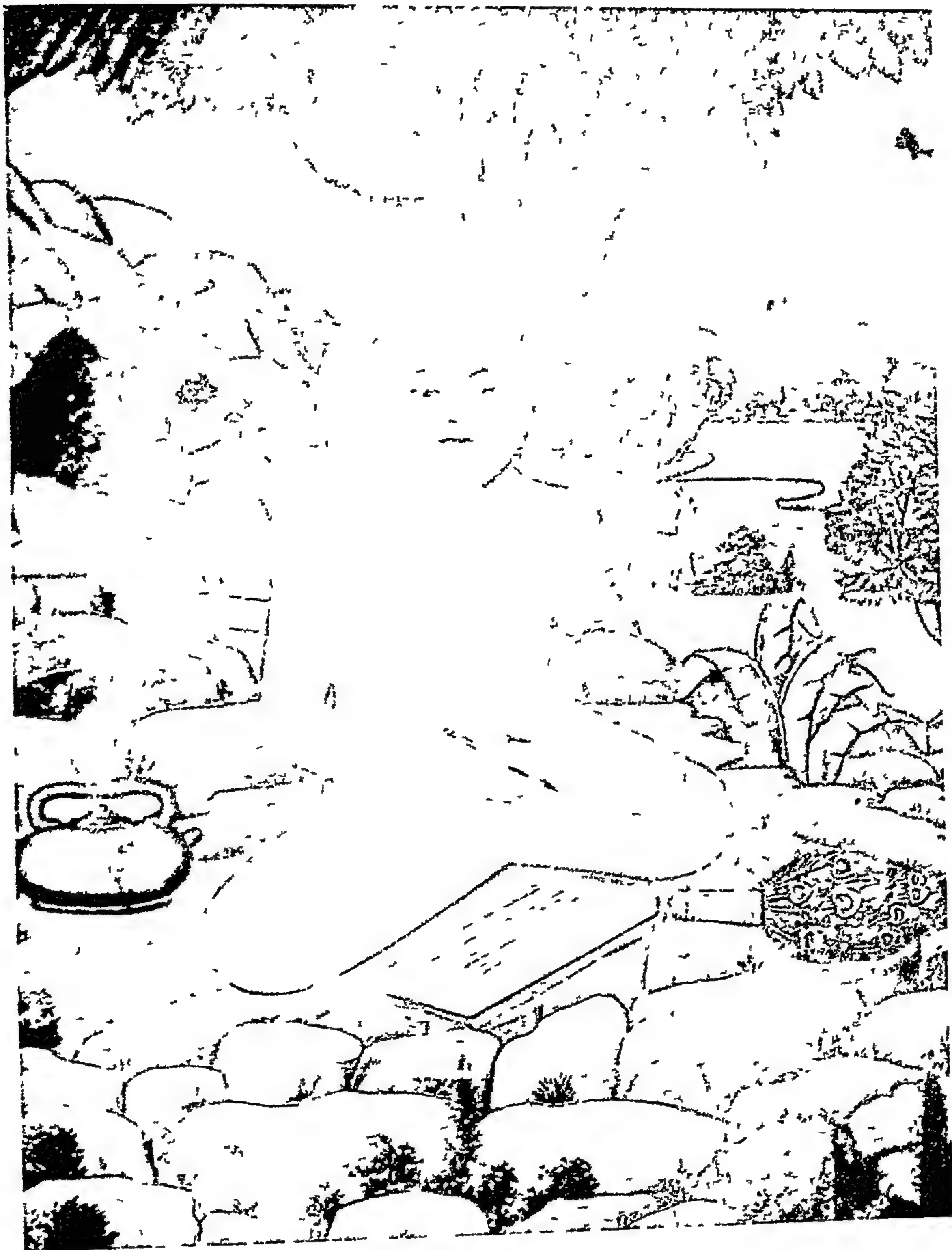
* विषय-सूची *





श्री समयसार कलश





आचार्यवर श्री अमृतचन्द्रदेव



पण्डितप्रवर श्री राजमल्लजी कृत टीकाके आधुनिक हिन्दी-अनुवाद सहित

श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेव विरचित

श्री

समयसार-कलश

—१—

जीव-अधिकार

(अनुष्टुप्)

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते ।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे ॥१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"भावाय नम" [भावाय] पदार्थ। पदार्थ संज्ञा है सत्त्वस्वरूपकी। उससे यह अर्थ ठहराया—जो कोई शाश्वत वस्तुरूप, उसे मेरा [नमः] नमस्कार। वह वस्तुरूप कैसा है ? "चित्स्वभावाय" [चित्] ज्ञान—चेतना वही है [स्वभावाय] स्वभाव—सर्वस्व जिसका, उसको मेरा नमस्कार। यह विशेषरण कहने पर दो समाधान होते है—एक तो भाव कहने पर पदार्थ, वे पदार्थ कोई चेतन है, कोई अचेतन है, उनमे चेतन पदार्थ नमस्कार करने योग्य है ऐसा अर्थ उपजता है। दूसरा समाधान ऐसा कि यद्यपि वस्तुका गुरण वस्तुमे गर्भित है, वस्तु गुरण एक ही सत्त्व है, तथापि भेद उपजाकर कहने योग्य है, विशेपरण कहे बिना वस्तुका ज्ञान उपजता नही। और कैसा है भाव ? "समयसाराय" यद्यपि समय शब्दका बहुत अर्थ है तथापि इस अवसर पर समय शब्दसे सामान्यतया जीवादि सकल पदार्थ जानने। उनमे जो कोई सार है, सार अर्थात् उपादेय है जीव

वस्तु, उसको मेरा नमस्कार। इस विशेषणका यह भावार्थ—सार पदार्थ जानकर चेतन पदार्थको नमस्कार प्रमाण रखा। असारपना जानकर अचेतन पदार्थको नमस्कार निषेधा। आगे कोई वितर्क करेगा कि सर्व ही पदार्थ अपने अपने गुण-पर्याय विराजमान है, स्वाधीन है, कोई किसीके आधीन नही, जीव पदार्थका सारपना कैसे घटता है? उसका समाधान करनेके लिए दो विशेषण कहते है—और कैसा है भाव? "स्वानुभूत्या चकासते सर्वभावान्तरच्छिदे" [**स्वानुभूत्या**] इस अवसर पर स्वानुभूति कहनेसे निराकुलत्वलक्षण शुद्धात्मपरिणामनरूप अतीन्द्रिय सुख जानना, उसरूप [**चकासते**] अवस्था है जिसकी। [**सर्वभावान्तरच्छिदे**] सर्व भाव अर्थात् अतीत-अनागत-वर्तमान पर्याय सहित अनन्त गुण विराजमान जितने जीवादि पदार्थ, उनका अन्तरछेदी अर्थात् एक समयमे युगपत् प्रत्यक्षरूपसे जाननशील जो कोई शुद्ध जीववस्तु, उसको मेरा नमस्कार। शुद्ध जीवके सारपना घटता है। सार अर्थात् हितकारी, असार अर्थात् अहितकारी। सो हितकारी सुख जानना, अहितकारी दुख जानना। कारण कि अजीव पदार्थ पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, कालके और ससारी जीवके सुख नही, ज्ञान भी नही, और उनका स्वरूप जाननेपर जाननहारे जीवको भी सुख नही, ज्ञान भी नही, इसलिए इनके सारपना घटता नही। शुद्ध जीवके सुख है, ज्ञान भी है, उसको जाननेपर—अनुभवनेपर जाननहारे को सुख है, ज्ञान भी है, इसलिए शुद्ध जीवके सारपना घटता है ॥१॥

(अनुष्टुप्)

अनन्तधर्मणस्तत्त्वं पश्यन्ती प्रत्यगात्मनः।
अनेकान्तमयी मूर्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम् ॥२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ— "नित्यमेव प्रकाशताम्" [**नित्यं**] सदा त्रिकाल [**प्रकाशताम्**] प्रकाशको करो। इतना कहकर नमस्कार किया। वह कौन? "अनेकान्तमयी मूर्ति" [**अनेकान्तमयी**] न एकान्त अनेकान्त। अनेकान्त अर्थात् स्याद्वाद, उसमयी अर्थात् वही है [**मूर्तिः**] स्वरूप जिसका, ऐसी है सर्वज्ञकी वाणी अर्थात् दिव्यध्वनि। इस अवसर पर आशका उपजती है कि कोई जानेगा कि अनेकान्त तो सशय है, सशय मिथ्या है। उसके प्रति ऐसा समाधान करना—अनेकान्त तो सशयको दूरीकरणशील है और वस्तुस्वरूपको साधनशील है। उसका विवरण—जो कोई सत्तास्वरूप वस्तु है वह द्रव्य-गुणात्मक है। उसमे जो सत्ता

अभेदरूपसे द्रव्यरूप कहलाती है वही सत्ता भेदरूपसे गुणरूप कहलाती है। इसका नाम अनेकान्त है। वस्तुस्वरूप अनादि-निधन ऐसा ही है। किसीका सहारा नही। इसलिए अनेकान्त प्रमाण है। आगे जिस वाणीको नमस्कार किया वह वाणी कैसी है? "प्रत्यगात्मनस्तत्त्व पश्यन्ती" [**प्रत्यगात्मनः**] सर्वज्ञ वीतराग। उसका विवरण-प्रत्यक् अर्थात् भिन्न, भिन्न अर्थात् द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मसे रहित, ऐसा है आत्मा-जीवद्रव्य जिसका वह कहलाता है प्रत्यगात्मा, उसका [**तत्त्वं**] स्वरूप, उसको [**पश्यन्ती**] अनुभवनशील है। भावार्थ इस प्रकार है—कोई वितर्क करेगा कि दिव्यध्वनि तो पुद्गलात्मक है, अचेतन है, अचेतनको नमस्कार निषिद्ध है। उसके प्रति समाधान करनेके निमित्त यह अर्थ कहा कि वाणी सर्वज्ञस्वरूप-अनुसारिणी है, ऐसा माने बिना भी वने नही। उसका विवरण—वाणी तो अचेतन है। उसको सुनने पर जीवादि पदार्थका स्वरूपज्ञान जिस प्रकार उपजता है उसी प्रकार जानना—वाणीका पूज्यपना भी है। कैसे है सर्वज्ञ वीतराग? "अनन्तधर्मण" [**अनन्त**] अति बहुत है [**धर्मणः**] गुण जिनके ऐसे है। भावार्थ इस प्रकार है—कोई मिथ्यावादी कहता है कि परमात्मा निर्गुण है, गुण विनाश होनेपर परमात्मपना होता है। सो ऐसा मानना झूठा है, कारण कि गुणोका विनाश होनेपर द्रव्यका भी विनाश है ॥२॥

(मालिनी)

परपरिणतिहेतोर्मोहनाम्नोऽनुभावा-
दविरतमनुभाव्यव्याप्तिकल्माषितायाः ।
मम परमविशुद्धिः शुद्धचिन्मात्रमूर्त्ते-
र्भवतु समयसारव्याख्ययैवानुभूतेः ॥ ३ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"मम परमविशुद्धि भवतु" शास्त्रकर्ता है अमृतचन्द्र-सूरि। वह कहता है-[**मम**] मुझे [**परमविशुद्धिः**] शुद्धस्वरूपप्राप्ति। उसका विवरण—परम-सर्वोत्कृष्ट विशुद्धि-निर्मलता [**भवतु**] होओ। किससे? "समयसारव्याख्यया" [**समयसार**] शुद्ध जीव, उसके [**व्याख्यया**] उपदेशसे हमको शुद्धस्वरूपकी प्राप्ति होओ। भावार्थ इसप्रकार है—यह शास्त्र परमार्थरूप है, वैराग्योत्पादक है। भारत-रामायणके समान रागवर्धक नही है। कैसा हू मैं? "अनुभूते" अनुभूति-अतीन्द्रिय सुख, वही है स्वरूप जिसका ऐसा हूँ। और कैसा हूँ? "शुद्धचिन्मात्रमूर्ते" [**शुद्ध**] रागादि-उपाधिरहित [**चिन्मात्र**] चेतनामात्र [**मूर्तेः**]

स्वभाव है जिसका ऐसा हूँ। भावार्थ इसप्रकार है—द्रव्यार्थिकनय से द्रव्यस्वरूप ऐसा ही है। और कैसा हूँ मैं ? "अविरतमनुभाव्यव्याप्तिकल्माषितायाः" [अविरतं] निरन्तरपने अनादि सन्तानरूप [अनुभाव्य] विषय-कषायादिरूप अशुद्ध चेतना, उसके साथ है [व्याप्ति] व्याप्ति अर्थात् उसरूप है विभाव-परिणमन, ऐसा है [कल्माषितायाः] कलंकपना जिसका ऐसा हूँ। भावार्थ इस प्रकार है—पर्यायार्थिकनयसे जीववस्तु अशुद्धरूपसे अनादिकी परिणमी है। उस अशुद्धताके विनाश होने पर जीववस्तु ज्ञान-स्वरूप सुखस्वरूप है। आगे कोई प्रश्न करता है कि जीववस्तु अनादिसे अशुद्धरूप परिणमी है, वहाँ निमित्तमात्र कुछ है कि नहीं है ? उत्तर इसप्रकार—निमित्तमात्र भी है। वह कौन, वही कहते हैं—"मोहनाम्नोऽनुभावात्" [मोहनाम्नः] पुद्गलपिण्ड-रूप आठ कर्मोंमें मोह एक कर्मजाति है, उसका [अनुभावात्] उदय अर्थात् विपाक-अवस्था। भावार्थ इस प्रकार है—रागादि-अशुद्धपरिणामरूप जीवद्रव्य व्याप्य-व्यापकरूप परिणमे है पुद्गलपिण्डरूप मोहकर्मका उदय निमित्तमात्र है जैसे कोई धतूरा पीनेसे घूमता है, निमित्तमात्र धतूराका उसको है। कैसा है मोहनामक कर्म ? "परपरिणति-हेतोः" [पर] अशुद्ध [परिणति] जीवका परिणाम, जिसका [हेतोः] कारण है। भावार्थ इसप्रकार है—जीवके अशुद्ध परिणामके निमित्त ऐसा रस लेकर मोहकर्म बँधता है, बादमें उदय समयमें निमित्तमात्र होता है ॥३॥

(मालिनी)

उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदांके
जिनवचसि रमन्ते ये स्वयं वान्तमोहाः ।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चै-
रनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षन्त एव ॥ ४ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ते समयसारं ईक्षन्ते एव" [ते] आसन्नभव्य जीव [समयसारं] शुद्ध जीवको [ईक्षन्ते एव] प्रत्यक्षपने प्राप्त होते हैं। "सपदि" थोड़े ही कालमें। कैसा है शुद्ध जीव ! "उच्चैः परं ज्योतिः" अतिशयमान ज्ञानज्योति है। और कैसा ? "अनवं" अनादिसिद्ध है। और कैसा है ? "अनयपक्षाक्षुण्णं" [अनयपक्ष] मिथ्यावादसे [अक्षुण्णं] अखण्डित है। भावार्थ इस प्रकार है—मिथ्यावादी बौद्धादि झूठी कल्पना बहुत प्रकार करते हैं, तथापि वे ही

झूठे है । आत्मतत्त्व जैसा है वैसा ही है । आगे वे भव्य जीव क्या करते हुए शुद्ध स्वरूप पाते है, वही कहते है—"ये जिनवचसि रमन्ते" [ये] आसन्नभव्य जीव [जिनवचसि] दिव्य-ध्वनि द्वारा कही है उपादेयरूप शुद्ध जीववस्तु, उसमे [रमन्ते] सावधानपने रुचि—श्रद्धा—प्रतीति करते है । विवरण—शुद्ध जीववस्तुका प्रत्यक्षपने अनुभव करते है उसका नाम रुचि—श्रद्धा—प्रतीति है । भावार्थ इस प्रकार है—वचन पुद्गल है, उसकी रुचि करने पर स्वरूपकी प्राप्ति नही । इसलिए वचनके द्वारा कही जाती है जो कोई उपादेय वस्तु, उसका अनुभव करने पर फलप्राप्ति है । कैसा है जिनवचन ? "उभयनयविरोधध्वंसिनि" [उभय] दो [नय] पक्षपात [विरोध] परस्पर वैरभाव । विवरण—एक सत्त्वको द्रव्यार्थिक-नय द्रव्यरूप, उसी सत्त्वको पर्यायार्थिकनय पर्यायरूप कहता है, इसलिए परस्पर विरोध है, उसका [ध्वंसिनि] मेटनशील है । भावार्थ इस प्रकार है—दोनों नय विकल्प है, शुद्ध जीवस्वरूपका अनुभव निर्विकल्प है, इसलिए शुद्ध जीववस्तुका अनुभव होनेपर दोनो नयविकल्प झूठे है । और कैसा है जिनवचन ? "स्यात्पदाङ्के" [स्यात्पद] स्याद्वाद अर्थात् अनेकान्त—जिसका स्वरूप पीछे कहा है, वही है [अंके] चिह्न जिसका, ऐसा है । भावार्थ इस प्रकार है—जो कुछ वस्तुमात्र है वह तो निर्भेद है । वह वस्तुमात्र वचनके द्वारा कहनेपर जो कुछ वचन बोला जाता है वही पक्षरूप हैं । कैसे है आसन्नभव्य जीव ? "स्वय वान्तमोहा" [स्वयं] सहजपने [वान्त] वमा है [मोहा] मिथ्यात्व—विपरीतपना, ऐसे है । भावार्थ इस प्रकार है—अनन्त ससार जीवके भ्रमते हुए जाता है । वे ससारी जीव एक भव्यराशि है, एक अभव्यराशि है । उसमे अभव्यराशि जीव त्रिकाल ही मोक्ष जानेके अधिकारी नही । भव्य जीवोमे कितने ही जीव मोक्ष जाने योग्य हैं । उनके मोक्ष पहुँचनेका कालपरिमाण है । विवरण—यह जीव इतना काल बीतनेपर मोक्ष जायेगा ऐसी नोध केवलज्ञानमे है । वह जीव ससारमे भ्रमते भ्रमते जभी अर्धपुद्गलपरावर्तनमात्र रहता है तभी सम्यक्त्व उपजने योग्य है । इसका नाम काललब्धि कहलाता है । यद्यपि सम्यक्त्व-रूप जीवद्रव्य परिणमता है तथापि काललब्धिके बिना करोड उपाय जो किये जायँ तो भी जीव सम्यक्त्वरूप परिणमन योग्य नही ऐसा नियम है । इससे जानना कि सम्यक्त्व-वस्तु यत्नसाध्य नही, सहजरूप है ।।४।।

(मालिनी)

व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्या-
मिह निहितपदानां हन्त हस्तावलम्बः ।

तदपि परममर्थं चिच्चमत्कारमात्रं
परविरहितमन्तः पश्यतां नैष किञ्चित् ।५।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"व्यवहरणनय यद्यपि हस्तावलम्ब स्यात्" [**व्यवहरण नयः**] जितना कथन । उसका विवरण—जीववस्तु निर्विकल्प है । वह तो ज्ञानगोचर है । वही जीववस्तुको कहना चाहे, तब ऐसे ही कहनेमे आता है कि जिसके गुण-दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह जीव । जो कोई वहुत साधिक (अधिक बुद्धिमान्) हो तो भी ऐसे ही कहना पडे । इतने कहनेका नाम व्यवहार है । यहाँ कोई आशका करेगा कि वस्तु निर्विकल्प है, उसमे विकल्प उपजाना अयुक्त है । वहाँ समाधान इस प्रकार है कि व्यवहारनय हस्तावलम्व है । [**हस्तावलम्व**] जैसे कोई नीचे पडा हो तो हाथ पकडकर ऊपर लेते है वैसे ही गुण-गुणीरूप भेद कथन ज्ञान उपजनेका एक अंग है । उसका विवरण—जीवका लक्षण चेतना इतना कहनेपर पुद्गलादि अचेतन द्रव्यसे भिन्नपनेकी प्रतीति उपजती है । इसलिए जवतक अनुभव होता है तवतक गुण—गुणी भेदरूप कथन ज्ञानका अग है । व्यवहारनय जिनका हस्तावलम्व है वे कैसे है ? "प्राक्पदव्यामिह निहितपदानां" [**इह**] विद्यमान ऐसी जो [**प्राक्पदव्यां**] ज्ञान उत्पन्न होनेपर प्रारम्भिक अवस्था उसमे [**निहितपदानां**] निहित—रखा है पद—सर्वस्व जिन्होंने ऐसे है । भावार्थ इस प्रकार है—जो कोई सहजरूपसे अज्ञानी हैं, जीवादि पदार्थोका द्रव्य-गुण-पर्याय-स्वरूप जाननेके अभिलापी है, उनके लिए गुण-गुणीभेदरूप कथन योग्य है । "हन्त तदपि एष न किञ्चित्" यद्यपि व्यवहारनय हस्तावलम्व है तथापि कुछ नही, नोध (ज्ञान, समझ) करनेपर झूठा है । वे जीव कैसे हैं जिनके व्यवहारनय झूठा है ? "चिच्चमत्कारमात्र अर्थं अन्तः पश्यता" [**चिद्**] चेतना [**चमत्कार**] प्रकाश [**मात्रं**] इतनी ही है [**अर्थं**] शुद्ध जीववस्तु, उसको [**अंतःपश्यतां**] प्रत्यक्षपने अनुभवते है । भावार्थ इस प्रकार है—वस्तुका अनुभव होनेपर वचनका व्यवहार सहज ही छूट जाता है । कैसी है वस्तु ? "परमं" उत्कृष्ट है, उपादेय है । और कैसी है वस्तु ? "परविरहित" [**पर**] द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्मसे [**विरहितं**] भिन्न है ।।५।।

(शार्दूलविक्रीडित)

एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः
पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक् ।

सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयं
तन्मुक्त्वा नवतत्त्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः ॥६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तत् न अय एक आत्मा अस्तु" [**तत्**] इस कारण [**नः**] हमे [**अयं**] यह विद्यमान [**एकः**] शुद्ध [**आत्मा**] चेतनपदार्थ [**अस्तु**] होओ। भावार्थ इस प्रकार है—जीववस्तु चेतनालक्षण तो सहज ही है। परन्तु मिथ्यात्वपरिणामके कारण भ्रमित हुआ अपने स्वरूपको नही जानता, इससे अज्ञानी ही कहना। अतएव ऐसा कहा कि मिथ्या परिणामके जानेसे यही जीव अपने स्वरूपका अनुभवशीली होओ। क्या करके ? "इमा नवतत्त्वसन्तर्ति मुक्त्वा" [**इमां**] आगे कहे जानेवाले [**नवतत्त्व**] जीव-अजीव-आस्रव-वन्ध-सवर-निर्जरा-मोक्ष-पुण्य-पापके [**सन्तति**] अनादि सम्वन्धको [**मुक्त्वा**] छोडकर। भावार्थ इस प्रकार है—ससार-अवस्थामे जीव-द्रव्य नौ तत्त्वरूप परिणमा है, वह तो विभाव परिणति है, इसलिए नौ तत्त्वरूप वस्तुका अनुभव मिथ्यात्व है। "यदस्यात्मन इह द्रव्यान्तरेभ्य पृथक् दर्शन नियमात् एतदेव सम्यग्दर्शन" [**यत्**] जिस कारण [**अस्यात्मनः**] यही जीवद्रव्य [**द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक्**] सकल कर्मोपाधिसे रहित जैसा है [**इह दर्शनं**] वैसा ही प्रत्यक्षपने उसका अनुभव [**नियमात्**] निश्चयसे [**एतदेव सम्यग्दर्शनं**] यही सम्यग्दर्शन है। भावार्थ इसप्रकार है—सम्यग्दर्शन जीवका गुण है। वह गुण ससार-अवस्थामे विभावरूप परिणमा है। वही गुण जव स्वभावरूप परिणमे तव मोक्षमार्ग है। विवरण—सम्यक्त्वभाव होनेपर नूतन ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मास्रव मिटता है, पूर्ववद्ध कर्म निर्जरता है, इस कारण मोक्ष-मार्ग है। यहाँपर कोई आशका करेगा कि मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनोके मिलनेसे होता है। उत्तर इस प्रकार है—शुद्ध जीवस्वरूपका अनुभव करनेपर तीनो ही हैं। कैसा है शुद्ध जीव ? "शुद्धनयत एकत्वे नियतस्य" [**शुद्धनयतः**] निर्विकल्प वस्तु-मात्रकी दृष्टिसे देखते हुए [**एकत्वे**] शुद्धपना [**नियतस्य**] उसरूप है। भावार्थ इस-प्रकार है—जीवका लक्षण चेतना है। वह चेतना तीन प्रकारकी है—एक ज्ञानचेतना, एक कर्मचेतना, एक कर्मफलचेतना। उनमेसे ज्ञानचेतना शुद्ध चेतना है, शेष अशुद्ध चेतना है। उनमेसे अशुद्ध चेतनारूप वस्तुका स्वाद सर्व जीवोको अनादिसे प्रगट ही है। उसरूप अनुभव सम्यक्त्व नही। शुद्ध चेतनामात्र वस्तुस्वरूपका आस्वाद आवे तो सम्य-क्त्व है। और कैसी है जीववस्तु ? "व्याप्तु" अपने गुण पर्यायोको लिये हुए है इतना कहकर शुद्धपना दृढ किया है। कोई आशका करेगा कि सम्यक्त्व-गुण और जीव-

वस्तुका भेद है कि अभेद है ? उत्तर ऐसा कि अभेद है "आत्मा च तावानयम्" [अयम्] यह [आत्मा] जीववस्तु [तावान्] सम्यक्त्व-गुणमात्र है ।६।*

(अनुष्टुप्)

अतः शुद्धनयायत्तं प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति तत् ।
नवतत्त्वगतत्वेऽपि यदेकत्वं न मुञ्चति ।।७।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अत. तत् प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति" [**अतः**] यहाँ से आगे [**तत्**] वही [**प्रत्यग्ज्योतिः**] शुद्ध चेतनामात्र वस्तु [**चकास्ति**] शब्दो द्वारा युक्तिसे कही जाती है । कैसी है वस्तु ? "शुद्धनयायत्तम्" [**शुद्धनय**] वस्तुमात्रके [**आयत्तम्**] आधीन है । भावार्थ इस प्रकार है—जिसका अनुभव करनेपर सम्यक्त्व होता है उस शुद्ध स्वरूपको कहते है—"यदेकत्व न मुञ्चति" [**यत्**] जो शुद्ध वस्तु [**एकत्वं**] शुद्धपनेको [**न मुञ्चति**] नही छोडती है । यहाँपर कोई आशका करेगा कि जीववस्तु जब ससारसे छूटती है तब शुद्ध होती है । उत्तर इस प्रकार है—जीववस्तु द्रव्यदृष्टिसे विचार करनेपर त्रिकाल ही शुद्ध है । वही कहते है—"नवतत्त्वगतत्वेऽपि" [**नवतत्त्व**] जीव-अजीव-आस्रव-बन्ध-सवर-निर्जरा-मोक्ष-पुण्य-पाप [**गतत्वेऽपि**] उसरूप परिणत है तथापि शुद्धस्वरूप है भावार्थ इस प्रकार है—जैसे अग्नि दाहक लक्षणवाली है, वह काष्ठ, तृण, कण्डा आदि समस्त दाह्यको दहती है, दहती हुई अग्नि दाह्याकार होती है, पर उसका विचार है कि जो उसे काष्ठ, तृण और कण्डेकी आकृतिमे देखा जाय तो काष्ठकी अग्नि तृणकी अग्नि और कण्डेकी अग्नि ऐसा कहना साँचा ही है और जो अग्निकी उष्णतामात्र विचारा जाय तो उष्णमात्र है । काष्ठकी अग्नि, तृणकी अग्नि और कण्डेकी अग्नि ऐसे समस्त विकल्प झूठे है । उसीप्रकार नौ तत्त्वरूप जीवके परिणाम है । वे परिणाम कितने ही शुद्धरूप है, कितने ही अशुद्धरूप है । जो नौ परिणाममे ही देखा जाय तो नौ ही तत्त्व साँचे है और जो चेतनामात्र अनुभव किया जाय तो नौ ही विकल्प झूठे है ।७।

(मालिनी)

चिरमिति नवतत्त्वच्छन्नमुन्नीयमानं
कनकमिव निमग्नं वर्णमालाकलापे ।

---

* यहाँ मूल श्लोकमे "पूर्णज्ञानघनस्य" शब्द है उसका अर्थ प० श्री राजमल्लजीसे करना रह गया है । जो अर्थ निम्न प्रकार हो सकता है । कैसा है शुद्ध जीव ? "पूर्णज्ञानघनस्य" पूर्ण स्व-पर ग्राहक शक्तिका पुज है ।

अथ सततविविक्तं दृश्यतामेकरूपं
प्रतिपदमिदमात्मज्योतिरुद्योतमानम् ॥८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"आत्मज्योतिर्दृश्यताम्" [आत्मज्योतिः] जीवद्रव्यका शुद्ध ज्ञानमात्र, [दृश्यतां] सर्वथा अनुभवरूप हो। कैसी है आत्मज्योति ? "चिरमिति नवतत्त्वच्छन्न अथ सततविविक्त" इस अवसर पर नाट्यरसके समान एक जीववस्तु आश्चर्यकारी अनेक भावरूप एक ही समयमे दिखलाई देती है। इसी कारणसे इस शास्त्रका नाम नाटक समयसार है। वही कहते है—[चिरं] अमर्याद कालसे [इति] जो विभावरूप रागादि परिणाम—पर्यायमात्र विचारा जाय तो ज्ञानवस्तु [नवतत्त्वच्छन्नं] पूर्वोक्त जीवादि नौ तत्त्वरूपसे आच्छादित है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीववस्तु अनादि कालसे धातु और पाषाणके सयोगके समान कर्म पर्यायसे मिली ही चली आ रही है सो मिली हुई होकर वह रागादि विभाव परिणामोंके साथ व्याप्य-व्यापक रूपसे स्वय परिणमन कर रही है। वह परिणमन देखा जाय, जीवका स्वरूप न देखा जाय तो जीववस्तु नौ तत्त्वरूप है ऐसा दृष्टि मे आता है। ऐसा भी है, सर्वथा झूठ नही है, क्योकि विभावरूप रागादि परिणाम शक्ति जीवमे ही है। "अथ" अब 'अथ' पद द्वारा दूसरा पक्ष दिखलाते है—वही जीववस्तु द्रव्यरूप है, अपने गुण-पर्यायोमे विराजमान है। जो शुद्ध द्रव्यस्वरूप देखा जाय, पर्यायस्वरूप न देखा जाय तो वह कैसी है ? "सततविविक्तम्" [सतत] निरन्तर [विविक्तं] नौ तत्त्वोके विकल्पसे रहित है, शुद्ध वस्तुमात्र है। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध स्वरूपका अनुभव सम्यक्त्व है। और कैसी है वह आत्मज्योति ? "वर्णमालाकलापे कनकमिव निमग्न" [वर्णमाला] पदके दो अर्थ है—एक तो बनवारी* और दूसरा भेदपक्ति। भावार्थ इस प्रकार है कि गुण-गुणीके भेदरूप भेदप्रकाश। 'कलाप' का अर्थ समूह है। इसलिये ऐसा अर्थ निष्पन्न हुआ कि जैसे एक ही सोना बानभेदसे अनेकरूप कहा जाता है वैसे एक ही जीववस्तु द्रव्य-गुण-पर्यायरूपसे अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूपसे अनेकरूप कही जाती है। "अथ" अब 'अथ' पद द्वारा पुन दूसरा पक्ष दिखलाते है—"प्रतिपद एकरूप" [प्रतिपदं] गुण-पर्यायरूप, अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप अथवा दृष्टातकी अपेक्षा बानभेदरूप जितने भेद है उन सब भेदोमे भी [एकरूपं] आप (एक) ही है। वस्तुका विचार करनेपर भेदरूप भी वस्तु

* बनवारी-सोनारकी मूँस।

ही है, वस्तुसे भिन्न भेद कुछ वस्तु नही है । भावार्थ इस प्रकार है कि सुवर्णमात्र न देखा जाय, बानभेदमात्र देखा जाय तो बानभेद है, सुवर्णकी शक्ति ऐसी भी है । जो बानभेद न देखा जाय, केवल सुवर्णमात्र देखा जाय तो बानभेद झूठा है । इसी प्रकार जो शुद्ध जीववस्तुमात्र न देखी जाय, गुण-पर्यायमात्र या उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमात्र देखा जाय तो गुण-पर्याय हैं तथा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हैं; जीववस्तु ऐसी भी है । जो गुण-पर्यायभेद या उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यभेद न देखा जाय, वस्तुमात्र देखी जाय तो समस्त भेद झूठा है । ऐसा अनुभव सम्यक्त्व है । और कैसी है आत्मज्योति ? "उन्नीयमान" चेतना लक्षणसे जानी जाती है, इसलिये अनुमानगोचर भी है । अथ दूसरा पक्ष—"उद्योतमान" प्रत्यक्ष ज्ञानगोचर है । भावार्थ इस प्रकार है—जो भेदबुद्धि करते हुए जीववस्तु चेतना लक्षणसे जीवको जानती है, वस्तु विचारनेपर इतना विकल्प भी झूठा है, शुद्ध वस्तु-मात्र है । ऐसा अनुभव सम्यक्त्व है ।८।

(मालिनी)

उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं
क्वचिदपि च न विद्मो याति निक्षेपचक्रम् ।
किमपरमभिदध्मो धाम्नि सर्वंकषेऽस्मिन्
अनुभवमुपयाते भाति न द्वैतमेव ।।९।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अस्मिन् धाम्नि अनुभवमुपयाते द्वैतमेव न भाति" [**अस्मिन्**] इस—स्वयसिद्ध [**धाम्नि**] चेतनात्मक जीव वस्तुका [**अनुभवं**] प्रत्यक्षरूप आस्वाद [**उपयाते**] आनेपर [**द्वैतमेव**] सूक्ष्म-स्थूल अन्तर्जल्प और बहिर्जल्परूप सभी विकल्प [**न भाति**] नही शोभते है । भावार्थ इस प्रकार है—अनुभव प्रत्यक्ष ज्ञान है । प्रत्यक्ष ज्ञान है अर्थात् वेद्य-वेदकभावसे आस्वादरूप है और वह अनुभव परसहायसे निरपेक्ष है । ऐसा अनुभव यद्यपि ज्ञानविशेष है तथापि सम्यक्त्वके साथ अविनाभूत है, क्योकि यह सम्यग्दृष्टिके होता है, मिथ्यादृष्टिके नही होता है ऐसा निश्चय है । ऐसा अनुभव होनेपर जीववस्तु अपने शुद्धस्वरूपको प्रत्यक्षरूपसे आस्वादती है । इसलिये जितने कालतक अनुभव होता है उतने कालतक वचनव्यवहार सहज ही बन्द रहता है, क्योकि वचन व्यवहार तो परोक्षरूपसे कथक है । यह जीव तो प्रत्यक्षरूप अनुभवशील है, इसलिये (अनुभवकालमे) वचनव्यवहार पर्यन्त कुछ रहा नही । कैसी है जीववस्तु ?

"सर्वंकषे" [सर्वं] सब प्रकारके विकल्पोका [कषे] क्षयकरणशील (क्षय करनेरूप स्वभाववाली) है। भावार्थ इस प्रकार है—जैसे सूर्यप्रकाश अन्धकारसे सहज ही भिन्न है वैसे अनुभव भी समस्त विकल्पोसे रहित ही है। यहाँ पर कोई प्रश्न करेगा कि अनुभवके होनेपर कोई विकल्प रहता है कि जिनका नाम विकल्प है वे समस्त ही मिटते है ? उत्तर इस प्रकार है कि समस्त ही विकल्प मिट जाते है, उसीको कहते है—"नयश्रीरपि न उदयति, प्रमाणमपि अस्तमेति, न विद्म निक्षेपचक्रमपि क्वचित् याति, अपर किं अभिदध्म" जो अनुभवके आनेपर प्रमाण-नय-निक्षेप ही झूठा है। वहाँ रागादि विकल्पोकी क्या कथा ? भावार्थ इस प्रकार है—जो रागादि तो झूठा ही है, जीवस्वरूपसे बाह्य है। प्रमाणनय-निक्षेपरूप बुद्धिके द्वारा एक ही जीव द्रव्यका द्रव्य-गुण-पर्यायरूप अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप भेद किया जाता है, वे समस्त झूठे है। इन सबके झूठे होनेपर जो कुछ वस्तुका स्वाद है सो अनुभव है। (प्रमाण) युगपत् अनेक धर्मग्राहक ज्ञान, वह भी विकल्प है, (नय) वस्तुके किसी एक गुणका ग्राहक ज्ञान वह भी विकल्प है और (निक्षेप) उपचार घटनारूप ज्ञान, वह भी विकल्प है। भावार्थ इस प्रकार है कि अनादिकालसे जीव अज्ञानी है, जीवस्वरूपको नही जानता है। वह सब जीवसत्त्वकी प्रतीति आनी चाहे तब जैसे ही प्रतीति आवे तैसे ही वस्तु-स्वरूप साधा जाता है। सो साधना गुण-गुणीज्ञान द्वारा होती है, दूसरा उपाय तो कोई नही है। इसलिये वस्तुस्वरूपका गुण-गुणीभेदरूप विचार करनेपर प्रमाण-नय-निक्षेपरूप विकल्प उत्पन्न होते है। वे विकल्प प्रथम अवस्थामें भले ही है, तथापि स्वरूप मात्र अनुभवनेपर झूठे है ।९।

(उपजाति)

आत्मस्वभावं परभावभिन्न-
मापूर्णमाद्यन्तविमुक्तमेकम् ।
विलीनसंकल्पविकल्पजालं-
प्रकाशयन् शुद्धनयोऽभ्युदेति ॥१०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"शुद्धनय अभ्युदेति" [शुद्धनय] निरुपाधि जीव-वस्तुस्वरूपका उपदेश [अभ्युदेति] प्रगट होता है। क्या करता हुआ प्रगट होता है ? "एकं प्रकाशयन्" [एकं] शुद्धस्वरूप जीववस्तुको [प्रकाशयन्] निरूपण करता हुआ।

कैसा है शुद्ध जीवस्वरूप ? "आद्यन्तविमुक्त" [आद्यन्त] समस्त पिछले और आगामी कालसे [विमुक्तं] रहित है। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध जीववस्तुकी आदि भी नही है, अन्त भी नही है। जो ऐसे स्वरूपको सूचित करता है उसका नाम शुद्धनय है। पुन कैसी है जीववस्तु ? "विलीनसकल्पविकल्पजाल" [विलीन] विलयको प्राप्त हो गया है [संकल्प] रागादि परिणाम और [विकल्प] अनेक नयविकलपरूप ज्ञानकी पर्याय जिसके ऐसी है। भावार्थ इस प्रकार है कि समस्त संकल्प-विकल्पसे रहित वस्तुस्वरूपका अनुभव सम्यक्त्व है। पुन कैसी है शुद्ध जीववस्तु ? "परभावभिन्न" रागादि भावोसे भिन्न है। और कैसी है ? "आपूर्ण" अपने गुणोसे परिपूर्ण है। और कैसी है ? "आत्मस्वभाव" आत्माका निज भाव है ॥१०॥

(मालिनी)

न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावादयोऽमी
स्फुटमुपरि तरन्तोऽप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम् ।
अनुभवतु तमेव द्योतमानं समन्तात्
जगदपगतमोहीभूय सम्यक्स्वभावम् ॥११॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"जगत् तमेव स्वभाव सम्यक् अनुभवतु" [जगत्] सर्व जीवराशि [तमेव] निश्चयसे पूर्वोक्त [स्वभावं] शुद्ध जीववस्तुको [सम्यक्] जैसी है वैसी [अनुभवतु] प्रत्यक्षपनेसे स्वसवेदनरूप आस्वादो। कैसी होकर आस्वादे ? "अपगतमोहीभूय" [अपगत] चली गई है [मोहीभूय] शरीरादि परद्रव्यसम्बन्धी एकत्वबुद्धि जिसकी ऐसी होकर। भावार्थ इस प्रकार है कि ससारी जीवको संसारमे वसते हुए अनन्तकाल गया। शरीरादि परद्रव्य स्वभाव था, परन्तु यह जीव अपना ही जानकर प्रवृत्त हुआ, सो जभी यह विपरीत बुद्धि छूटती है तभी यह जीव शुद्धस्वरूपका अनुभव करनेके योग्य होता है। कैसा है शुद्धस्वरूप ? "समन्तात् द्योतमान" [समन्तात्] सव प्रकारसे [द्योतमानं] प्रकाशमान है। भावार्थ इस प्रकार है कि अनुभवगोचर होनेपर कुछ भ्रान्ति नही रहती। यहाँ पर कोई प्रश्न करता है कि जीवको तो शुद्ध-स्वरूप कहा और वह ऐसा ही है, परन्तु राग-द्वेष-मोहरूप परिणामोको अथवा सुख-दुःख आदिरूप परिणामोको कौन करता है, कौन भोगता है ? उत्तर इस प्रकार है कि इन परिणामोको करे तो जीव करता है और जीव भोक्ता है परन्तु यह परिणति

विभावरूप है, उपाधिरूप है। इस कारण निजस्वरूप विचारनेपर यह जीवका स्वरूप नही है ऐसा कहा जाता है। कैसा है शुद्धस्वरूप ? "यत्र अमी बद्धस्पृष्टभावादय प्रतिष्ठा न हि विदधति" [यत्र] जिस शुद्धात्मस्वरूपमे [अमी] विद्यमान [बद्ध] अशुद्ध रागादिभाव, [स्पृष्ट] परस्पर पिण्डरूप एक क्षेत्रावगाह और [भावादयः] आदि शब्दसे गृहीत अन्यभाव, अनियतभाव, विशेपभाव और सयुक्तभाव इत्यादि जो विभावपरिणाम है वे समस्त भाव शुद्धस्वरूपमे [प्रतिष्ठां] शोभाको [न हि विदधति] नही धारण करते है। नर, नारक, तिर्यञ्च और देवपर्यायरूप भावका नाम अन्यभाव है। असख्यात प्रदेशसम्बन्धी सकोच और विस्ताररूप परिणामनका नाम अनियतभाव है। दर्शन, ज्ञान और चारित्ररूप भेदकथनका नाम विशेषभाव है तथा रागादि उपाधि सहितका नाम सयुक्तभाव है। भावार्थ इस प्रकार है कि बद्ध, स्पृष्ट, अन्य, अनियत, विशेष और सयुक्त ऐसे जो छह विभाव परिणाम है वे समस्त ससार अवस्थायुक्त जीवके हैं, शुद्ध जीवस्वरूपका अनुभव करनेपर जीवके नही है। कैसे है बद्ध-स्पृष्ट आदि विभावभाव ? "स्फुट" प्रगटरूपसे "एत्य अपि" उत्पन्न होते हुए विद्यमान ही है तथापि "उपरि तरन्त" ऊपर ही ऊपर रहते है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवका ज्ञानगुण त्रिकालगोचर है उस प्रकार रागादि विभावभाव जीववस्तुमे त्रिकालगोचर नही है। यद्यपि ससार अवस्थामे विद्यमान ही है तथापि मोक्ष अवस्थामे सर्वथा नही है, इसलिए ऐसा निश्चय है कि रागादि जीवस्वरूप नही है ॥११॥

(शार्दूलविक्रीडित)

भूतं भान्तमभूतमेव रभसा निर्भिद्य बन्धं सुधी-
यद्यन्तः किल कोऽप्यहो कलयति व्याहत्यमोहं हठात् ।
आत्मात्मानुभवैकगम्यमहिमा व्यक्तोऽयमास्ते ध्रुवं
नित्य कर्मकलङ्कपङ्कविकलो देवः स्वयं शाश्वतः ॥१२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अय आत्मा व्यक्त आस्ते" [अयं] इस प्रकार [आत्मा] चेतनालक्षण जीव [व्यक्तः] स्वस्वभावरूप [आस्ते] होता है। कैसा होता है ? "नित्य कर्मकलकपकविकल" [नित्यं] त्रिकालगोचर [कर्म] अशुद्धतारूप [कलंकपंक] कलुपता—कीचडसे [विकलः] सर्वथा भिन्न होता है। और कैसा है ? "ध्रुव" चार गतिमे भ्रमता हुआ रह (रुक) गया। और कैसा है ? "देव" त्रैलोक्यसे

पूज्य है। और कैसा है ? "स्वय शाश्वत." द्रव्यरूप विद्यमान ही है। और कैसा होता है ? "आत्मानुभवैकगम्यमहिमा" [आत्मा] चेतन वस्तुके [अनुभव] प्रत्यक्ष-आस्वादके द्वारा [एक] अद्वितीय [गम्य] गोचर है [महिमा] बडाई जिसकी ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवका जिस प्रकार एक ज्ञानगुण है उसी प्रकार एक अतीन्द्रिय सुखगुण है सो सुखगुण संसार अवस्थामे अशुद्धपनेसे प्रगट आस्वादरूप नही है। अशुद्धपनाके जानेपर प्रगट होता है। वह सुख अतीन्द्रिय परमात्माके होता है। उस सुखको कहनेके लिये कोई दृष्टात चारो गतियोमे नही है, क्योकि चारों ही गतियाँ दु खरूप है, इसलिये ऐसा कहा कि जिसको शुद्धस्वरूपका अनुभव है सो जीव परमात्मा-रूप जीवके सुखको जाननेके योग्य है। क्योंकि शुद्धस्वरूप अनुभवनेपर अतीन्द्रिय सुख है—ऐसा भाव सूचित किया है। कोई प्रश्न करता है कि कैसा कारण करनेसे जीव शुद्ध होता है ? उत्तर इस प्रकार है कि शुद्धका अनुभव करनेसे जीव शुद्ध होता है। "किल यदि कोऽपि सुधी अन्त कलयति" [किल] निश्चयसे [यदि] जो [कोऽपि] कोई जीव [अन्तः कलयति] शुद्धस्वरूपको निरन्तर अनुभवता है। कैसा है जीव ? "सुधी" शुद्ध है वुद्धि जिसकी। क्या करके अनुभवता है ? "रभसा वन्ध निर्भिद्य" [रभसा] उसी काल [वन्धं] द्रव्यपिण्डरूप मिथ्यात्व कर्मके [निर्भिद्य] उदयको मेट करके अथवा मूलसे सत्ता मेट करके, तथा "हठात् मोह व्याहत्य" [हठात्] वलसे [मोहं] मिथ्यात्वरूप जीवके परिणामको [व्याहत्य] समूल नाश करके। भावार्थ इस प्रकार है कि अनादि कालका मिथ्यादृष्टि ही जीव काललव्धिके प्राप्त होनेपर सम्यक्त्वके ग्रहणकालके पूर्व तीन करण करता है। वे तीन करण अन्तर्मुहूर्तमे होते है। करण करनेपर द्रव्यपिण्डरूप मिथ्यात्वकर्मकी शक्ति मिटती है। उस शक्तिके मिटनेपर भावमिथ्यात्वरूप जीवका परिणाम मिटता है। जिस प्रकार धतूराके रसका पाक मिटनेपर गहलपना मिटता है। कैसा है वन्ध अथवा मोह ? "भूत भान्तं अभूत एव" [एव] निश्चयसे [भूतं] अतीत काल सम्वन्धी, [भान्तं] वर्तमान काल सम्वन्धी, [अभूतं] आगामी कालसम्वन्वी। भावार्थ इस प्रकार है—त्रिकाल संस्काररूप है जो शरीरादिसे एकत्ववुद्धि उसके मिटनेपर जो जीव शुद्ध जीवको अनुभवता है वह जीव निश्चयसे कर्मोंसे मुक्त होता है ॥१२॥

(वसन्ततिलका)

आत्मानुभूतिरिति शुद्ध नयात्मिका या
ज्ञानानुभूतिरियमेव किलेति बुद्ध्वा ।
आत्मानमात्मनि निवेश्य सुनिष्प्रकम्प-
मेकोऽस्ति नित्यमवबोधघनः समन्तात् ॥१३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"आत्मा सुनिष्प्रकम्प एकोऽस्ति" [आत्मा] चेतन द्रव्य [सुनिष्प्रकम्पं] अशुद्ध परिणामनसे रहित [एकः] शुद्ध [अस्ति] होता है। कैसा है आत्मा ? "नित्य समन्तात् अवबोधघन" [नित्यं] सदाकाल [समन्तात्] सर्वाङ्ग [अवबोधघनः] ज्ञानगुणका समूह है–ज्ञानपुञ्ज है। क्या करके आत्मा शुद्ध होता है ? "आत्मना आत्मनि निवेश्य" [आत्मना] अपनेसे [आत्मनि] अपने ही मे [निवेश्य] प्रविष्ट होकर। भावार्थ इस प्रकार है कि आत्मानुभव परद्रव्यकी सहायतासे रहित है। इस कारण अपने ही मे अपनेसे आत्मा शुद्ध होता है। यहाँ पर कोई प्रश्न करता है कि इस अवसरपर तो ऐसा कहा कि आत्मानुभव करनेपर आत्मा शुद्ध होता है और कहीपर यह कहा है कि ज्ञानगुण-मात्र अनुभव करनेपर आत्मा शुद्ध होता है सो इसमे विशेषता क्या है ? उत्तर इस प्रकार है कि विशेषता तो कुछ भी नही है। वही कहते है—"या शुद्धनयात्मिका आत्मानुभूति इति किल इय एव ज्ञानानुभूति इति बुद्ध्वा" [या] जो [आत्मानुभूतिः] आत्मद्रव्यका प्रत्यक्षरूपसे आस्वाद है। कैसी है अनुभूति ? [शुद्धनयात्मिका] शुद्धनय अर्थात् शुद्धवस्तु सो ही है आत्मा अर्थात् स्वभाव जिसका ऐसी है। भावार्थ इस प्रकार है—निरुपाधिरूपसे जीवद्रव्य जैसा है वैसा ही प्रत्यक्षरूपसे आस्वाद आवे इसका नाम शुद्धात्मानुभव है। [किल] निश्चयसे [इयं एव ज्ञानानुभूतिः] यह जो आत्मानुभूति कही वही ज्ञानानुभूति है [इतिबुद्ध्वा] इतनामात्र जानकर। भावार्थ इस प्रकार है कि जीववस्तुका जो प्रत्यक्षरूपसे आस्वाद, उसको नामसे आत्मानुभव ऐसा कहा जाय अथवा ज्ञानानुभव ऐसा कहा जाय। नामभेद है, वस्तुभेद नही है। ऐसा जानना कि आत्मानुभव मोक्षमार्ग है। इस प्रसगमे और भी सशय होता है कि कोई जानेगा कि द्वादशाङ्ग ज्ञान कुछ अपूर्व लब्धि है। उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि द्वादशाङ्गज्ञान भी विकल्प है। उसमे भी ऐसा कहा है कि शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग है, इसलिए शुद्धात्मानुभूतिके होनेपर शास्त्र पढने की कुछ अटक नही है ॥१३॥

(पृथ्वी)

अखण्डितमनाकुलं ज्वलदनन्तमन्तर्बहि-
र्महः परममस्तु नः सहजमुद्विलासं सदा ।
चिदुच्छलननिर्भरं सकलकालमालम्बते
यदेकरसमुल्लसल्लवणखिल्यलीलायितम् ॥१४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तत् मह न अस्तु" [तत्] वही [महः] शुद्ध ज्ञानमात्र वस्तु [**नः**] हमारे [**अस्तु**] हो। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्धस्वरूपका अनुभव उपादेय है, अन्य समस्त हेय है। कैसा है वह 'मह'? "परम" उत्कृष्ट है। और कैसा है 'मह'? "अखण्डित" खण्डित नही है—परिपूर्ण है। भावार्थ इस प्रकार है कि इन्द्रियज्ञान खण्डित है सो यद्यपि वर्तमान कालमे उसरूप परिणत हुआ है तथापि स्वरूपसे ज्ञान अतीन्द्रिय है। और कैसा है? "अनाकुल" आकुलतासे रहित है। भावार्थ इस प्रकार है कि यद्यपि ससार अवस्थामे कर्मजनित सुख-दु खरूप परिणमता है तथापि स्वाभाविक सुखस्वरूप है। * और कैसा है? "अन्तर्वहि. ज्वलत्" [**अन्तः**] भीतर [**वहि**] बाहर [**ज्वलत्**] प्रकाशरूप परिणत हो रहा है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीववस्तु असख्यातप्रदेशी है, ज्ञानगुण सब प्रदेशोमे एक समान परिणम रहा है। कोई प्रदेशमे घट-बढ नही है। और कैसा है? "सहज" स्वयसिद्ध है। और कैसा है? "उद्विलास" अपने गुण-पर्यायसे धाराप्रवाहरूप परिणमता है। और कसा है? "यत् (मह) सकलकाल एकरस- आलम्वते" [**यत्**] जो [**महः**] ज्ञानपुञ्ज [**सकलकालं**] त्रिकाल ही [**एकरसं**] चेतनास्वरूपको [**आलम्बते**] आधारभूत है। कैसा है एकरस? "चिदुच्छलननिर्भर" [**चित्**] ज्ञान [**उच्छलन**] परिणामन उससे [**निर्भरं**] भरितावस्थ है। और कैसा है एकरस? "लवणखिल्यलीलायित" [**लवण**] क्षाररसकी [**खिल्य**] कॉकरीकी [**लीलायितं**] परिणतिके समान जिसका स्वभाव है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार नमककी कॉंकरी सर्वाग ही क्षार है उसी प्रकार चेतनद्रव्य सर्वाग ही चेतन है ॥१४॥

(अनुष्टुप्)

एष ज्ञानघनो नित्यमात्मा सिद्धिमभीप्सुभिः ।
साध्य-साधकभावेन द्विधैकः समुपास्यताम् ॥१५॥

---

* प० श्रीराजमल्लजीकी टीकामे यहाँ "अनतम" पदका अर्थ करना रह गया है।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"सिद्धिमभीप्सुभि एप आत्मा नित्य समु पास्यताम्" [**सिद्धिं**] सकल कर्मक्षयलक्षरा मोक्षको [**अभीप्सुभिः**] उपादेयरूपसे अनुभव करनेवाले जीवो को [**एष आत्मा**] उपादेय ऐसा अपना शुद्ध चैतन्यद्रव्य [**नित्यं**] सदाकाल [**समुपास्यताम्**] अनुभवना। कैसा है आत्मा ? "ज्ञानघन" [**ज्ञान**] स्व-परग्राहक शक्तिका [**घनः**] पुञ्ज है। और कैसा है ? "एक" समस्त विकल्प रहित है। और कैसा है ? "साध्य-साधकभावेन द्विधा" [**साध्य**] सकल कर्मक्षयलक्षण मोक्ष [**साधक**] मोक्षका कारण शुद्धोपयोगलक्षरा शुद्धात्मानुभव [**भावेन**] ऐसी जो दो अवस्था उनके भेदसे [**द्विधा**] दो प्रकारका है। भावार्थ इस प्रकार है कि एक ही जीवद्रव्य कारण-रूप भी अपनेमे ही परिरामता है और कार्यरूप भी अपनेमे ही परिरामता है। इस कारण मोक्ष जानेमे किसी द्रव्यान्तरका सहारा नही है, इसलिये शुद्ध आत्माका अनुभव करना चाहिये ॥१५॥

(अनुष्टुप्)

दर्शन-ज्ञान-चारित्रैस्त्रित्वादेकत्वतः स्वयम् ।
मेचकोऽमेचकश्चापि सममात्मा प्रमाणतः ॥१६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"आत्मा मेचक" [**आत्मा**] चेतन द्रव्य [**मेचकः**] मलिन है। किसकी अपेक्षा मलिन है ? "दर्शन-ज्ञान-चारित्रैस्त्रित्वात्" सामान्यरूपसे अर्थग्राहक शक्तिका नाम दर्शन है, विशेषरूपसे अर्थग्राहक शक्तिका नाम ज्ञान है और शुद्धत्वशक्तिका नाम चारित्र है। इस प्रकार शक्तिभेद करनेपर एक जीव तीन प्रकार होता है। इससे मलिन कहनेका व्यवहार है। "आत्मा अमेचक." [**आत्मा**] चेतन द्रव्य [**अमेचकः**] निर्मल है। किसकी अपेक्षा निर्मल है ? "स्वय एकत्वत" [**स्वयं**] द्रव्यका सहज [**एकत्वतः**] निर्भेदपना होनेसे, ऐसा निश्चयनय कहा जाता है। "आत्मा प्रमाणत सम मेचक अमेचकोऽपि च" [**आत्मा**] चेतनद्रव्य [**समं**] एक ही काल [**मेचकः अमेचकोऽपि च**] मलिन भी है और निर्मल भी है। किसकी अपेक्षा ? [**प्रमाणतः**] युगपत् अनेक धर्मग्राहक ज्ञानकी अपेक्षा। इसलिये प्रमाणदृष्टिसे देखनेपर एक ही काल जीवद्रव्य भेदरूप भी है, अभेदरूप भी है ॥१६॥

(अनुष्टुप्)

दर्शन-ज्ञान-चारित्रैस्त्रिभिः परिणतत्वतः ।
एकोऽपि त्रिस्वभावत्वाद्व्यवहारेण मेचकः ॥१७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एकोऽपि व्यवहारेण मेचकः" [**एकोऽपि**] द्रव्य-दृष्टिसे यद्यपि जीवद्रव्य शुद्ध है तो भी [**व्यवहारेण**] गुण-गुणीरूप भेददृष्टिसे [**मेचकः**] मलिन है। सो भी किसकी अपेक्षा ? "त्रिस्वभावत्वात्" [**त्रि**] दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ये तीन है [**स्वभावत्वात्**] सहजगुण जिसके, ऐसा होनेसे। वह भी कैसा होनेसे ? "दर्शन-ज्ञान-चारित्रैः त्रिभिः परिणतत्वतः" क्योकि वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीन गुणरूप परिणमता है, इसलिये भेदबुद्धि भी घटित होती है ॥१७॥

(अनुष्टुप्)

परमार्थेन तु व्यक्तज्ञातृत्वज्योतिषैककः।
सर्वभावान्तरध्वंसिस्वभावत्वादमेचकः ॥१८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तु परमार्थेन एककः अमेचकः" [**तु**] पद द्वारा दूसरा पक्ष क्या है यह व्यक्त किया है। [**परमार्थेन**] शुद्ध द्रव्यदृष्टिसे [**एककः**] शुद्ध जीववस्तु [**अमेचकः**] निर्मल है—निर्विकल्प है। कैसा है परमार्थ ? "व्यक्तज्ञातृत्व-ज्योतिषा" [**व्यक्त**] प्रगट है [**ज्ञातृत्व**] ज्ञानमात्र [**ज्योतिषा**] प्रकाश-स्वरूप जिसमे ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध-निर्भेद वस्तुमात्रग्राहक ज्ञान निश्चयनय कहा जाता है। उस निश्चयनयसे जीवपदार्थ सर्वभेदरहित शुद्ध है। और कैसा होनेसे शुद्ध है ? "सर्वभावान्तरध्वंसिस्वभावत्वात्" [**सर्व**] समस्त द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म अथवा ज्ञेयरूप परद्रव्य ऐसे जो [**भावान्तर**] उपाधिरूप विभावभाव उनका [**ध्वंसि**] मेटनशील है [**स्वभावत्वात्**] निज स्वरूप जिसका, ऐसा स्वभाव होनेसे शुद्ध है ॥१८॥

(अनुष्टुप्)

आत्मनश्चिन्तयैवालं मेचकामेचकत्वयोः।
दर्शन-ज्ञान-चारित्रैः साध्यसिद्धिर्न चान्यथा ॥१९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"मेचकामेचकत्वयोः आत्मनः चिन्तया एव अलं" आत्मा [**मेचक**] मलिन है और [**अमेचक**] निर्मल है, इस प्रकार ये दोनो नय पक्षपातरूप हैं। [**आत्मनः**] चेतनद्रव्यके ऐसे [**चिन्तया**] विचारसे [**अलं**] बस हो। ऐसा विचार करनेसे तो साध्यकी सिद्धि नही होती [**एव**] ऐसा निश्चय जानना। भावार्थ इस प्रकार है कि श्रुतज्ञानसे आत्मस्वरूप विचारनेपर बहुत विकल्प उत्पन्न होते है। एक पक्षसे विचारनेपर आत्मा अनेक रूप है, दूसरे पक्षसे विचारनेपर आत्मा अभेदरूप है। ऐसे विचारते हुए तो स्वरूप अनुभव नही। यहाँ पर कोई प्रश्न करता है कि विचारते

हुए तो अनुभव नही, तो अनुभव कहाँ है ? उत्तर इस प्रकार है कि प्रत्यक्षरूपसे वस्तुको आस्वादते हुए अनुभव है। वही कहते है—"दर्शन-ज्ञान-चारित्रै साध्यसिद्धि" [दर्शन] शुद्धस्वरूपका अवलोकन, [ज्ञान] शुद्धस्वरूपका प्रत्यक्ष जानपना, [चारित्र] शुद्ध-स्वरूपका आचरण ऐसे कारण करनेसे [साध्य] सकलकर्मक्षयलक्षण मोक्षकी [सिद्धिः] प्राप्ति होती है। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्धस्वरूपका अनुभव करनेपर मोक्षकी प्राप्ति है। कोई प्रश्न करता है कि इतना ही मोक्षमार्ग है कि कुछ और भी मोक्षमार्ग है। उत्तर इस प्रकार है कि इतना ही मोक्षमार्ग है। "न चान्यथा" [च] पुनः [अन्यथा] अन्य प्रकारसे [न] साध्यसिद्धि नही होती ॥१९॥

(मालिनी)

कथमपि समुपात्तत्रित्वमप्येकतायाः
अपतितमिदमात्मज्योतिरुद्गच्छदच्छम्।
सततमनुभवामोऽनन्तचैतन्यचिह्नं
न खलु न खलु यस्मादन्यथा साध्यसिद्धिः ॥२०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इद आत्मज्योति सतत अनुभवाम" [इदं] प्रगट [आत्मज्योतिः] चैतन्यप्रकाशको [सततं] निरन्तर [अनुभवामः] प्रत्यक्षरूपसे हम आस्वादते है। कैसी है आत्मज्योति ? "कथमपि समुपात्तत्रित्व अपि एकताया अपतित" [कथमपि] व्यवहारदृष्टिसे [समुपात्तत्रित्वं] ग्रहण किया है तीन भेदोको जिसने ऐसी है तथापि [एकतायाः] शुद्धतासे [अपतितं] गिरती नही है। और कैसी है आत्म-ज्योति ? "उद्गच्छत्" प्रकाशरूप परिणमती है। और कैसी है ? "अच्छ" निर्मल है। और कैसी है ? "अनन्तचैतन्यचिह्न" [अनन्त] अतिवहुत [चैतन्य] ज्ञान है [चिह्नं] लक्षण जिसका ऐसी है। कोई आशका करता है कि अनुभवको बहुतकर दृढ किया सो किस कारण ? वही कहते है—"यस्मात् अन्यथा साध्यसिद्धि न खलु न खलु" [यस्मात्] जिस कारण [अन्यथा] अन्य प्रकार [साध्यसिद्धिः] स्वरूपकी प्राप्ति [न खलु न खलु] नही होती नही होती, ऐसा निश्चय है ॥२०॥

(मालिनी)

कथमपि हि लभन्ते भेदविज्ञानमूला-
मचलितमनुभूतिं ये स्वतो वान्यतो वा।

प्रतिफ़लननिमग्नानन्तभावस्वभावै-
र्मुकुरवदविकाराः सन्ततं स्युस्त एव ॥२१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ये अनुभूतिं लभन्ते" [ये] जो कोई निकट संसारी जीव [अनुभूतिं] शुद्ध जीववस्तुके आस्वादको [लभन्ते] प्राप्त करते हैं। कैसी है अनुभूति ? "भेदविज्ञानमूलां" [भेद] स्वस्वरूप-परस्वरूपको द्विधा करना ऐसा जो [विज्ञान] जानपना वही हैं [मूलां] सर्वस्व जिसका ऐसी है। और कैसी है ? "अचलितं" स्थिरतारूप है। ऐसी अनुभूति कैसे प्राप्त होती है, वही कहते हैं—कथमपि स्वतो वा अन्यतो वा" [कथमपि] अनन्त संसारमें भ्रमण करते हुए कैसे ही करके काललब्धि प्राप्त होती है तब सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। तब अनुभव होता है; [स्वतो वा] मिथ्यात्व कर्मका उपशम होनेपर उपदेशके विना ही अनुभव होता है, अथवा [अन्यतो वा] अन्तरङ्गमें मिथ्यात्व कर्मका उपशम होनेपर और वहिरंगमें गुरुके समीप सूत्रका उपदेश मिलनेपर अनुभव होता है। कोई प्रश्न करता है कि जो अनुभवको प्राप्त करते हैं वे अनुभवको प्राप्त करनेसे कैसे होते हैं ? उत्तर इस प्रकार है कि वे निर्विकार होते हैं, वही कहते हैं—"त एव सन्ततं मुकुरवत् अविकाराः स्युः" [ते एव] अर्थात् वे ही जीव [सन्ततं] निरन्तर [मुकुरवत्] दर्पणके समान [अविकाराः] रागद्वेष रहित [स्युः] हैं। किनसे निर्विकार हैं ?। "प्रतिफलननिमग्नानन्तभावस्वभावैः" [प्रतिफलन] प्रतिविम्बरूपसे [निमग्न] गर्भित जो [अनन्तभाव] सकल द्रव्योंके [स्वभावैः] गुण-पर्याय, उनसे निर्विकार हैं। भावार्थ इस प्रकार है—जो जीव के शुद्ध स्वरूप का अनुभव करता है उसके ज्ञानमें सकल पदार्थ उद्दीप्त होते हैं, उसके भाव अर्थात् गुण-पर्याय, उनसे निर्विकाररूप अनुभव है ॥२१॥

(मालिनी)

त्यजतु जगदिदानीं मोहमाजन्मलीढं
रसयतु रसिकानां रोचनं ज्ञानमुद्यत् ।
इह कथमपि नात्माऽनात्मना साकमेकः
किल कलयति काले क्वापि तादात्म्यवृत्तिम् ॥२२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"जगत् मोहं त्यजतु" [जगत्] संसारी जीवराशि [मोहं] मिथ्यात्व परिणामको [त्यजतु] सर्वथा छोड़ो। छोड़नेका अवसर कौनसा ?

"इदानी" तत्काल। भावार्थ इस प्रकार है कि शरीरादि पर द्रव्योके साथ जीवकी एकत्वबुद्धि विद्यमान है, वह सूक्ष्म कालमात्र भी आदर करने योग्य नही है। कैसा है मोह ? "आजन्मलीढ" [आजन्म] अनादिकालसे [लीढं] लगा हुआ है। "ज्ञान रसयतु" [ज्ञानं] शुद्ध चैतन्यवस्तुको [रसयतु] स्वानुभव प्रत्यक्षरूपसे आस्वादो। कैसा है ज्ञान ? "रसिकाना रोचन" [रसिकानां] शुद्ध स्वरूपके अनुभवशील सम्यग्दृष्टि जीवोको [रोचनं] अत्यन्त सुखकारी है। और कैसा है ज्ञान ? "उद्यत्" त्रिकाल ही प्रकाशरूप है। कोई प्रश्न करता है कि ऐसा करने पर कार्यसिद्धि कैसी होती है। उत्तर कहते है—"इह किल एक आत्मा अनात्मना साकं तादात्म्यवृत्ति क्वापि काले कथमपि न कलयति" [इह] मोहका त्याग, ज्ञान वस्तुका अनुभव—ऐसा बारम्बार अभ्यास करनेपर [किल] नि सन्देह [एकः] शुद्ध [आत्मा] चेतनद्रव्य [अनात्मना] द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म आदि समस्त विभाव परिणामोके [साकं] साथ [तादात्म्यवृत्तिं] जीव और कर्मके वन्धात्मक एकक्षेत्रसम्वन्धरूप [क्वापि] किसी अतीत, अनागत और वर्तमान सम्वन्धी [काले] समय-घडी-प्रहर-दिन-वर्षमे [कथमपि] किसी भी तरह [न कलयति] नही ठहरता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य धातु और पाषाणके सयोगके समान पुद्गलकर्मके साथ मिला हुआ चला आ रहा है और मिला हुआ होनेसे मिथ्यात्व-राग-द्वेषरूप विभाव चेतन परिणामसे परिणमता ही आ रहा है। ऐसे परि-णमते हुए ऐसी दशा निपजी कि जीव द्रव्यका निजस्वरूप जो केवलज्ञान, केवलदर्शन, अतीन्द्रिय सुख और केवलवीर्य, उससे यह जीवद्रव्य भ्रष्ट हुआ तथा मिथ्यात्वरूप विभाव-परिणामसे परिणमते हुए ज्ञानपना भी छूट गया। जीवका निजस्वरूप अनन्तचतुष्टय है, शरीर, सुख, दु ख, मोह, राग, द्वेष इत्यादि समस्त पुद्गलकर्मकी उपाधि है, जीवका स्वरूप नही ऐसी प्रतीति भी छूट गई। प्रतीति छूटने पर जीव मिथ्यादृष्टि हुआ। मिथ्या-दृष्टि होता हुआ ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध करणशील हुआ। उस कर्मबन्धका उदय होनेपर जीव चारो गतियोमे भ्रमता है। इसप्रकार ससारकी परिपाटी है। इस ससारमे भ्रमण करते हुए किसी भव्यजीवका जव निकट संसार आ जाता है तब जीव सम्यक्त्वको ग्रहण करता है। सम्यक्त्वको ग्रहण करनेपर पुद्गलपिण्डरूप मिथ्यात्वकर्मोका उदय मिटता है तथा मिथ्यात्वरूप विभावपरिणाम मिटता है विभावपरिणामके मिटनेपर शुद्धस्वरूपका अनुभव होता है। ऐसी सामग्री मिलनेपर जीवद्रव्य पुद्गलकर्मसे तथा विभाव परिणामसे सर्वथा भिन्न होता है। जीवद्रव्य अपने अनन्त चतुष्टयको प्राप्त होता

है । दृष्टात ऐसा है कि जिस प्रकार सुवर्णधातु पाषाणमे ही मिली चली आरही है तथापि अग्निका सयोग पाकर पाषाणसे सुवर्ण जुदा होता है ।।२२।।

(मालिनी)

अयि कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहली सन्
अनुभव भव मूर्तेः पार्श्ववर्ती मुहूर्तम् ।
पृथगथ विलसन्तं स्वं समालोक्य येन
त्यजसि झगिति मूर्त्या साकमेकत्वमोहम् ।।२३।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अयि मूर्त्ते पार्श्ववर्ती भव, अथ मुहूर्त पृथक् अनुभव" [**अयि**] हे भव्यजीव ! [**मूर्तेः**] शरीरसे [**पार्श्ववर्ती**] भिन्नस्वरूप [**भव**] हो। भावार्थ इस प्रकार है कि अनादिकालसे जीवद्रव्य (शरीर के साथ) एक सस्काररूप होकर चला आरहा है, इसलिये जीवको ऐसा कहकर प्रतिबोधित किया जाता है कि भो जीव ! ये जितनी शरीरादि पर्याय है वे सब पुद्गलकर्मकी है तेरी नही । इसलिये इन पर्यायोसे अपने को भिन्न जान । [**अथ**] भिन्न जानकर [**मुहूर्तं**] थोडे ही काल [**पृथक्**] शरीरसे भिन्न चेतन द्रव्यरूप [**अनुभव**] प्रत्यक्षरूपसे आस्वाद ले । भावार्थ इस प्रकार है कि शरीर तो अचेतन है, विनश्वर है । शरीरसे भिन्न कोई तो पुरप है ऐसा जानपना—ऐसी प्रतीति मिथ्यादृष्टि जीवके भी होती है पर साध्यसिद्धि तो कुछ नही । जब जीवद्रव्यका द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप प्रत्यक्ष,आस्वाद आता है तब सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, सकल कर्मक्षयलक्षण मोक्ष भीःहै । कैसा है अनुभवशील जीव ? "तत्त्वकौतूहली सन्" [**तत्त्व**] शुद्धचैतन्य वस्तुका [**कौतूहली सन्**] स्वरूपको देखना चाहता है, ऐसा होता हुआ । और कैसा होकर ? "कथमपि मृत्वा" [**कथमपि**] किसी प्रकार–किसी उपायसे [**मृत्वा**] मरकरके भी शुद्ध जीवस्वरूपका अनुभव करो । भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध चैतन्यका अनुभव तो सहज साध्य है, यत्नसाध्य तो नही है पर इतना कहकर अत्यन्त उपादेयपनेको दृढ किया है, यहाँ पर कोई प्रश्न करता है कि अनुभव तो ज्ञानमात्र है, उससे क्या कुछ कार्यसिद्धि है ? वह भी उपदेश द्वारा कहते हैं—"येन मूर्त्या साक एकत्वमोह झगिति त्यजसि" [**येन**] जिस शुद्ध चैतन्यके अनुभव-द्वारा [**मूर्त्या साकं**] द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मात्मक समस्त कर्मरूप पर्यायके साथ [**एकत्व मोहं**] एक सस्काररूप-'मैं देव हूँ, मै मनुष्य हूँ, मैं तिर्यंच हूँ, मैं नारकी हूँ

आदि, मै सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ आदि, मै क्रोधी हूँ, मै मानी हूँ आदि तथा मै यति हूँ, मैं गृहस्थ हूँ आदिरूप प्रतीति' ऐसा है मोह अर्थात् विपरीतपना, उसको [**झगिति**] अनुभवने मात्रपर [**त्यजसि**] भो जीव ! अपनी बुद्धिसे तू ही छोडेगा। भावार्थ इस प्रकार है कि अनुभव ज्ञानमात्र वस्तु है, एकत्वमोह मिथ्यात्वरूप द्रव्यका विभाव परिणाम है तो भी इनको (अनुभवको और मिथ्यात्वके मिटनेको) आपसमे कारण-कार्यपना है। उसका विवरण—जिसकाल जीवको अनुभव होता है उस काल मिथ्यात्व-परिणमन मिटता है, सर्वथा अवश्य मिटता है। जिस काल मिथ्यात्व परिणमन मिटता है, उसकाल अवश्य अनुभवशक्ति होती है। मिथ्यात्व परिणमन जिस प्रकार मिटता है उसीको कहते हैं—"स्व समालोक्य" [**स्वं**] अपनी शुद्ध चैतन्य वस्तुका [**समालोक्य**] स्वसवेदन प्रत्यक्षरूपमे आस्वाद कर। कैसा है शुद्धचेतन ? "विलसन्त" अनादिनिधन प्रगटरूपसे चेतनारूप परिणाम रहा है ॥२३॥

(शार्दूलविक्रीडित)

कान्त्यैव स्नपयन्ति ये दश दिशो धाम्ना निरुन्धन्ति ये
धामोद्दामहस्विनां जनमनो मुष्णन्ति रूपेण ये।
दिव्येन ध्वनिना सुखं श्रवणयोः साक्षात्क्षरन्तोऽमृतं
वन्द्यास्तेऽष्टसहस्रलक्षणधरास्तीर्थेश्वराः सूरयः ॥२४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—यहाँ पर कोई मिथ्यादृष्टि कुवादी मतान्तरको स्थापता है कि जीव और शरीर एक ही वस्तु है। जैसा कि जैन मानते है कि शरीरसे जीवद्रव्य भिन्न है वैसा नही है, एक ही है, क्योकि शरीरका स्तवन करनेपर आतमा का स्तवन होता है ऐसा जैन भी मानते है। उसीको बतलाते हैं—"ते तीर्थेश्वरा. वन्द्या" [**ते**] अवश्य विद्यमान है ऐसे, [**तीर्थेश्वराः**] तीर्थंकरदेव [**वन्द्याः**] त्रिकाल नमस्कार करने योग्य है। कैसे है वे तीर्थंकर ? "ये कान्त्या एव दश दिश स्नपयन्ति" [**ये**] तीर्थंकर [**कान्त्या**] शरीरकी दीप्तिद्वारा [**एव**] निश्चयसे [**दश दिशः**] पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण ये चार दिशा, चार कोणरूप विदिशा तथा ऊर्ध्वदिशा और अधोदिशा इन दस दिशाओको [**स्नपयन्ति**] प्रक्षालते है—पवित्र करते है। ऐसे है जो तीर्थंकर उनको नमस्कार है। (जैनो के यहाँ) ऐसा जो कहा सो तो शरीरका वर्णन किया, इसलिये हमे

ऐसी प्रतीति उपजी की शरीर और जीव एक ही है। और कैसे है तीर्थकर ? "ये धाम्ना उद्दाममहस्विना धाम निरुन्धन्ति" [**ये**] तीर्थकर [**धाम्ना**] शरीरके तेज द्वारा [**उद्दाममहस्विनां**] उग्र तेजवाले करोडो सूर्योके [**धाम**] प्रतापको [**निरुन्धन्ति**] रोकते है। भावार्थ इस प्रकार है कि तीर्थकरके शरीरमे ऐसी दीप्ति है कि यदि कोटि सूर्य हो तो कोटि ही सूर्यकी दीप्ति रुक जावे। ऐसे वे तीर्थकर है। यहाँ भी शरीरकी ही बडाई की है। और कैसे है तीर्थंकर ? "ये रूपेण जनमनो मुष्णन्ति" [**ये**] तीर्थंकर [**रूपेण**] शरीरकी शोभा द्वारा [**जन**] सर्व जितने देव-मनुष्य-तिर्यञ्च, उनके [**मनः**] अन्तरगको [**मुष्णन्ति**] चुरा लेते हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि जीव तीर्थकरके शरीर की शोभा देखकर जैसा सुख मानते है वैसा सुख त्रैलोक्यमे अन्य वस्तुको देखनेसे नही मानते है। ऐसे वे तीर्थकर है। यहाँ भी शरीरकी वडाई की है। और कैसे है तीर्थकर ? "ये दिव्येन ध्वनिना श्रवणयो. साक्षात् सुख अमृत क्षरन्त" [**ये**] तीर्थकरदेव [**दिव्येन**] समस्त त्रैलोक्यमे उत्कृष्ट ऐसी [**ध्वनिना**] निरक्षरी वाणीके द्वारा [**श्रवणयोः**] सर्व जीवकी जो कर्णेन्द्रिय, उनमे [**साक्षात्**] उसी काल [**सुखं अमृतं**] सुखमयी शान्तरसको] **क्षरन्तः**] बरसाते है। भावार्थ इसप्रकार है कि तीर्थंकरकी वाणी सुननेपर सब जीवोको वाणी रुचती है, जीव वहुत सुखी होते है। तीर्थंकर ऐसे है। यहाँ भी शरीरकी बडाई है। और कैसे है तीर्थकर ? "अष्टसहस्रलक्षणधरा" [**अष्टसहस्र**] आठ अधिक एक हजार [**लक्षणधराः**] शरीरके चिह्नोको सहज ही धारण करते हैं ऐसे तीर्थकर है। भावार्थ इस प्रकार है कि तीर्थकरके शरीरमे शंख, चक्र, गदा, पद्म, कमल, मगर, मच्छ, ध्वजा आदि रूप आकारको लिये हुए रेखाये होती है जिन सबकी गिनती करनेपर वे सब एक हजार आठ होते है। यहाँ भी शरीरकी बडाई है। और कैसे है तीर्थंकर ? "सूरय" मोक्षमार्गके उपदेष्टा है। यहाँ भी शरीरकी बडाई है। इससे जीव-शरीर एक ही है ऐसी मेरी प्रतीति है ऐसा कोई मिथ्यामतवादी मानता है सो उसके प्रति उत्तर इस प्रकार आगे कहेगे। ग्रन्थकर्ता कहते है कि वचन व्यवहारमात्रसे जीव-शरीरका एकपना कहनेमे आता है। इसीसे ऐसा कहा है कि जो शरीरका स्तोत्र है सो वह तो व्यवहार मात्रसे जीवका स्तोत्र है। द्रव्यदृष्टिसे देखने पर जीव शरीर भिन्न २ हैं। इसलिये जैसा स्तोत्र कहा है वह निज नामसे झूठा है (अर्थात् उसका नाम स्तोत्र घटित नही होता), क्योकि शरीरके गुण कहने पर जीवकी स्तुति नही होती है। जीवके ज्ञानगुणकी स्तुति करनेपर (जीवकी) स्तुति होती है। कोई प्रश्न करता है कि जिस प्रकार

नगरका स्वामी राजा है, इसलिये नगरकी स्तुति करनेपर राजाकी स्तुति होती है, उसी प्रकार शरीरका स्वामी जीव है, इसलिये शरीरकी स्तुति करनेपर जीवकी स्तुति होती है, उत्तर ऐसा है कि इस प्रकार स्तुति नही होती है। राजाके निजगुणकी स्तुति करनेपर राजाकी स्तुति होती है उसी प्रकार जीवके निज चैतन्य गुणकी स्तुति करनेपर जीवकी स्तुति होती है। इसीको कहते हैं ॥२४॥

(आर्या)

प्राकारकवलिताम्बरमुपवनराजीनिगीर्णभूमितलम् ।
पिवतीव हि नगरमिदं परिखावलयेन पातालम् ॥२५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इद नगर परिखावलयेन पाताल पिवति इव" [**इदं**] प्रत्यक्ष [**नगरं**] राजग्राम [**परिखावलयेन**] खाईके द्वारा घिरा होनेसे [**पातालं**] अधोलोकको [**पिवति इव**] खाई इतनी गहरी है जिससे मालूम पडता है कि पी रहा है। कैसा है नगर ? "प्राकारकवलिताम्वर" [**प्राकार**] कोटके द्वारा [**कवलित**] निगल लिया है [**अम्बरं**] आकाशको जिसने ऐसा नगर है। भावार्थ इस प्रकार है—कोट अति ही ऊँचा है। और कैसा है नगर ? "उपवनराजीनिगीर्णभूमितल" [**उपवनराजी**] नगरके समीप चारों ओर फैले हुए बागसे [**निगीर्ण**] रुँधी है [**भूमितलं**] समस्त भूमि जिसकी ऐसा वह नगर है। भावार्थ इस प्रकार हे कि नगरके वाहर घने वाग हैं। ऐसी नगरकी स्तुति करनेपर राजाकी स्तुति नही होती है। यहाँ पर खाई-कोट-वागका वर्णन किया सो तो राजाके गुण नही है। राजाके गुण है दान, पौरुष और जानपना, उनकी स्तुति करने पर राजाकी स्तुति होती है ॥२५॥

(आर्या)

नित्यमविकारसुस्थितसर्वांगमपूर्वसहजलावण्यम् ।
अक्षोभमिव समुद्रं जिनेन्द्ररूपं परं जयति ॥२६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"जिनेन्द्ररूप जयति" [**जिनेन्द्ररूपं**] तीर्थङ्करके शरीरकी शोभा [**जयति**] जयवन्त हो। कैसा है जिनेन्द्ररूप ? "नित्य" आयुपर्यन्त एकरूप है। और कैसा है ? "अविकारसुस्थितसर्वांग" [**अविकार**] जिसमे वालपन, युवापन और वृढापन न होनेसे [**सुस्थित**] समाधानरूप हैं (सुस्थित है) [**सर्वांगं**] सर्वप्रदेश जिसके ऐसा है। और कैसा है जिनेन्द्रका रूप ? "अपूर्वसहजलावण्य" [**अपूर्व**]

आश्चर्यकारी तथा [सहज] बिना यत्नके शरीरके साथ मिले है [लावण्यं] शरीरके गुण जिसे ऐसा है। और कैसा है? "समुद्रमिव अक्षोभ" [समुद्रमिव] समुद्रके समान [अक्षोभं] निश्चल है। और कैसा है? "पर" उत्कृष्ट है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार वायुके बिना समुद्र निश्चल होता है वैसे ही तीर्थकरका शरीर भी निश्चल है। इस प्रकार शरीरकी स्तुति करनेपर आत्माकी स्तुति नही होती है, क्योकि शरीरके गुण आत्मामे नही है। आत्माका ज्ञानगुण है, ज्ञानगुणकी स्तुति करनेपर आत्माकी स्तुति होती है ॥२६॥

(शार्दूलविक्रीडित)

एकत्वं व्यवहारतो न तु पुनः कायात्मनोर्निश्चयात्
नुः स्तोत्रं व्यवहारतोऽस्ति वपुषः स्तुत्या न तत्तत्त्वतः ॥
स्तोत्रं निश्चयतश्चितो भवति चित्स्तुत्यैव सैवं भवेत्
नातस्तीर्थकरस्तवोत्तरबलादेकत्वमात्मांगयोः ॥ २७ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अत तीर्थकरस्तवोत्तरबलात् आत्माङ्गयो एकत्वं न भवेत्" [अतः] इस कारण से [तीर्थकरस्तव] परमेश्वरके शरीरकी स्तुति करनेपर आत्माकी स्तुति होती है ऐसा जो मिथ्यामती जीव कहता है उसके प्रति [उत्तरबलात्] शरीरकी स्तुति करनेपर आत्माकी स्तुति नहीं होती, आत्माके ज्ञानगुणकी स्तुति करनेपर आत्माकी स्तुति होती है। इस प्रकार उत्तरके बलसे अर्थात् उस उत्तरके द्वारा सन्देह नष्ट हो जानेसे [आत्मा] चेतनवस्तुको और [अंगयोः] समस्त कर्मकी उपाधिको [एकत्वं] एक द्रव्यपना [न भवेत्] नही होता है। आत्माकी स्तुति जिस प्रकार होती है उसे कहते है—"सा एव" [सा] वह जीवस्तुति [एवं] मिथ्यादृष्टि जिस प्रकार कहता था उस प्रकार नही है। किन्तु जिस प्रकार अब कहते है उस प्रकार ही है—"कायात्मनो व्यवहारत एकत्व तु न निश्चयात्" [कायात्मनोः] शरीरादि और चेतनद्रव्य इन दोनोंको [व्यवहारतः] कथनमात्रसे [एकत्वं] एकपना है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार सुवर्ण और चाँदी इन दोनोको औटकर एक रैनी[1] बना लेते है सो उन सबको कहनेमे तो सुवर्ण ही कहते है उसीप्रकार जीव और कर्म अनादिसे एक क्षेत्र सबधरूप मिले चले आरहे है, इसलिये उन सबको कथनमे तो जीव ही कहने

१–रैनी—चाँदी या सोनेकी वह गुल्ली जो तार खीचनेके लिये बनाई जाती है।

है। [तु] दूसरे पक्षसे [न] जीव-कर्मको एकपना नही है। सो किस पक्षसे ? [निश्चयात्] द्रव्यके निज स्वरूपको विचारने पर। भावार्थ इस प्रकार है कि सुवर्ण और चाँदी यद्यपि एक क्षेत्रमे मिले है–एक पिण्डरूप है। तथापि सुवर्ण पीला, भारी और चिकना ऐसे अपने गुणोको लिए हुए है, चाँदी भी अपने श्वेतगुणको लिए हुए है। इसलिये एकपना कहना झूठा है। उसी प्रकार जीव और कर्म भी यद्यपि अनादिसे एक वन्धपर्यायरूप मिले चले आ रहे है–एक पिण्डरूप है। तथापि जीव द्रव्य अपने ज्ञान गुणसे विराजमान है, कर्म-पुद्गलद्रव्य भी अपने अचेतन गुणको लिए हुए है। इसलिये एकपना कहना झूठा है। इस कारण स्तुतिमे भेद है। (उसीको दिखलाते है–) "व्यवहारत वपुष स्तुत्या नु स्तोत्रं अस्ति न तत् तत्त्वत" [व्यवहारतः] बन्धपर्यायरूप एक क्षेत्रावगाहदृष्टिसे देखनेपर [वपुषः] शरीरकी [स्तुत्या] स्तुति करनेसे [नुः] जीवकी [स्तोत्रं] स्तुति [अस्ति] होती है। [न तत्] दूसरे पक्षका विचार करनेपर स्तुति नही होती है। किस अपेक्षा नही होती है ? [तत्त्वतः] शुद्ध जीवद्रव्य स्वरूप विचारनेपर। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार श्वेत सुवर्ण ऐसा यद्यपि कहनेमे आता है तथापि श्वेतगुण चाँदीका होता है, इसलिये श्वेत सुवर्ण ऐसा कहना झूठा है। उसी प्रकार—

वे रत्ता बे सावला बे नीलुप्पलवन्न।
मरगजपन्ना दो वि जिन सोलह कचन वन्न।

भावार्थ—दो तीर्थङ्कर रक्तवर्ण, दो कृष्ण, दो नील, दो पन्ना और सोलह सुवर्ण रग है, यद्यपि ऐसा कहनेमे आता है तथापि श्वेत, रक्त और पीत आदि पुद्गल द्रव्यके गुण है, जीवके गुण नही है। इसलिये श्वेत, रक्त और पीत ऐसा कहनेपर जीव नही होता, ज्ञानगुण कहनेपर जीव है। कोई प्रश्न करता है कि शरीरकी स्तुति करनेपर तो जीवकी स्तुति नही होती तो जीवकी स्तुति कैसे होती है ? उत्तर इस प्रकार है कि चिद्रूप कहने पर होती है। "निश्चयत चित्स्तुत्या एव चित्स्तोत्र भवति" [निश्चयतः] शुद्ध जीव द्रव्यरूप विचारने पर [चित्] शुद्ध ज्ञानादिकी [स्तुत्या] बार बार वर्णन-स्मरण-अभ्यास करनेसे [एव] नि सन्देह [चित्स्तोत्रं] जीव द्रव्यकी स्तुति [भवति] होती है। भावार्थ इस प्रकार है–जिस प्रकार पीला, भारी और चिकना सुवर्ण ऐसा कहनेपर सुवर्णकी स्वरूपस्तुति होती है उसी प्रकार केवली ऐसे है कि जिन्होने प्रथम ही शुद्ध जीवस्वरूप का अनुभव किया अर्थात् इन्द्रिय-विषय-कषायको जीते है, बादमे

मूलसे क्षपण किया है, सकल कर्मक्षय किया है अर्थात् केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलवीर्य और केवलसुख रूपसे विराजमान प्रगट है, ऐसा कहने-जानने-अनुभवनेपर केवलीकी गुणस्वरूप स्तुति होती है। इससे यह अर्थ निश्चित किया कि जीव और कर्म एक नही है, भिन्न भिन्न है। विवरण—जीव और कर्म एक होते तो इतना स्तुतिभेद कैसे होता ॥२७॥

(मालिनी)

इति परिचिततत्त्वैरात्मकायैकतायां
नयविभजनयुक्त्यात्यन्तमुच्छादितायाम्।
अवतरति न बोधो बोधमेवाद्य कस्य
स्वरसरभसकृष्टः प्रस्फुटन्नेक एव ॥२८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इति कस्य बोध बोधं अद्य न अवतरति" [**इति**] इस प्रकार भेद द्वारा समझानेपर [**कस्य**] त्रैलोक्यमे ऐसा कौन जीव है जिसकी [**बोधः**] ज्ञानशक्ति [**बोधं**] स्वस्वरूपकी प्रत्यक्ष अनुभवशीलरूपतासे [**अद्य**] आज भी [**न अवतरति**] नही परिणमनशील होवे ? भावार्थ इस प्रकार है कि जीव-कर्मका भिन्नपना अति ही प्रगटकर दिखाया, उसे सुननेपर जिस जीवको ज्ञान नही उत्पन्न होता उसको उलाहना है। किस प्रकारसे भेदद्वारा समझानेपर ? उसी भेद-प्रकारको दिखलाते है—"आत्मकायैकताया परिचिततत्त्वै नयविभजनयुक्त्या अत्यन्त उच्छादिताया" [**आत्म**] चेतनद्रव्य, [**काय**] कर्मपिण्डका [**एकतायां**] एकत्वपनाको। भावार्थ इस प्रकार है कि जीव-कर्म अनादि बन्धपर्यायरूप एकपिण्ड है उसको। परिचिततत्त्वै—सर्वज्ञै, सर्वज्ञोके द्वारा विवरण—[**परिचित**] प्रत्यक्ष जाना है [**तत्त्वैः**] जीवादि समस्त द्रव्योंके गुण-पर्यायोको जिन्होने ऐसे सर्वज्ञदेवके द्वारा [**नय**] द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक-रूप पक्षपातके [**विभजन**] विभाग—भेदनिरूपण, [**युक्त्या**] भिन्न स्वरूप वस्तुको साधना, उससे [**अत्यन्तं**] अति ही नि.सन्देहरूपसे [**उच्छादितायां**] जिस प्रकार ढँकी निधिको प्रगट करते हैं उसी प्रकार जीवद्रव्य प्रगट ही है परन्तु कर्मसयोगसे ढँका हुआ होनेसे मरणको प्राप्त हो रहा था सो वह भ्रान्ति परमगुरु श्री तीर्थंकरदेवके उपदेश सुननेपर मिटती है, कर्मसंयोगसे भिन्न शुद्ध जीवस्वरूपका अनुभव होता है, ऐसा अनुभव सम्यक्त्व है। कैसा है वोध ? "स्वरसरभसकृष्ट" [**स्वरस**] ज्ञानस्वभावका [**रभस**] उत्कर्प—अति ही समर्थपना उससे [**कृष्टः**] पूज्य है। और कैसा है ? "प्रस्फुटन्"

प्रगटरूप है। और कैसा है ? "एक एव" निश्चयसे चैतन्यरूप है ॥२८॥

(मालिनी)

अवतरति न यावद् वृत्तिमत्यन्तवेगा-
दनवमपरभावत्यागदृष्टान्तदृष्टिः ।
झटिति सकलभावैरन्यदीयैर्विमुक्ता
स्वयमियमनुभूतिस्तावदाविर्बभूव ॥२९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इय अनुभूति तावत् झटिति स्वय आविर्बभूव" [**इयं**] यह विद्यमान [**अनुभूतिः**] शुद्ध चैतन्य वस्तुका प्रत्यक्ष जानपना [**तावत्**] उतने काल तक [**झटिति**] उसी समय [**स्वयं**] सहज ही अपने ही परिणामनरूप [**आविर्बभूव**] प्रगट हुआ। कैसी है वह अनुभूति ? "अन्यदीयै सकलभावै विमुक्ता" [**अन्यदीयैः**] शुद्ध चैतन्यस्वरूपसे अत्यन्त भिन्न ऐसे द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म-सवधी [**सकलभावैः**] 'सकल' अर्थात् जितने है गुणस्थान, मार्गणास्थानरूप जो राग, द्वेष, मोह इत्यादि अतिबहुत विकल्प ऐसे जो 'भाव' अर्थात् विभावरूप परिणाम उनसे [**विमुक्ता**] सर्वथा रहित है। भावार्थ इस प्रकार है कि जितने भी विभाव परिणाम-स्वरूप विकल्प है, अथवा मन-वचनसे उपचार कर द्रव्य-गुण-पर्याय भेदरूप या उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भेदरूप विकल्प है उनसे रहित शुद्ध चेतनामात्रका आस्वादरूप ज्ञान उसका नाम अनुभव कहा जाता है। वह अनुभव जिस प्रकार होता है उसीको बतलाते हैं— "यावत् अपरभावत्यागदृष्टान्तदृष्टि अत्यन्तवेगात् अनव वृत्ति न अवतरति" [**यावत्**] जितने काल तक, जिस कालमे [**अपरभाव**] शुद्ध चैतन्यमात्रसे भिन्न द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मरूप जो समस्त भाव उनके [**त्याग**] ये भाव समस्त झूठे है, जीवके स्वरूप नही है ऐसे प्रत्यक्ष आस्वादरूप ज्ञानके सूचक [**दृष्टांत**] उदाहरणके समान। विवरण जैसे किसी पुरुषने धोबीके घरसे अपने वस्त्रके धोखेसे दूसरेका वस्त्र आनेपर बिना पहिचानके उसे पहिनकर अपना जाना। बादमे उस वस्त्रका धनी जो कोई था उसने अञ्चल पकडकर कहा कि 'यह वस्त्र तो मेरा है, पुन कहा कि मेरा ही है' ऐसा सुनने-पर उस पुरुषने चिह्न देखा, जाना कि मेरा चिह्न तो मिलता नही इससे निश्चयसे यह वस्त्र मेरा नही है, दूसरेका है। उसके ऐसी प्रतीति होनेपर त्याग हुआ घटित होता है। वस्त्र पहिने ही है तो भी त्याग घटित होता है, क्योकि स्वामित्वपना छूट गया है।

उसी प्रकार अनादि कालसे जीव मिथ्यादृष्टि है, इसलिए कर्मसयोगजनित है जो शरीर, दु ख-सुख, राग-द्वेष आदि विभाव पर्याय, उन्हे अपना ही कर जानता है और उन्हीरूप प्रवर्तता है। हेय-उपादेय नही जानता है। इस प्रकार अनन्तकाल तक भ्रमण करते हुए जब थोडा संसार रहता है और परमगुरुका उपदेश प्राप्त होता है। उपदेश ऐसा कि भो जीव! जितने है जो शरीर, सुख, दु ख, राग, द्वेष, मोह जिनको तू अपना कर जानता है और इनमे रत हुआ है वे तो सब ही तेरे नही हैं। अनादि कर्म-सयोगकी उपाधि है। ऐसा बार-बार सुननेपर जीववस्तुका विचार उत्पन्न हुआ कि जीवका लक्षण तो शुद्ध चिद्रूप है, इस कारण यह सब उपाधि तो जीवकी नही है, कर्मसयोगकी उपाधि है। ऐसा निश्चय जिस काल हुआ उसी काल सकल विभाव भावोंका त्याग है। शरीर, सुख, दुख जैसे ही थे, वैसे ही है, परिणामोसे त्याग हैं, क्योकि स्वामित्वपना छूट गया है। इसीका नाम अनुभव है, इसीका नाम सम्यक्त्व है। इस प्रकार दृष्टान्तके समान उत्पन्न हुई है दृष्टि अर्थात् शुद्ध चिद्रूपका अनुभव जिसके ऐसा जो कोई जीव है वह [अनवं] अनादि कालसे चले आ रहे [वृत्तिं] कर्मपर्यायिके साथ एकत्वपनेके संस्कार तद्रूप [न अवतरति] नही परिणमता है। भावार्थ इस प्रकार है—कोई जानेगा कि जितना भी शरीर, सुख, दुख, राग, द्वेष, मोह है उसकी त्याग बुद्धि कुछ अन्य है-कारणरूप है। तथा शुद्ध चिद्रूपमात्रका अनुभव कुछ अन्य है-कार्यरूप है। उसके प्रति उत्तर इस प्रकार है कि राग, द्वेष, मोह, शरीर, सुख, दु:ख आदि विभाव पर्यायरूप परिणत हुए जीवका जिस कालमे ऐसा अशुद्ध परिणामरूप सस्कार छूट जाता है उसी कालमे इसके अनुभव है। उसका विवरण—जो शुद्ध चेतनामात्रका आस्वाद आये बिना अशुद्ध भावरूप परिणाम छूटता नही और अशुद्ध संस्कार छूटे बिना शुद्ध स्वरूपका अनुभव होता नही। इसलिये जो कुछ है सो एक ही काल, एक ही वस्तु, एक ही ज्ञान, एक ही स्वाद है। आगे जिसका शुद्ध अनुभव हुआ है वह जीव जैसा है वैसा ही कहते हैं ॥ २९ ॥

(स्वागता)

सर्वतः　　स्वरसनिर्भरभावं
चेतये स्वयमहं स्वमिहैकम् ।
नास्ति नास्ति मम कश्चन मोहः
शुद्धचिद्घनमहोनिधिरस्मि ॥३०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इह अह एक स्व स्वय चेतये" [इह] विभाव परिणाम छूट गये होनेसे [अहं] अनादि निधन चिद्रूप वस्तु ऐसा मैं [एकं] समस्त भेदबुद्धिसे रहित शुद्ध वस्तुमात्र [स्वं] शुद्ध चिद्रूपमात्र वस्तुको [स्वयं] परोपदेशके बिना ही अपनेसे स्वसंवेदन प्रत्यक्षरूप [चेतये] आस्वादता हू—(द्रव्यदृष्टिसे) जैसे हम है ऐसा अब (पर्यायमे) आस्वाद आता है। कैसी है शुद्ध चिद्रूपवस्तु ? "सर्वत स्वरसनिर्भरभाव" [सर्वतः] असंख्यात प्रदेशोमे [स्वरस] चैतन्यपनेसे [निर्भर] सपूर्ण है [भावं] सर्वस्व जिसका ऐसी है। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई जानेगा कि जैनसिद्धान्तका बार बार अभ्यास करनेसे दृढ प्रतीति होती है उसका नाम अनुभव है सो ऐसा नही है। मिथ्यात्वकर्मका रस पाक मिटनेपर मिथ्यात्वभावरूप परिणमन मिटता है तब वस्तुस्वरूपका प्रत्यक्षरूपसे आस्वाद आता है, उसका नाम अनुभव है। और अनुभवशील जीव जैसे अनुभवता है वैसा कहते है—"मम कश्चन मोहो नास्ति नास्ति" [मम] मेरे [कश्चन] द्रव्य-पिण्डरूप अथवा जीवसम्बन्धी भावपरिणमनरूप [मोहः] जितने विभावरूप अशुद्ध परिणाम [नास्ति नास्ति] सर्वथा नहीं हैं, नही है। अब ये जैसा है वैसा कहते है—"शुद्धचिद्घनमहोनिधिरस्मि" [शुद्ध] समस्त विकल्पोसे रहित [चित्] चैतन्यके [घन] समूहरूप [महः] उद्योतका [निधिः] समुद्र [अस्मि] मैं हू। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई जानेगा कि सर्व ही का नास्तिपना होता है, इसलिये ऐसा कहा कि शुद्ध चिद्रूपमात्र वस्तु प्रगट है ॥ ३० ॥

(मालिनी)

इति सति सह सर्वैरन्यभावैर्विवेके
स्वयमयमुपयोगो बिभ्रदात्मानमेकम् ।
प्रकटितपरमार्थैर्दर्शनज्ञानवृत्तैः
कृतपरिणतिरात्मारामे एव प्रवृत्तः ॥३१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एव अय उपयोग स्वयं प्रवृत्त" [एव] निश्चयसे जो अनादि निधन है ऐसा [अयं] यही [उपयोगः] जीव द्रव्य [स्वयं] जैसा द्रव्य था वैसा शुद्धपर्यायरूप [प्रवृत्तः] प्रगट हुआ। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य शक्तिरूपसे तो शुद्ध था परन्तु कर्म सयोगसे अशुद्धरूप परिणत हुआ था। अब अशुद्धपनाके जानेसे जैसा था वैसा हो गया। कैसा होनेपर शुद्ध हुआ ? "इति सर्वैरन्यभावैः

सह विवेके सति" [इति] पूर्वोक्त प्रकारसे [सर्वैः] शुद्ध चिद्रूपमात्रसे भिन्न जितने समस्त [अन्यभावैः सह] द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मसे [विवेके] शुद्ध चैतन्यका भिन्नपना [सति] होनेपर। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार सुवर्णपत्रके पकानेपर कालिमाके चले जानेसे सहज ही सुवर्णमात्र रह जाता है उसी प्रकार मोह-राग-द्वेषरूप विभाव परिणाममात्रके चले जानेपर सहज ही शुद्ध चैतन्यमात्र रह जाता है। कैसी होती हुई जीव वस्तु प्रगट होती है ? "एक आत्मान विभ्रत्" [एकं] निर्भेद-निर्विकल्प चिद्रूप वस्तु ऐसा जो [आत्मानं] आत्मस्वभाव उसरूप [विभ्रत्] परिणत हुआ है। और कैसा है आत्मा ? "दर्शनज्ञानवृत्तै. कृतपरिणति." [दर्शन] श्रद्धा-रुचि-प्रतीति, [ज्ञान] जानपना, [वृत्तैः] शुद्ध परिणति, ऐसा जो रत्नत्रय उस रूपसे [कृत] किया है [परिणतिः] परिणमन जिसने ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि मिथ्यात्व परिणतिका त्याग होनेपर, शुद्ध स्वरूपका अनुभव होनेपर साक्षात् रत्नत्रय घटित होता है। कैसे है दर्शन-ज्ञान-चारित्र "प्रकटितपरमार्थै" [प्रकटित] प्रगट किया है [परमार्थैः] सकल कर्मक्षय लक्षण मोक्ष जिन्होंने ऐसे है। भावार्थ इस प्रकार है कि 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग' ऐसा कहना तो सर्व जैन सिद्धान्तमे है और यही प्रमाण है। और कैसा है शुद्धजीव ? "आत्माराम" [आत्मा] आप ही है [आरामं] क्रीड़ावन जिसका ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि चेतनद्रव्य अशुद्ध अवस्थारूप परके साथ परिणमता था सो तो मिटा। साम्प्रत (वर्तमानकालमे) स्वरूप परिणमनमात्र है ॥३१॥

(वसन्ततिलका)

मज्जन्तु निर्भरममी सममेव लोका
आलोकमुच्छलति शान्तरसे समस्ताः।
आप्लाव्य विभ्रमतिरस्करिणीं भरेण
प्रोन्मग्न एष भगवानवबोधसिन्धुः ॥३२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एष भगवान् प्रोन्मग्न" [एष] सदाकाल प्रत्यक्षपनेसे चेतन स्वरूप है ऐसा [भगवान्] जीवद्रव्य [प्रोन्मग्नः] शुद्धांगस्वरूप दिखलाकर प्रगट हुआ। भावार्थ इस प्रकार है कि इस ग्रन्थ का नाम नाटक अर्थात् अखाडा है। तहाँ भी प्रथम ही शुद्धाङ्ग नाचता है तथा यहा भी प्रथम ही जीवका शुद्धस्वरूप प्रगट हुआ। कैसा है भगवान् ? "अवबोधसिन्धु" [अवबोध] ज्ञान मात्रका [सिन्धुः] पात्र है। अखाडामें भी पात्र नाचता है, यहाँ भी ज्ञानपात्र जीव है। अब जिस प्रकार प्रगट हुआ उसे कहते

है—"भरेण विभ्रमतिरस्करिणी आप्लाव्य" [**भरेण**] मूलसे उखाडकर दूर किया। सो कौन ? [**विभ्रम**] विपरीत अनुभव-मिथ्यात्वरूप परिणाम वही है [**तिरस्करिणीं**] शुद्धस्वरूपको आच्छादनशील अन्तर्जवनिका (अन्दर का परदा) उसको, [**आप्लाव्य**] मूलसे ही दूर करके। भावार्थ इस प्रकार है कि अखाडेमे प्रथम ही अन्तर्जवनिका कपडे की होती है। उसे दूरकर शुद्धाङ्ग नाचता है, यहाँ भी अनादि कालसे मिथ्यात्व परिणति है। उसके छूटनेपर शुद्धस्वरूप परिणमता है। शुद्धस्वरूप प्रगट होनेपर जो कुछ है वही कहते है—"अमी समस्ता लोका शातरसे सम एव मज्जन्तु" [**अमी**] जो विद्यमान है ऐसे [**समस्ताः**] जितने [**लोकाः**] जीव [**शान्तरसे**] जो अतीन्द्रिय सुख गर्भित है शुद्धस्वरूपका अनुभव उसमे [**समं एव**] एक ही काल [**मज्जन्तु**] मग्न होओ—तन्मय होओ। भावार्थ इस प्रकार है कि अखाडेमे तो शुद्धाङ्ग दिखाता है। वहाँ जितने देखनेवाले है वे सब एक ही साथ मग्न होकर देखते है उसी प्रकार जीवका स्वरूप शुद्धरूप दिखलाया होने पर सर्व ही जीवोके द्वारा अनुभव करने योग्य है। कैसा है शान्तरस ? "आलोकमुच्छलति" [**आलोकं**] समस्त त्रैलोक्यमे [**उच्छलति**] सर्वोत्कृष्ट है, उपादेय है अथवा लोकालोकका ज्ञाता है। अब अनुभव जिस प्रकारका है उस प्रकार कहते हैं। "निर्भर" अति ही मग्नस्वरूप है ॥३२॥



[२]

अजीव अधिकार

(शार्दूल विक्रीडित)

जीवाजीवविवेकपुष्कलदृशा प्रत्याययत्पार्षदा-
नासंसारनिबद्धबन्धनविधिध्वंसाद्विशुद्धं स्फुटत् ।
आत्माराममनन्तधाम महसाध्यक्षेण नित्योदितं
धीरोदात्तमनाकुलं विलसति ज्ञानं मनो ह्लादयत् ॥१-३३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ज्ञान विलसति" [**ज्ञानं**] जीव द्रव्य [**विलसति**] जैसा है वैसा प्रगट होता है । भावार्थ इस प्रकार है कि अबतक विधिरूपसे शुद्धाग तत्त्वरूप जीवका निरूपण किया अब आगे उसी जीवका प्रतिषेधरूपसे निरूपण करते है । उसका विवरण—शुद्ध जीव है, टङ्कोत्कीर्ण है, चिद्रूप है ऐसा कहना विधि कही जाती है । जीवका स्वरूप गुणस्थान नही, कर्म-नोकर्म जीवके नही, भावकर्म जीवका नही ऐसा कहना प्रतिषेध कहलाता है । कैसा होता हुआ ज्ञान प्रगट होता है ? "मनो ह्लादयत्" [**मनः**] अन्त करणेन्द्रियको [**ह्लादयत्**] आनन्दरूप करता हुआ और कैसा होता हुआ ? "विशुद्ध" आठ कर्मोसे रहितपनेकर स्वरूपरूपसे परिणत हुआ । और कैसा होता हुआ ? "स्फुटत्" स्वसवेदन प्रत्यक्ष होता हुआ । और कैसा होता हुआ ? "आत्माराम" [**आतम**] स्वस्वरूप ही है [**आरामं**] क्रीडावन जिसका ऐसा होता हुआ । और कैसा होता हुआ ? "अनन्तधाम" [**अनन्त**] मर्यादासे रहित है [**धाम**] तेजपुञ्ज जिसका ऐसा होता हुआ । और कैसा होता हुआ ? "अध्यक्षेण महसा नित्योदित" [**अध्यक्षेण**] निरावरण प्रत्यक्ष [**महसा**] चैतन्यशक्तिके द्वारा [**नित्योदितं**] त्रिकाल शाश्वत है प्रताप जिसका ऐसा होता हुआ । और कैसा होता हुआ ? "धीरोदात्त" [**धीर**] अडोल और [**उदात्तं**] सवसे बडा ऐसा होता हुआ । और कैसा होता हुआ ? "अनाकुल" इन्द्रियजनित सुख-दु खसे रहित अतीन्द्रिय सुखरूप विराजमान होता हुआ । ऐसा जीव

जैसे प्रगट हुआ उसे कहते है—"आससारनिबद्धबन्धनविधिध्वसात्" [आसंसार] अनादि-कालसे [निबद्ध] जीवसे मिली हुई चली आई है ऐसी [बन्धनविधि] ज्ञानावरणकर्म, दर्शनावरणकर्म, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय ऐसे है जो द्रव्यपिण्डरूप आठकर्म तथा भावकर्मरूप है जो राग, द्वेष, मोह परिणाम इत्यादि है बहुत विकल्प उनका [ध्वंसात्] विनाश से जीवस्वरूप जैसा कहा है वैसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार जल और कीचड जिस कालमे एकत्र मिले हुए है उसी काल जो स्वरूपका अनुभव किया जाय तो कीचड जलसे भिन्न है, जल अपने स्वरूप है, उसी प्रकार ससार अवस्थामे जीव कर्मबन्ध पर्याय रूपसे एक क्षेत्रमे मिला है। उसी अवस्था मे जो शुद्ध स्वरूपका अनुभव किया जाय तो समस्त कर्म जीव स्वरूपसे भिन्न हैं। जीव द्रव्य स्वच्छ स्वरूपरूप जैसा कहा वैसा है। ऐसी बुद्धि जिस प्रकारसे उत्पन्न हुई उसीको कहते है—"यत्पार्षदान् प्रत्याययत्" [यत्] जिस कारणसे [पार्षदान्] गणधर मुनीश्वरोको [प्रत्याययत्] प्रतीति उत्पन्न कराकर। किस कारणसे प्रतीति उत्पन्न हुई वही कहते है—"जीवाजीव विवेकपुष्कलदृशा" [जीव] चेतनद्रव्य, [अजीव] जडकर्म-नोकर्म-भावकर्म उनके [विवेक] भिन्नभिन्नपनेसे [पुष्कल] विस्तीर्ण [दृशा] ज्ञानदृष्टिके द्वारा। जीव और कर्मका भिन्न-भिन्न अनुभव करनेपर जीव जैसा कहा गया है वैसा है ॥१-३३॥

(मालिनी)

विरम किमपरेणाकार्यकोलाहलेन
स्वयमपि निभृतः सन् पश्य षण्मासमेकम् ।
हृदयसरसि पुंसः पुद्गलाद्भिन्नधाम्नो
ननु किमनुपलब्धिर्भाति किं चोपलब्धिः ॥२-३४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"विरम अपरेण अकार्यकोलाहलेन किं" [विरम] भो जीव ! विरक्त हो, हठ मतकर [अपरेण] मिथ्यात्वरूप है [अकार्य] कर्मबन्धको करते है [कोलाहलेन किं] ऐसे जो झूठे विकल्प उनसे क्या। उसका विवरण—कोई मिथ्यादृष्टि जीव शरीरको जीव कहता है, कोई मिथ्यादृष्टि जीव आठ कर्मोको जीव कहता है, कोई मिथ्यादृष्टि जीव रागादि सूक्ष्म अध्यवसायको जीव कहता है इत्यादि रूपसे नाना प्रकारके बहुत विकल्प करता है। भो जीव ! उन समस्त ही विकल्पोको छोड, क्योकि वे झूठे है। "निभृत सन् स्वय एक पश्य" [निभृतः] एकाग्ररूप [सन्]

होता हुआ [**एकं**] शुद्धचिद्रूपमात्रका [**स्वयं**] स्वसवेदन प्रत्यक्ष रूपसे [**पश्य**] अनुभव कर। "षण्मास" विपरीतपना जिस प्रकार छूटे उसी प्रकार छोड़कर "अपि" बारम्बार बहुत क्या कहे। ऐसा अनुभव करनेपर स्वरूप प्राप्ति है, इसीको कहते है—"ननु हृदय सरसि पुंस अनुपलब्धि किं भाति" [**ननु**] भो जीव ! [**हृदयसरसि**] मनरूपी सरोवरमे है [**पुंसः**] जो जीवद्रव्य उसकी [**अनुपलब्धिः**] अप्राप्ति [**किंभाति**] शोभती है क्या ? भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध स्वरूपका अनुभव करनेपर स्वरूपकी प्राप्ति नही होती ऐसा तो नही है। "च उपलब्धि" [**च**] है तो ऐसा ही है कि [**उपलब्धिः**] अवश्य प्राप्ति होती है। कैसा है जीव द्रव्य ? "पुद्गलात् भिन्नधाम्न" [**पुद्गलात्**] द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मसे [**भिन्नधाम्नः**] भिन्न है चेतनरूप है तेज पुञ्ज जिसका ऐसा है ॥२-३४॥

(अनुष्टुप्)

चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसारो जीव इयानयम् ।
अतोऽतिरिक्ताः सर्वेऽपि भावाः पौद्गलिका अमी ॥३-३५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अय जीव. इयान्" [**अयं**] विद्यमान है ऐसा [**जीवः**] चेतनद्रव्य [**इयान्**] इतना ही है। कैसा है ? "चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसार" [**चिच्छक्ति**] चेतना मात्रसे [**व्याप्त**] मिला है [**सर्वस्वसारः**] दर्शन, ज्ञान, चारित्र, सुख, वीर्य इत्यादि अनन्त गुण जिसके ऐसा है। "अमी सर्वे अपि पौद्गलिका भावा अतः अतिरिक्ता" [**अमी**] विद्यमान है ऐसे [**सर्वे अपि**] द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मरूप जितने है उन सब [**पौद्गलिकाः**] अचेतन पुद्गलद्रव्योसे उत्पन्न हुए हैं ऐसे [**भावाः**] अशुद्ध रागादिरूप समस्त विभाव परिणाम [**अतः**] शुद्धचेतनामात्र जीव वस्तुसे [**अतिरिक्ताः**] अति ही भिन्न है। ऐसे ज्ञानका नाम अनुभव कहते है ॥३-३५॥

(मालिनी)

सकलमपि विहायाह्नाय चिच्छक्तिरिक्तं
स्फुटतरमवगाह्य स्वं च चिच्छक्तिमात्रम् ।
इममुपरि चरन्तं चारु विश्वस्य साक्षात्
कलयतु परमात्मात्मानमात्मन्यनन्तम् ॥४-३६॥*

* मुद्रित "आत्मख्याति" टीकामे श्लोक न० ३५ और ३६ आगे पीछे आया है।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"आत्मा आत्मनि इम आत्मान कलयतु" [आत्मा] जीवद्रव्य [आत्मनि] अपनेमे [इमं आत्मानं] अपनेको [कलयतु] निरन्तर अनुभवो। कैसा है अनुभव योग्य आत्मा ? "विश्वस्य साक्षात् उपरि चरन्त" [विश्वस्य] समस्त त्रैलोक्यमे [उपरिचरन्तं] सर्वोत्कृष्ट है, उपादेय है। (साक्षात्) ऐसा ही है। बड़ाई करके नही कह रहे हैं। और कैसा है ? "चारु" सुख स्वरूप है। और कैसा ? "पर" शुद्ध-स्वरूप है। और कैसा है ? "अनन्त" शाश्वत है। अब जैसे अनुभव होता है वही कहते हैं—"चिच्छक्तिरिक्त सकल अपि अन्हाय विहाय" [चिच्छक्तिरिक्तं] ज्ञानगुणसे शून्य ऐसे [सकलं अपि] समस्त द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मको [अन्हाय] मूलसे [विहाय] छोडकर। भावार्थ इस प्रकारहै कि जितनी कुछ कर्मजाति है वह समस्त हेय है। उसमे कोई कर्म उपादेय नही है। और अनुभव जैसे होता है वही कहते हैं—"चिच्छक्तिमात्र स्व च स्फुटतर अवगाह्य" [चिच्छक्तिमात्रं] ज्ञानगुण ही है स्वरूप जिसका ऐसे [स्वं च] अपनेको [स्फुटतरं] प्रत्यक्ष रूपसे [अवगाह्य] आस्वादकर। भावार्थ इस प्रकार है कि जितने भी विभाव परिणाम है वे सब जीवके नही है। शुद्धचैतन्यमात्र जीव है ऐसा अनुभव कर्तव्य है ॥४-३६॥

(शालिनी)

वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा
भिन्ना भावाः सर्व एवास्य पुंसः ।
तेनैवान्तस्तत्त्वतः पश्यतोऽमी
नो दृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात् ॥५-३७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अस्य पुस सर्व एव भावा भिन्ना." [अस्य] विद्यमान है ऐसे [पुंसः] शुद्ध चैतन्य द्रव्यसे [सर्वे] जितने है वे सब [भावाः] अशुद्धविभाव परिणाम [एव] निश्चयसे [भिन्नाः] भिन्न है—जीव स्वरूपसे निराले हैं। वे कौनसे भाव ? "वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा" [वर्णाद्या] एक कर्म अचेतन शुद्ध पुद्गलपिण्डरूप है वे तो जीवके स्वरूपसे निराले ही हैं [वा] एक तो ऐसा है कि [रागमोहादयः] विभावरूप अशुद्धरूप हैं, देखनेपर चेतन जैसे दीखते हैं, ऐसे जो राग-द्वेष-मोहरूप जीवसम्बन्धी परिणाम वे भी शुद्धजीव स्वरूपको अनुभवनेपर जीवस्वरूपसे भिन्न हैं। यहाँ पर कोई प्रश्न करता है कि विभाव परिणामको जीवस्वरूपसे भिन्न

कहा सो भिन्नका भावार्थ तो मैं समझा नही। भिन्न कहनेपर, भिन्न है। सो वस्तुरूप है कि भिन्न है सो अवस्तुरूप है ? उत्तर इस प्रकार है कि अवस्तुरूप है। "तेन एव अन्तस्तत्त्वत. पश्यत अमी दृष्टा नो स्यु" [**तेन एव**] उसी कारणसे [**अन्तस्तत्त्वतः पश्यतः**] शुद्ध स्वरूपका अनुभवशील है जो जीव उसको [**अमी**] विभाव परिणाम [**दृष्टाः**] दृष्टिगोचर [**नो स्युः**] नही होते। "परं एकं दृष्टं स्यात्" [**परं**] उत्कृष्ट है ऐसा [**एकं**] शुद्ध चैतन्य द्रव्य [**दृष्टं**] दृष्टिगोचर [**स्यात्**] होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि वर्णादिक और रागादिक विद्यमान दिखलाई पडते हैं तथापि स्वरूप अनुभवनेपर स्वरूपमात्र है, विभावपरिणति रूप वस्तु तो कुछ नही ॥५-३७॥

(उपजाति)

निर्वर्त्यते येन यदत्र किञ्चि-
त्तदेव तत्स्यान्न कथं च नान्यत् ।
रुक्मेण निर्वृत्तमिहासिकोशं
पश्यन्ति रुक्मं न कथंचनासिम् ॥६-३८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अत्र येन यत् किञ्चित् निर्वर्त्यते तत् तत् एव स्यात् कथञ्चन न अन्यत्" [**अत्र**] वस्तुके स्वरूपका विचार करनेपर [**येन**] मूलकारणरूप वस्तुसे [**यत्किञ्चित्**] जो कुछ कार्य-निष्पत्तिरूप वस्तुका परिणाम [**निर्वर्त्यते**] पर्याय-रूप निपजता है, [**तत्**] जो निपजा है वह पर्याय [**तत् एवस्यात्**] निपजता हुआ जिस द्रव्यसे निपजा है वही द्रव्य है [**कथञ्चन न अन्यत्**] निश्चयसे अन्य द्रव्यरूप नही हुआ है। वही दृष्टात द्वारा कहते हैं। यथा—"इह रुक्मेण असिकोशं निर्वृत्त" [**इह**] प्रत्यक्ष है कि [**रुक्मेण**] चाँदी धातुसे [**असिकोशं**] तलवारकी म्यान [**निर्वृत्तं**] घडकर मौजूद की सो "रुक्म पश्यन्ति कथञ्चन न असिं" [**रुक्मं**] जो म्यान मौजूद हुई वह वस्तु तो चाँदी ही है ऐसा [**पश्यन्ति**] प्रत्यक्षरूपसे सर्वलोक देखता है और मानता है [**कथञ्चन**] चाँदी की तलवार ऐसा कहने मे तो कहा जाता है तथापि [**न असिं**] चाँदी की तलवार नही हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि चाँदीकी म्यान मे तलवार रहती है। इस कारण 'चाँदीकी तलवार' ऐसा कहनेमें आता है[1]। तथापि चाँदीकी म्यान है, तलवार लोहेकी है, चाँदीकी तलवार नही है ॥६-३८॥

१-भावार्थ इसो जो रूपाका म्यान माहै खाडो रहे छे इसी कहावत छै, तिहितैं रूपाको खाडो कहता इसो कहिजै छै ॥मूल पाठ ॥

(उपजाति)

वर्णादिसामग्र्यमिदं विदन्तु
निर्माणमेकस्य हि पुद्गलस्य ।
ततोऽस्त्विदं पुद्गल एव नात्मा
यतः स विज्ञानघनस्ततोऽन्यः ॥७-३९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"हि इद वर्णादिसामग्रच एकस्य पुद्गलस्य निर्माण विदन्तु" [**हि**] निश्चयसे [**इदं**] विद्यमान [**वर्णादिसामग्रच**] गुणस्थान, मार्गणा-स्थान, द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म इत्यादि जितनी अशुद्ध पर्यायें है वे समस्त ही [**एकस्य पुद्गलस्य**] अकेले पुद्गल द्रव्यका [**निर्माणं**] कार्य अर्थात् पुद्गल द्रव्यका चित्राम जैसा है ऐसा [**विदन्तु**] भो जीव ! नि सन्देहरूपसे जानो । "तत· इद पुद्गल एव अस्तु न आत्मा" [**ततः**] उस कारणसे [**इदं**] शरीरादि सामग्री [**पुद्गलः**] जिस पुद्गल द्रव्यसे हुई है वही पुद्गल द्रव्य है । [**एव**] निश्चयसे [**अस्तु**] वही है । [**न आत्मा**] आत्मा अजीव द्रव्यरूप नही हुआ । "यत स विज्ञानघन" [**यतः**] जिस कारणसे [**सः**] जीवद्रव्य [**विज्ञानघनः**] ज्ञान गुणका समूह है । "तत अन्य" [**ततः**] उस कारणसे [**अन्यः**] जीवद्रव्य भिन्न है, शरीरादि पर द्रव्य भिन्न हैं । भावार्थ इस प्रकार है कि लक्षण भेदसे वस्तुका भेद होता है, इसलिये चैतन्यलक्षणसे जीववस्तु भिन्न है, अचेतनलक्षणसे शरीरादि भिन्न है । यहाँ पर कोई आशका करता है कि कहनेमे तो ऐसा ही कहा जाता है कि एकेन्द्रिय जीव, द्वीन्द्रिय जीव इत्यादि, देव जीव, मनुष्य जीव इत्यादि, रागी जीव, द्वेषी जीव इत्यादि । उत्तर इस प्रकार है कि कहनेमे तो व्यवहारसे ऐसा ही कहा जाता है, निश्चयसे ऐसा कहना भूठा है । सो कहते है ॥७-३९॥

(अनुष्टुप्)

घृतकुम्भाभिधानेऽपि कुम्भो घृतमयो न चेत् ।
जीवो वर्णादिमज्जीवो जल्पनेऽपि न तन्मयः ॥८-४०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—दृष्टात कहते है—"चेत् कुम्भ घृतमय न" [**चेत्**] जो ऐसा है कि [**कुम्भः**] घडा [**घृतमयो न**] घीका तो नही है, मिट्टीका है ।

"घृतकुम्भाभिधानेऽपि" [घृतकुम्भ] घीका घड़ा [अभिधानेऽपि] ऐसा कहा जाता है तथापि घडा मिट्टीका है। भावार्थ इस प्रकार है—जिस घडेमें घी रखा जाता है उस घडेको यद्यपि घीका घडा ऐसा कहा जाता है तथापि घड़ा मिट्टीका है, घी भिन्न है तथा "वर्णादिमज्जीव. जल्पनेऽपि जीवः तन्मयो न" [वर्णादिमज्जीवः जल्पने अपि] यद्यपि शरीर-सुख-दु.ख-राग-द्वेषसंयुक्त जीव ऐसा कहा जाता है तथापि [जीवः] चेतन-द्रव्य ऐसा [तन्मयः न] जीव तो शरीर नही, जीव तो मनुष्य नही, जीव चेतनस्वरूप भिन्न है। भावार्थ इस प्रकार है कि आगममे गुणस्थानका स्वरूप कहा है, वहाँ ऐसा कहा है कि देव जीव, मनुष्य जीव, रागी जीव, द्वेषी जीव इत्यादि वहुत प्रकारसे कहा है सो यह सव ही कहना व्यवहारमात्रसे है। द्रव्यस्वरूप देखनेपर ऐसा कहना भूठा है। कोई प्रश्न करता है कि जीव कैसा है ? उत्तर—जैसा है वैसा आगे कहते है ॥८-४०॥

(अनुष्टुप्)

अनाद्यनन्तमचलं स्वसंवेद्यमबाधितम् ।
जीवः स्वयं तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते ।९-४१।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तु जीव चैतन्यं स्वयं उच्चैः चकचकायते" [तु] द्रव्यके स्वरूपका विचार करनेपर [जीवः] आत्मा [चैतन्यं] चेतन्य स्वरूप है, [स्वयं] अपनी सामर्थ्यसे [उच्चैः] अतिशयरूपसे [चकचकायते] अति ही प्रकाशता है। कैसा है चैतन्य ? "अनाद्यनन्त" [अनादि] जिसकी आदि नही है [अनन्तं] जिसका अन्त-विनाश नही है, ऐसा है। और कैसा है चैतन्य ? "अचल" नही है चलता प्रदेश-कम्प जिसको, ऐसा है। और कैसा है ? "स्वसंवेद्य" अपने द्वारा ही आप जाना जाता है। और कैसा है ? "अवाधितं" अमिट है जिसका स्वरूप, ऐसा है ॥९-४१॥

(शार्दूलविक्रीडित)

वर्णाद्यः सहितस्तथा विरहितो द्वेधास्त्यजीवो यतो
नामूर्त्तत्वमुपास्य पश्यति जगज्जीवस्य तत्त्वं ततः ।
इत्यालोच्य विवेचकैः समुचितं नाव्याप्यतिव्यापि वा
व्यक्तं व्यञ्जितजीवतत्त्वमचलं चैतन्यमालम्ब्यताम् ।१०-४२।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"विवेचकैरिति आलोच्य चैतन्यं आलम्ब्यताम्" [विवेचकैः] जिन्हे भेदज्ञान है ऐसे पुरुष [इति] जिस प्रकारसे कहेगे उस प्रकारसे

[आलोच्य] विचारकर [चैतन्यं] चेतनमात्रका [आलम्ब्यता] अनुभव करो । कैसा है चैतन्य ? "समुचित" अनुभव करने योग्य है। और कैसा है ? "अव्यापि न" जीव द्रव्यसे कभी भिन्न नही होता है । "अतिव्यापि न" जीवसे अन्य है जो पाँच द्रव्य उनसे अन्य है। और कैसा है ? "व्यक्त" प्रगट है। और कैसा है ? "व्यजितजीवतत्त्व" [व्यंजित] प्रगट किया है [जीवतत्त्वं] जीवके स्वरूपको जिसने, ऐसा है । और कैसा है ? "अचल" प्रदेशकम्पसे रहित है । "तत जगत् जीवस्य तत्त्व अमूर्तत्व उपास्य न पश्यति" [ततः] उस कारणसे [जगत्] सब जीवराशि [जीवस्य तत्त्वं] जीवके निज स्वरूपको [अमूर्तत्वं] स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण गुणसे रहितपना [उपास्य] मानकर [न पश्यति] नही अनुभवता है । भावार्थ इस प्रकार है कि कोई जानेगा कि 'जीव अमूर्त' ऐसा जानकर अनुभव किया जाता है सो ऐसे तो अनुभव नही । जीव अमूर्त तो है परन्तु अनुभव कालमे ऐसा अनुभवता है कि 'जीव चैतन्यलक्षण' । "यत अजीव द्वेधा अस्ति" [यतः] जिस कारणसे [अजीवः] अचेतन द्रव्य [द्वेधा अस्ति] दो प्रकारका है । वे दो प्रकार कौनसे है ? "वर्णाद्यैः सहित. तथा विरहित." [वर्णाद्यैः] वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्शसे [सहितः] सयुक्त है, क्योकि एक पुद्गलद्रव्य ऐसा भी है । तथा [विरहितः] वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्शसे रहित भी है, क्योकि धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, कालद्रव्य और आकाशद्रव्य ये चार द्रव्य और भी है, वे अमूर्तद्रव्य कहे जाते है । वह अमूर्तपना अचेतन द्रव्यको भी है । इसलिये अमूर्तपना जानकर जीवका अनुभव नही किया जाता, चेतन जानकर जीवका अनुभव किया जाता है ॥१०-४२॥

(वसन्ततिलका)

जीवादजीवमिति लक्षणतो विभिन्नं
ज्ञानी जनोऽनुभवति स्वयमुल्लसन्तम् ।
अज्ञानिनो निरवधिप्रविजृम्भितोऽयं
मोहस्तु तत्कथमहो वत नानटीति ॥११-४३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ज्ञानी जन लक्षणतः जीवात् अजीव विभिन्न इति स्वय अनुभवति" [ज्ञानी जनः] सम्यग्दृष्टि जीव [लक्षणतः] जीवका लक्षण चेतना तथा अजीवका लक्षण जड ऐसे बडा भेद है इसलिये [जीवात्] जीवसे [अजीवं] पुद्गल आदि [विभिन्नं] सहज ही भिन्न है [इति] इस प्रकार [स्वयं] स्वानुभव

प्रत्यक्षरूपसे [अनुभवति] आस्वाद करता है। कैसा है जीव ? "उल्लसन्तं" अपने गुण-पर्यायसे प्रकाशमान है। "तत् तु अज्ञानिनः अयं मोह कथं अहो नानटीति वत" [तत् तु] ऐसा है तो फिर [अज्ञानिनः] मिथ्यादृष्टि जीवको [अयं] जो प्रगट है ऐसा [मोहः] जीवकर्मका एकत्वरूप विपरीत संस्कार [कथं नानटीति] क्यों प्रवर्त रहा है, [वत अहो] आश्चर्य है। भावार्थ इस प्रकार है कि सहज ही जीव-अजीव भिन्न हैं ऐसा अनुभवनेपर तो ठीक है, सत्य है; मिथ्यादृष्टि जो एककर अनुभवता है सो ऐसा अनुभव कैसे आता है इसका बडा अचम्भा है। कैसा है मोह ? "निरवधिप्रविजृम्भितः" [निरवधि] अनादिकालसे [प्रविजृम्भितः] सन्तानरूपसे पसर रहा है ॥११-४३॥

(वसन्ततिलका)

अस्मिन्ननादिनि महत्यविवेकनाटचे
वर्णादिमान्नटति पुद्गल एव नान्यः ।
रागादिपुद्गलविकारविरुद्धशुद्ध-
चैतन्यधातुमयमूर्तिरयं च जीवः ॥१२-४४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अस्मिन् अविवेकनाटचे पुद्गल एव नटति" [अस्मिन्] अनन्तकालसे विद्यमान ऐसा जो [अविवेक] जीव-अजीवकी एकत्व बुद्धिपर मिथ्या संस्कार उस रूप है [नाट्ये] धारासंतानरूप वारम्वार विभाव परिणाम उसमे [पुद्गलः] अचेतन मूर्तिमान द्रव्य [एव] निश्चयसे [नटति] अनादि कालसे नाचता है। "न अन्य." चेतनद्रव्य नही नाचता है। भावार्थ इस प्रकार है—चेतन द्रव्य और अचेतन द्रव्य अनादि हैं, अपना-अपना स्वरूप लिये हुए हैं, परस्पर भिन्न हैं ऐसा अनुभव प्रगटरूपसे सुगम है। जिसको एकत्व संस्काररूप अनुभव है वह अचम्भा है। ऐसा क्यों अनुभवता है ? क्योकि एक चेतन द्रव्य, एक अचेतन द्रव्य ऐसे अन्तर तो घना। अथवा अचम्भा भी नही, क्योकि अशुद्धपनाके कारण बुद्धिको भ्रम होता है। जिस प्रकार धतूराके पीनेपर दृष्टि विचलित होती है, श्वेत शंखको पीला देखती है सो वस्तु विचारनेपर ऐसी दृष्टि सहजकी तो नहीं, दृष्टिदोष है। दृष्टिदोषको धतूरा उपाधि भी है उसी प्रकार जीव द्रव्य अनादिसे कर्मसंयोगरूप मिला ही चला आ रहा है, मिला होनेसे विभावरूप अशुद्धपनेसे परिणत हो रहा है। अशुद्धपनाके कारण ज्ञानदृष्टि अशुद्ध है, उस अशुद्ध दृष्टिके द्वारा चेतन द्रव्यको पुद्गल कर्मके साथ एकत्व संस्काररूप अनुभवना है।

ऐसा सस्कार तो विद्यमान है। सो वस्तुस्वरूप विचारने पर ऐसी अशुद्धदृष्टि सहजकी तो नही, अशुद्ध है, दृष्टिदोप है। और दृष्टिदोपको पुद्गल पिण्डरूप मिथ्यात्वकर्मका उदय उपाधि है। आगे जिस प्रकार दृष्टिदोषसे श्वेत शखको पीला अनुभवता है तो फिर दृष्टिमे दोष है, शख तो श्वेत ही है, पीला देखनेपर शख तो पीला हुआ नही है उसी प्रकार मिथ्या दृष्टिसे चेतनवस्तु और अचेतनवस्तुको एक कर अनुभवता है तो फिर दृष्टिका दोष है, वस्तु जैसी भिन्न है वैसी ही है। एक कर अनुभवनेपर एक नही हुई है, क्योकि घना अन्तर है। कैसा है अविवेकनाट्य ? "अनादिनि" अनादिसे एकत्व सस्कारबुद्धि चली आई है ऐसा है। और कैसा है। अविवेकनाट्य ? "महति" जिसमे थोडासा विपरीतपना नही है, घना विपरीतपना है। कैसा है पुद्गल ? "वर्णादिमान्" स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण गुणसे सयुक्त है। "च अय जीव रागादिपुद्गलविकारविरुद्धशुद्धचैतन्यधातुमयमूर्ति" [च अयं जीवः] और यह जीव वस्तु ऐसी है [रागादि] राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ ऐसे असख्यात लोकमात्र अशुद्धरूप जीवके परिणाम—[पुद्गलविकार] अनादि वन्ध पर्यायसे विभाव परिणाम—उनसे [विरुद्ध] रहित है ऐसी [शुद्ध] निर्विकार है ऐसी [चैतन्यधातु] शुद्ध चिद्रूप वस्तु [मय] उस रूप है [मूर्तिः] सर्वस्व जिसका ऐसी है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार पानी कींचडके मिलने-पर मैला है। सो वह मैलापन रग है, सो रगको अगीकार न कर बाकी जो कुछ है सो पानी ही है। उसी प्रकार जीवकी कर्मवन्ध पर्यायरूप अवस्थामे रागादिभाव रग है, सो रगको अगीकार न कर वाकी जो कुछ है सो चेतन धातुमात्र वस्तु है। इसीका नाम शुद्धस्वरूप—अनुभव जानना सो सम्यग्दृष्टिके होता है ॥१२-४४॥

(मन्दाक्रान्ता)

इत्थं ज्ञानक्रकचकलनापाटनं नाटयित्वा
जीवाजीवौ स्फुटविघटनं नैव यावत्प्रयातः।
विश्वं व्याप्य प्रसभविकसद्व्यक्तचिन्मात्रशक्त्या
ज्ञातृद्रव्यं स्वयमतिरसात्तावदुच्चैश्चकाशे ॥१३-४५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ज्ञातृद्रव्य तावत् स्वय अतिरसात् उच्चै चकाशे" [ज्ञातृद्रव्यं] चेतनवस्तु [तावत्] वर्तमान कालमे [स्वयं] अपने आप [अतिरसात्] अत्यन्त अपने स्वादको लिये हुए [उच्चैः] सव प्रकारसे [चकाशे] प्रगट हुआ। क्या करके ? "विश्व व्याप्य" [विश्वं] समस्त ज्ञेयको [व्याप्य] प्रत्यक्षरूपसे प्रतिविम्बित

कर। तीन लोकको किसके द्वारा जानता है ? "प्रसभविकसद्व्यक्तचिन्मात्रशक्त्या" [प्रसभ] वलात्कारसे [विकसत्] प्रकाशमान है [व्यक्त] प्रगटपने ऐसा है जो [चिन्मात्रशक्त्या] ज्ञानगुणस्वभाव उसके द्वारा जाना है त्रैलोक्य जिसने ऐसा है। और क्या कर ? "इत्थ ज्ञानक्रकचकलनात् पाटनं नाटयित्वा" [इत्थं] पूर्वोक्त विधिसे [ज्ञान] भेदवुद्धिरूपी [क्रकच] करोंतके [कलनात्] वार-वार अभ्याससे [पाटनं] जीव-अजीवकी भिन्नरूप दो फार [नाटयित्वा] करके। कोई प्रश्न करता है कि जीव-अजीवकी दो फार तो ज्ञानरूपी करोंतके द्वारा किये, उसके पहले वे किसरूप थे ? उत्तर—"यावत् जीवाजीवौ स्फुटविघटन न एव प्रयात·" [यावत्] अनन्तकालसे लेकर [जीवाजीवौ] जीव और कर्मकी एक पिण्डरूप पर्याय [स्फुटविघटनं] प्रगटरूपसे भिन्न-भिन्न [न एव प्रयातः] नही हुई है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार सुवर्ण और पाषाण मिले हुए चले आ रहे है और भिन्न-भिन्नरूप है। तथापि अग्निका संयोग विना प्रगटरूपसे भिन्न होते नही, अग्निका संयोग जव ही पाते हैं तभी तत्काल भिन्न-भिन्न होते हैं। उसी प्रकार जीव और कर्मका संयोग अनादिसे चला आरहा है और जीव कर्म भिन्न-भिन्न हैं। तथापि शुद्ध स्वरूप-अनुभव विना प्रगटरूपसे भिन्न-भिन्न होते नही, जिस काल शुद्ध स्वरूप-अनुभव होता है उस काल भिन्न-भिन्न होते हैं।।१३-४५।।



[३]

कर्ता-कर्म-अधिकार



(मन्दाक्रान्ता)

एकः कर्ता चिदहमिह मे कर्म कोपादयोऽमी
इत्यज्ञानां शमयदभितः कर्तृकर्मप्रवृत्तिम् ।
ज्ञानज्योतिः स्फुरति परमोदात्तमत्यन्तधीरं
साक्षात्कुर्वन्निरुपधि पृथग्द्रव्यनिर्भासिविश्वम् ॥१-४६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ज्ञानज्योति स्फुरति" [**ज्ञानज्योतिः**] शुद्ध ज्ञानप्रकाश [**स्फुरति**] प्रगट होता है। कैसा है ? "परमोदात्त" सर्वोत्कृष्ट है। और कैसा है ? "अत्यन्तधीर" त्रिकाल शाश्वत है। और कैसा है ? "विश्व साक्षात् कुर्वत्" [**विश्वं**] सकल ज्ञेय वस्तुको [**साक्षात् कुर्वत्**] एक समयमे प्रत्यक्ष जानता है। और कैसा है ? "निरुपधि" समस्त उपाधिसे रहित है। और कैसा है ? "पृथग्द्रव्यनिर्भासि" [**पृथक्**] भिन्न-भिन्न रूपसे [**द्रव्यनिर्भासि**] सकल द्रव्य-गुण-पर्यायको जाननशील है। क्या करता हुआ प्रगट होता है ? "इति अज्ञाना कर्तृकर्मप्रवृति अभित शमयत्" [**इति**] उक्त प्रकारसे [**अज्ञानां**] जो मिथ्यादृष्टि जीव है उनकी [**कर्तृ-कर्मप्रवृतिं**] जीववस्तु पुद्गलकर्मकी कर्ता है ऐसी प्रतीतिको [**अभितः**] सम्पूर्णरूपसे [**शमयत्**] दूर करता हुआ। वह कर्तृ-कर्मप्रवृत्ति कैसी है ? "एक अह चित् कर्ता इह अमी कोपादय मे कर्म" [**एकः**] अकेला [**अहं**] मैं जीवद्रव्य [**चित्**] चेतनस्वरूप [**कर्ता**] पुद्गल कर्मको करता हूँ। [**इह**] ऐसा होनेपर [**अमी कोपादयः**] विद्यमानरूप है जो ज्ञानावर्णादिक पिण्ड वे [**मे**] मेरी [**कर्म**] करतूति है। ऐसा है मिथ्यादृष्टिका विपरीतपना उसको दूर करता हुआ ज्ञान प्रगट होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि यहाँ से लेकर कर्तृ-कर्म अधिकार प्रारम्भ होता है ॥१-४६॥

(मालिनी)

परपरिणतिमुज्झत् खण्डयद्भेदवादा--
निदमुदितमखण्डं ज्ञानमुच्चण्डमुच्चैः ।
ननु कथमवकाशः कर्तृकर्मप्रवृत्ते--
रिह भवति कथं वा पौद्गलः कर्मबन्धः ।।२-४७।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इद ज्ञान उदित" [**इदं**] विद्यमान है ऐसी [**ज्ञान**] चिद्रूप शक्ति [**उदित**] प्रगट हुई । भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य ज्ञानशक्तिरूप तो विद्यमान ही है, परन्तु काललब्धि पाकर अपने स्वरूपका अनुभवशील हुआ । कैसा होता हुआ ज्ञान [**चिद्रूपशक्ति**] प्रगट हुआ ? "परपरिणति उज्भत्" [**परपरिणतिं**] जीव-कर्मकी एकत्वबुद्धिको [**उज्झत्**] छोडता हुआ । और क्या करता हुआ ? "भेदवादान् खण्डयत्" [**भेदवादान्**] उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अथवा द्रव्य-गुण-पर्याय अथवा आत्माको ज्ञानगुणके द्वारा अनुभवता है—इत्यादि अनेक विकल्पोको [**खण्डयत्**] मूलसे उखाडता हुआ । और कैसा है ? "अखण्डं" पूर्ण है । और कैसा है ? "उच्चैं उच्चण्ड" [**उच्चैः**] अतिशयरूप [**उच्चण्डं**] कोई वर्जनशील नही है । "ननु इह कर्तृ-कर्मप्रवृत्ते कथ अवकाश" [**ननु**] अहो शिष्य ! [**इह**] यहाँ शुद्ध ज्ञानके प्रगट होनेपर [**कर्तृ-कर्मप्रवृत्तेः**] जीव कर्ता और ज्ञानावरणादि पुद्गलपिण्ड कर्म ऐसे विपरीतरूपसे बुद्धिका व्यवहार उसका [**कथं अवकाशः**] कौन अवसर । भावार्थ इस प्रकार है कि जैसे सूर्यका प्रकाश होनेपर अन्धकारको अवसर नही, वैसे शुद्धस्वरूप अनुभव होनेपर विपरीतरूप मिथ्यात्वबुद्धिका प्रवेश नही । यहाँ पर कोई प्रश्न करता है कि शुद्ध ज्ञानका अनुभव होनेपर विपरीत बुद्धिमात्र मिटती है कि कर्मबन्ध मिटता है ? उत्तर इस प्रकार है कि विपरीत बुद्धि मिटती है, कर्मबन्ध भी मिटता है । "इह पौद्गल. कर्मबन्ध· वा कथ भवति" [**इह**] विपरीत बुद्धिके मिटनेपर [**पौद्गलः**] पुद्गलसम्बन्धी है जो द्रव्य-पिण्डरूप [**कर्मबन्धः**] ज्ञानावरणादि कर्मोंका आगमन [**वा कथं भवति**] वह भी कैसे हो सकता है ।।२-४७।।

(शार्दूलविक्रीडित)

इत्येवं विरचय्य सम्प्रति परद्रव्यान्निवृत्तिं परां
स्वं विज्ञानघनस्वभावमभयादास्तिघ्नुवानः परम् ।

अज्ञानोत्थितकर्तृकर्मकलनात् क्लेशान्निवृत्तः स्वयं
ज्ञानीभूत इतश्चकास्ति जगतः साक्षी पुराणः पुमान् ।३-४८।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"पुमान् स्वय ज्ञानीभूत इत जगत साक्षी चकास्ति" [पुमान्] जीवद्रव्य [स्वयं ज्ञानीभृतः] अपने आप अपने शुद्ध स्वरूपके अनुभवनमें समर्थ हुआ, [इतः] यहाँसे लेकर [जगतः साक्षी] सकल द्रव्यस्वरूपको जाननशील होकर [चकास्ति] शोभता है। भावार्थ इस प्रकार है कि यदा जीवको शुद्धस्वरूपका अनुभव होता है तदा सकल पर द्रव्यरूप द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्ममे उदासीनपना होता है। कैसा है जीवद्रव्य ? "पुराण" द्रव्यकी अपेक्षा अनादिनिधन है। और कैसा है ? "क्लेशात् निवृत्त" [क्लेशात्] दु खसे [निवृत्तः] रहित है। कैसा है क्लेश ? "अज्ञानोत्थितकर्तृ-कर्मकलनात्" [अज्ञान] जीव-कर्मके एक सस्काररूप झूठे अनुभवसे [उत्थित] उत्पन्न हुई है। [कर्तृ-कर्मकलनात्] जीव कर्ता और जीवकी करतूति ज्ञानावरणादि द्रव्यपिण्ड ऐसी विपरीत प्रतीति जिसको, ऐसा है। और कैसी है जीववस्तु ? "इति एव सम्प्रति परद्रव्यात् परा निवृत्ति विरचय्य स्व आस्तिघ्नुवान" [इति] इतने [एव] पूर्वोक्त प्रकारसे [सम्प्रति] विद्यमान [परद्रव्यात्] पर वस्तु जो द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म उससे [निवृत्तिं] सर्वथा त्यागबुद्धि [परां] मूलसे [विरचय्य] करके [स्व] शुद्ध चिद्रूपको [आस्तिघ्नुवानः] आस्वादती हुई। कैसा है स्व ? "विज्ञानघनस्वभाव" [विज्ञानघन] शुद्ध ज्ञानका समूह है [स्वभावं] सर्वस्व जिसका ऐसा है। और कैसा है स्व ? "पर" सदा शुद्धस्वरूप है। "अभयात्" [जीववस्तु शुद्धचिद्रूपको] सात भयोंसे रहितरूपसे आस्वादती है ॥३-४८॥

(शार्दूलविक्रीडित)

व्याप्य-व्यापकता तदात्मनि भवेन्नैवातदात्मन्यपि
व्याप्य-व्यापकभावसम्भवमृते का कर्तृ-कर्मस्थितिः ।
इत्युद्दामविवेकघस्मरमहोभारेण भिन्दंस्तमो
ज्ञानीभूय तदा स एष लसितः कर्तृत्वशून्यः पुमान् ॥४-४९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तदा स एष पुमान् कर्तृत्वशून्य लसित" [तदा] उस काल [स एष पुमान्] जो जीव अनादि कालसे मिथ्यात्वरूप परिणत हुआ था वही जीव [कर्तृत्वशून्यः लसितः] कर्मके करनेसे रहित हुआ। कैसा है जीव ? "ज्ञानीभूय

तम भिन्दन्" [**ज्ञानीभूय**] अनादिसे मिथ्यात्वरूप परिणमता हुआ, जीव-कर्मकी एक पर्यायस्वरूप परिणत हो रहा था सो छूटा, शुद्ध चेतन-अनुभव हुआ, ऐसा होनेपर [**तमः**] मिथ्यात्वरूपी अन्धकारको [**भिन्दन्**] छेदता हुआ। किसके द्वारा मिथ्यात्वरूपी अंधकार छूटा ? "इति उद्दामविवेकघस्मरमहोभारेण" [**इति**] जो कहा है [**उद्दाम**] बलवान् है ऐसा [**विवेक**] भेदज्ञानरूपी [**घस्मरमहोभारेण**] सूर्यके तेजके समूह द्वारा। आगे जैसा विचार करनेपर भेदज्ञान होता है वही कहते हैं—"व्याप्य-व्यापकता तदात्मनि भवेत्" [**व्याप्य**] समस्त गुणरूप वा पर्यायरूप भेद-विकल्प तथा [**व्यापकता**] एक द्रव्यरूप वस्तु [**तदात्मनि**] एक सत्त्वरूप वस्तुमें [**भवेत्**] होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जैसे सुवर्ण पीला, भारी, चिकना ऐसा कहनेका है, परन्तु एक सत्त्व है वैसे जीव द्रव्य ज्ञाता, दृष्टा ऐसा कहनेका है, परन्तु एक सत्त्व है। ऐसे एक सत्त्वमे व्याप्य-व्यापकता भवेत् अर्थात् भेदबुद्धि की जाय तो व्याप्य-व्यापकता होती है। विवरण—व्यापक अर्थात् द्रव्य परिणामी अपने परिणामका कर्ता होता है। व्याप्य अर्थात् वह परिणाम द्रव्यने किया। जिसमें ऐसा भेद किया जाय तो होता है, नही किया जाय तो नही होता। "अतदात्मनि अपि न एव" [**अतदात्मनि**] जीव सत्त्वसे पुद्गल द्रव्यका सत्त्व भिन्न है, [**अपि**] निश्चयसे [**न एव**] व्याप्य-व्यापकता नही है। भावार्थ इस प्रकार है कि जैसे उपचारमात्रसे द्रव्य अपने परिणामका कर्ता है, वही परिणाम द्रव्यका किया हुआ है वैसे अन्य द्रव्यका कर्ता अन्य द्रव्य उपचारमात्रसे भी नही है, क्योकि एक सत्त्व नही, भिन्नसत्त्व है। "व्याप्य-व्यापकभावसम्भवमृते कर्तृ-कर्मस्थिति का" [**व्याप्य-व्यापकभाव**] परिणाम-परिणामीमात्र भेदकी [**सम्भवं**] उत्पत्तिके [**ऋते**] विना [**कर्तृ-कर्मस्थितिः का**] ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्मका कर्ता जीवद्रव्य ऐसा अनुभव घटता नही। कारण कि जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य एक सत्ता नही, भिन्न सत्ता है। ऐसे ज्ञान सूर्यके द्वारा मिथ्यात्वरूप अन्धकार मिटता है और जीव सम्यग्दृष्टि होता है ॥४-४९॥

(स्रग्धरा)

ज्ञानी जानन्नपीमां स्वपरपरिणतिं पुद्गलश्चाप्यजानन्
व्याप्तृव्याप्यत्वमन्तः कलयितुमसहौ नित्यमत्यन्तभेदात्।
अज्ञानात्कर्तृ-कर्मभ्रममतिरनयोर्भाति तावन्न याव-
द्विज्ञानार्चिश्चकास्ति क्रकचवददयं भेदमुत्पाद्य सद्यः ॥५-५०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"यावत् विज्ञानार्चि न चकास्ति तावत् अनयो कर्तृ-कर्मभ्रममति अज्ञानात् भाति" [**यावत्**] जितने काल [**विज्ञानार्चिः**] भेदज्ञानरूप अनुभव [**न चकास्ति**] नही प्रगट होता है [**तावत्**] उतने काल [**अनयोः**] जीव-पुद्गलमे [**कर्तृ-कर्मभ्रममतिः**] ज्ञानावरणादिका कर्ता जीवद्रव्य ऐसी है जो मिथ्या प्रतीति वह [**अज्ञानात् भाति**] अज्ञानपनेसे है। वस्तुका स्वरूप ऐसा तो नही है। कोई प्रश्न करता है कि ज्ञानावरणादि कर्मका कर्ता जीव सो अज्ञानपना है, सो क्यो है ? "ज्ञानी पुद्गल च व्याप्तृ-व्याप्यत्व अन्त कलयितु असहौ" [**ज्ञानी**] जीववस्तु [**च**] और [**पुद्गलः**] ज्ञानावरणादि कर्मपिण्ड [**व्याप्तृ-व्याप्यत्वं**] परिणामी-परिणामभावरूपसे [**अन्तः कलयितुं**] एक सक्रमणरूप होनेको [**असहौ**] असमर्थ हैं, क्योकि "नित्य अत्यन्तभेदात्" [**नित्यं**] द्रव्यस्वभावसे [**अत्यन्तभेदात्**] अति ही भेद है। विवरण—जीवद्रव्यके भिन्न प्रदेश चैतन्यस्वभाव, पुद्गलद्रव्यके भिन्न प्रदेश अचेतन स्वभाव ऐसे भेद घना। कैसा है ज्ञानी ? "इमा स्व-पर-परिणति जानन् अपि" [**इमां**] प्रसिद्ध है ऐसे [**स्व**] अपने और [**पर**] समस्त ज्ञेय-वस्तुके [**परिणतिं**] द्रव्य-गुण-पर्यायका अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यका [**जानन्**] ज्ञाता है। [**अपि**] (जीव तो) ऐसा है। तो फिर कैसा है पुद्गल ? वही कहते हैं—"इमा स्व-परपरिणति अजानन्" [**इमां**] प्रगट है ऐसे [**स्व**] अपने और [**पर**] अन्य समस्त पर द्रव्योके [**परिणतिं**] द्रव्य-गुण-पर्याय आदिको [**अजानन्**] नही जानता है, ऐसा है पुद्गलद्रव्य। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य ज्ञाता है, पुद्गलकर्म ज्ञेय है ऐसा जीवको कर्मको ज्ञेय-ज्ञायकसम्बन्ध है, तथापि व्याप्य-व्यापकसम्बन्ध नही है, द्रव्योका अत्यन्त भिन्नपना है, एकपना नही है। कैसा है भेदज्ञानरूप अनुभव ? 'अय क्रकचवत् सद्य भेद उत्पाद्य" जिसने करौतके समान शीघ्र ही जीव और पुद्गलका भेद उत्पन्न किया है ॥५-५०॥

(आर्या)

यः परिणमति स कर्ता यः परिणामो भवेत्तु तत्कर्म ।
या परिणतिः क्रिया सा त्रयमपि भिन्नं न वस्तुतया ॥६-५१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"य परिणमति स कर्ता भवेत्" [**यः**] जो कोई सत्तामात्र वस्तु [**परिणमति**] जो कोई अवस्था है उसरूप आप ही है, इस कारण [**स कर्ता भवेत्**] उस अवस्थाका सत्तामात्र वस्तु कर्ता भी होता है। और ऐसा कहना

विरुद्ध भी नही है, कारण कि अवस्था भी है। "य परिणाम तत्कर्म" [**यः परिणामः**] उस द्रव्यका जो कुछ स्वभावपरिणाम है [**तत् कर्म**] वह द्रव्यका परिणाम कर्म इस नामसे कहा जाता है। "या परिणति सा क्रिया" [**या परिणतिः**] द्रव्यका जो कुछ पूर्व अवस्थासे उत्तर अवस्थारूप होना है [**सा क्रिया**] उसका नाम क्रिया कहा जाता है। जैसे मृत्तिका घटरूप होती है, इसलिये मृत्तिका कर्ता कहलाती है, उत्पन्न हुआ घडा कर्म कहलाता है तथा मृत्तिका पिण्डसे घटरूप होना क्रिया कहलाती है। वैसे ही सत्त्वरूप वस्तु कर्ता कहा जाता है, उस द्रव्यका उत्पन्न हुआ परिणाम कर्म कहा जाता है और उस क्रियारूप होना क्रिया कही जाती है। "वस्तुतया त्रय अपि न भिन्न" [**वस्तुतया**] सत्तामात्र वस्तुके स्वरूपका अनुभव करनेपर [**त्रयं**] कर्ता-कर्म-क्रिया ऐसे तीन भेद [**अपि**] निश्चयसे [**न भिन्नं**] तीन सत्त्व तो नही, एक ही सत्त्व है। भावार्थ इस प्रकार है कि कर्ता-कर्म-क्रियाका स्वरूप तो इस प्रकार है, इसलिये ज्ञानावरणादि द्रव्य पिण्डरूप कर्मका कर्ता जीवद्रव्य है ऐसा जानना झूठा है, क्योकि जीवद्रव्यका और पुद्गलद्रव्यका एक सत्त्व नही, कर्ता-कर्म-क्रियाकी कौन घटना ? ॥६-५१॥

(आर्या)

एकः परिणमति सदा परिणामो जायते सदैकस्य ।
एकस्य परिणतिः स्यादनेकमप्येकमेव यतः ॥७-५२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"सदा एक. परिणमति" [**सदा**] त्रिकालमे [**एकः**] सत्तामात्र वस्तु [**परिणमति**] अपनेमे अवस्थान्तररूप होती है। "सदा एकस्य परिणाम जायते" [**सदा**] त्रिकालगोचर [**एकस्य**] सत्तामात्र है वस्तु उसकी [**परिणामः जायते**] अवस्था वस्तुरूप है। भावार्थ इस प्रकार है कि यथा सत्तामात्र वस्तु अवस्थारूप है तथा अवस्था भी वस्तुरूप है। "परिणति एकस्य स्यात्" [**परिणतिः**] क्रिया [**एकस्य स्यात्**] सो भी सत्तामात्र वस्तुकी है। भावार्थ इस प्रकार है कि क्रिया भी वस्तुमात्र है, वस्तुसे भिन्न सत्त्व नही। "यत अनेक अपि एक एव" [**यतः**] जिस कारणसे [**अनेकं**] एक सत्त्वके कर्ता-कर्म-क्रियारूप तीन भेद [**अपि**] यद्यपि इस प्रकार भी है तथापि [**एकं एव**] सत्तामात्र वस्तु है। तीन ही विकल्प झूठे है। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानावरणादि द्रव्यरूप पुद्गलपिण्ड कर्मका कर्ता जीववस्तु है ऐसा जानपना मिथ्याज्ञान है, क्योकि एक सत्त्वमे कर्ता-कर्म-क्रिया उपचारसे कहा जाता है।

भिन्न सत्त्वरूप है जो जीवद्रव्य-पुद्गलद्रव्य उनको कर्ता-कर्म-क्रिया कहाँ से घटेगा ? ॥७-५२॥

(आर्या)

नोभौ परिणमतः खलु परिणामो नोभयोः प्रजायेत ।
उभयोर्न परिणतिः स्याद्यदनेकमनेकमेव स्यात् ॥८-५३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—'खलु उभौ न परिणमत " [**खलु**] ऐसा निश्चय है कि [**उभौ**] एक चेतनलक्षण जीवद्रव्य और एक अचेतन कर्मपिण्डरूप पुद्गलद्रव्य [**न परिणमतः**] मिलकर एक परिणामरूप नही परिणमते है । भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य अपनी शुद्ध चेतनारूप अथवा अशुद्ध चेतनारूप व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है । पुद्गलद्रव्य भी अपने अचेतन लक्षणरूप शुद्ध परमाणुरूप अथवा ज्ञानावरणादि कर्मपिण्डरूप अपनेमे व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है । वस्तुका स्वरूप ऐसे तो है । परन्तु जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य दोनो मिलकर अशुद्ध चेतनारूप है राग-द्वेषरूप परिणाम उनसे परिणमते हैं ऐसा तो नही है । "उभयो परिणाम न प्रजायेत" [**उभयोः**] जीवद्रव्य-पुद्गलद्रव्य उनके [**परिणामः**] दोनो मिलकर एक पर्यायरूप परिणाम [**न प्रजायेत**] नही होते है । "उभयो परिणति न स्यात्" [**उभयोः**] जीव और पुद्गलकी [**परिणतिः**] मिलकर एक क्रिया [**न स्यात्**] नही होती है । वस्तुका स्वरूप ऐसा ही है । "यत अनेक अनेक एव सदा" [**यतः**] जिस कारणसे [**अनेकं**] भिन्न सत्तारूप है जीव-पुद्गल [**अनेकं एव सदा**] वे तो जीव-पुद्गल सदा ही भिन्नरूप हैं, एकरूप कैसे हो सकते है । भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य-पुद्गलद्रव्य भिन्न सत्तारूप है सो जो पहले भिन्न सत्तापन छोडकर एक सत्तारूप होवे तो पीछे कर्ता-कर्म-क्रियापना घटित हो । सो तो एकरूप होते नही, इसलिये जीव-पुद्गलका आपसमे कर्ता-कर्म-क्रियापना घटित नही होता ॥८-५३॥

(आर्या)

नैकस्य हि कर्तारौ द्वौ स्तो द्वे कर्मणी न चैकस्य ।
नैकस्य च क्रिये द्वे एकमनेकं यतो न स्यात् ॥९-५४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—यहाँ पर कोई मतान्तर निरूपण करेगा कि द्रव्यकी अनन्त शक्तियाँ है सो एक शक्ति ऐसी भी होगी कि एक द्रव्य दो द्रव्योके परिणामको

करे। जैसे जीवद्रव्य अपने अशुद्ध चेतनारूप राग-द्वेष-मोह परिणामको व्याप्य-व्यापकरूप करे वैसे ही ज्ञानावरणादि कर्मपिण्डको व्याप्य-व्यापकरूप करे। उत्तर इस प्रकार है कि द्रव्यके अनन्त शक्तियाँ हैं पर ऐसी शक्ति तो कोई नही कि जिससे जैसे अपने गुणके साथ व्याप्य-व्यापकरूप है, वैसे ही पर द्रव्यके गुणके साथ भी व्याप्य-व्यापकरूप होवे। "हि एकस्य द्वौ कर्तारौ न" [हि] निश्चयसे [**एकस्य**] एक परिणामके [**द्वौ कर्तारौ न**] दो कर्ता नही है। भावार्थ इस प्रकार है कि अशुद्ध चेतनारूप राग-द्वेष-मोह परिणामका जिस प्रकार व्याप्य-व्यापकरूप जीवद्रव्य कर्ता है उसी प्रकार पुद्गलद्रव्य भी अशुद्ध चेतनारूप राग-द्वेष-मोह परिणामका कर्ता है ऐसा तो नही। जीवद्रव्य अपने राग-द्वेष-मोह परिणामका कर्ता है, पुद्गलद्रव्य कर्ता नही है। "एकस्य द्वे कर्मणी न स्तः" [**एकस्य**] एक द्रव्यके [**द्वे कर्मणी न स्तः**] दो परिणाम नही होते हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार जीवद्रव्य राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध चेतना परिणामका व्याप्य-व्यापकरूप कर्ता है उस प्रकार ज्ञानावरणादि अचेतन कर्मका कर्ता जीव है ऐसा तो नही है। अपने परिणामका कर्ता है, अचेतन परिणामरूप कर्मका कर्ता नही है। "च एकस्य द्वे क्रिये न" [च] तथा [**एकस्य**] एक द्रव्यकी [**द्वे क्रिये न**] दो क्रिया नही होती। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य जिस प्रकार चेतन परिणतिरूप परिणमता है वैसे ही अचेतन परिणतिरूप परिणमता हो ऐसा तो नही है। "यत एकं अनेकं न स्यात्" [यतः] जिस कारणसे [**एकं**] एक द्रव्य [**अनेकं न स्यात्**] दो द्रव्यरूप कैसे होवे ? भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य एक चेतन द्रव्यरूप है सो जो पहले वह अनेक द्रव्यरूप होवे तो ज्ञानावरणादि कर्मका कर्ता भी होवे, अपने राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध चेतन परिणामका भी कर्ता होवे. सो ऐसा तो है नही। अनादिनिधन जीवद्रव्य एकरूप ही है, इसलिए अपने अशुद्ध चेतन परिणामका कर्ता है, अचेतनकर्मका कर्ता नही है। ऐसा वस्तु-स्वरूप है ॥९-५४॥

(शार्दूलविक्रीडित)

आ संसारत एव धावति परं कुर्वेऽहमित्युच्चकै-
र्दुर्वारं ननु मोहिनामिह महाहंकाररूपं तमः।
तद्भूतार्थपरिग्रहेण विलयं यद्येकवारं व्रजेत्
तत्किं ज्ञानघनस्य बन्धनमहो भूयो भवेदात्मनः ॥१०-५५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ननु मोहिना अह कुर्वे इति तम आससारत एव धावति" [ननु] अहो जीव ! [मोहिनां] मिथ्यादृष्टि जीवोके [अहं कुर्वे इति तमः] ज्ञानावरणादि कर्मका कर्ता जीव ऐसा है जो मिथ्यात्वरूप अन्धकार [आसंसारतः एव धावति] अनादि कालसे एक सन्तानरूप चला आ रहा है । कैसा है मिथ्यात्वरूपी तम ? "पर" पर द्रव्यस्वरूप है । और कैसा है ? "उच्चकै दुर्वार" अति ढीठ है । और कैसा है ? "महाहकाररूप" [महाहंकार] मैं देव, मैं मनुष्य, मैं तिर्यञ्च, मैं नारक ऐसी जो कर्मकी पर्याय उसमे आत्मबुद्धि [रूपं] वही है स्वरूप जिसका ऐसा है । "यदि तद् भूतार्थपरिग्रहेण एकवार विलय व्रजेत्" [यदि] जो कभी [तत्] ऐसा है जो मिथ्यात्व अन्धकार [भूतार्थपरिग्रहेण] शुद्धस्वरूप अनुभवके द्वारा [एकवारं] अन्तर्मुहूर्त मात्र [विलयं व्रजेत्] विनाशको प्राप्त हो जाय । भावार्थ इस प्रकार है कि जीवके यद्यपि मिथ्यात्व अन्धकार अनन्तकालसे चला आ रहा है । तथा जो सम्यक्त्व हो तो मिथ्यात्व छूटे, जो एकवार छूटे तो "अहो तत् आत्मन भूय बन्धन कि भवेत्" [अहो] भो जीव ! [तत्] उस कारणसे [आत्मनः] जीवके [भूयः] पुन [बन्धनं किं भवेत्] एकत्वबुद्धि क्या होगी अपितु नही होगी । कैसा है आत्मा ? "ज्ञानघनस्य" ज्ञानका समूह है । भावार्थ—शुद्धस्वरूपका अनुभव होनेपर ससारमे रुलना नही होता ॥१०-५५॥

(अनुष्टुप्)

आत्मभावान् करोत्यात्मा परभावान् सदा परः ।
आत्मैव ह्यात्मनो भावाः परस्य पर एव ते ॥११-५६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"आत्मा आत्मभावान् करोति" [आत्मा] जीवद्रव्य [आत्मभावान्] अपने शुद्धचेतनरूप अथवा अशुद्धचेतनारूप राग-द्वेष-मोहभाव, [करोति] उनरूप परिणमता है । "पर परभावान् सदा करोति" [परः] पुद्गलद्रव्य [परभावान्] पुद्गलद्रव्यके ज्ञानावरणादिरूप पर्यायको [सदा] त्रिकालगोचर [करोति] करता है । "हि आत्मनो भावा आत्मा एव" [हि] निश्चयसे [आत्मनो भावा] जीवके परिणाम [आत्मा एव] जीव ही है । भावार्थ इस प्रकार है कि चेतन परिणामको जीव करता है, वे चेतन परिणाम भी जीव ही है, द्रव्यान्तर नही हुआ । "परस्य पर एव" [परस्य] पुद्गलद्रव्यके [भावाः] परिणाम [पर एव] पुद्गलद्रव्य है, जीवद्रव्य नही हुआ । भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानावरणादि कर्मका कर्ता पुद्गल है और वस्तु भी पुद्गल है, द्रव्यान्तर नही ॥११-५६॥

(वसन्ततिलका)

अज्ञानतस्तु सतृणाभ्यवहारकारी
ज्ञानं स्वयं किल भवन्नपि रज्यते यः ।
पीत्वा दधीक्षुमधुराम्लरसातिगृद्धचा
गां दोग्धि दुग्धमिव नूनमसौ रसालम् ॥१२-५७॥

खण्डान्वय महित अर्थ—"य अज्ञानतः तु रज्यते" [यः] जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव [अज्ञानतः तु] मिथ्या दृष्टिसे ही [रज्यते] कर्मकी विचित्रतामे अपनापन जानकर रंजायमान होता है। वह जीव कैसा है? "सतृणाभ्यवहारकारी" [सतृण] घासके साथ [अभ्यवहारकारी] आहार करता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जैसे हाथी अन्न-घास मिला ही वरावर जान खाता है, घासका और अन्नका विवेक नही करता है, वैसे मिथ्यादृष्टि जीव कर्मकी सामग्रीको अपनी जानता है। जीवका और कर्मका विवेक नही करता है। कैसा है? "किल स्वयं ज्ञान भवन् अपि" [किल स्वयं] निश्चयसे स्वरूपमात्रकी अपेक्षा [ज्ञानं भवन् अपि] यद्यपि ज्ञानस्वरूप है। और जीव कैसा है? "असौ नून रसाल पीत्वा गां दुग्धं दोग्धि इव" [असौ] यह है जो विद्यमान जीव [नूनं] निश्चयसे [रसालं] शिखरणीको [पीत्वा] पीकर ऐसा मानता है कि [गां दुग्धं दोग्धि इव] मानो गायके दूधको पीता है। क्या करके? 'दधीक्षुमधुराम्लरसातिगृद्धचा' [दधीक्षु] शिखरणीमे [मधुराम्लरस] मीठे और खट्टे स्वादकी [अतिगृद्धचा] अति ही आसक्तिसे। भावार्थ इस प्रकार है कि स्वादलम्पट हुआ शिखरणी पीता है, स्वाद-भेद नही करता है। ऐसा निर्भेदपना मानता है, जैसा गायके दूधको पीते हुए निर्भेदपना माना जाता है ॥१२-५७॥

(शार्दूलविक्रीडित)

अज्ञानात् मृगतृष्णिकां जलधिया धावन्ति पातुं मृगा
अज्ञानात्तमसि द्रवन्ति भुजगाध्यासेन रज्जौ जनाः ।
अज्ञानाच्च विकल्पचक्रकरणाद्वातोत्तरंगाब्धिव-
च्छुद्धज्ञानमया अपि स्वयममी कर्त्रीभवन्त्याकुलाः ॥१३-५८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अमी स्वय शुद्धज्ञानमया अपि अजानात् आकुला कर्त्रीभवन्ति" [अमी] सव संसारी मिथ्यादृष्टि जीव [स्वयं] सहजसे [शुद्धज्ञानमयाः]

शुद्धस्वरूप है ['अपि] तथापि [अज्ञानात्] मिथ्या दृष्टिसे [आकुलाः] आकुलित होते हुए [कर्त्रीभवन्ति] बलात्कार ही कर्ता होते हैं। किस कारणसे ? "विकल्पचक्र-करणात्" [विकल्प] अनेक रागादिके [चक्र] समूहके [करणात्] करनेसे। किसके समान ? "वातोत्तरगाब्धिवत्" [वात] वायुसे [उत्तरंग] डोलते-उछलते हुए [अब्धिवत्] समुद्रके समान। भावार्थ इस प्रकार है कि जैसे समुद्रका स्वरूप निश्चल है, वायुसे प्रेरित होकर उछलता है और उछलनेका कर्ता भी होता है, वैसे ही जीवद्रव्य स्वरूपसे अकर्ता है। कर्मसयोगसे विभावरूप परिणमता है, इसलिए विभावपनेका कर्ता भी होता है। परन्तु अज्ञानसे, स्वभाव तो नही। दृष्टात कहते है—"मृगा मृगतृष्णिका अज्ञानात् जलधिया पातु धावन्ति" [मृगाः] जिस प्रकार हरिण [मृगतृष्णिकां] मरीचिकाको [अज्ञानात्] मिथ्या भ्रान्तिके कारण [जलधिया] पानीकी बुद्धिसे [पातुं धावन्ति] पीनेके लिये दौडते है। "जना रज्जौ तमसि अज्ञानात् भुजगाध्यासेन द्रवन्ति" [जनाः] जिस प्रकार मनुष्य जीव [रज्जौ] रस्सीमे [तमसि] अन्धकारके होनेपर [अज्ञानात्] भ्रान्तिके कारण [भुजगाध्यासेन] सर्पकी बुद्धिसे [द्रवन्ति] डरते है ॥१३-५८॥

(वसन्ततिलका)

ज्ञानाद्विवेचकतया तु परात्मनोर्यो
जानाति हंस इव वाः-पयसोर्विशेषं।
चैतन्यधातुमचलं स सदाधिरूढो
जानीत एव हि करोति न किञ्चनापि ॥१४-५९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"य तु परात्मनो विशेष जानाति" [यः तु] जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव [पर] द्रव्यकर्मपिण्ड [आत्मनोः] शुद्ध चैतन्यमात्र, उनका [विशेषं] भिन्नपना [जानाति] अनुभवता है। कैसा करके अनुभवता है ? "ज्ञानात् विवेचकतया" [ज्ञानात्] सम्यग्ज्ञान द्वारा [विवेचकतया] लक्षणभेद कर। उसका विवरण—शुद्ध चैतन्यमात्र जीवका लक्षण, अचेतनपना पुद्गलका लक्षण, इससे जीव पुद्गल भिन्न भिन्न है ऐसा भेद भेदज्ञान कहना। दृष्टात कहते है—"वा-पयसो हस इव" [वाः] पानी [पयसोः] दूध [हंस इव] हसके समान। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार हस दूध पानी भिन्न भिन्न करता है उस प्रकार जो कोई जीव-पुद्गलको भिन्न

भिन्न अनुभवता है। "स हि जानीत एव किञ्चनापि न करोति" [सः हि] वह जीव [जानीत एव] ज्ञायक तो है, [किञ्चनापि] परमाणुमात्र भी [न करोति] करता तो नही है। कैसा है ज्ञानी जीव ? "स सदा अचलं चैतन्यधातु अधिरूढ." वह सदानिश्चल चैतन्य धातुमय आत्माके स्वरूपमे दृढतासे रहा है ॥१४-५९॥

(मन्दाक्रान्ता)

ज्ञानादेव ज्वलनपयसोरौष्ण्यशैत्यव्यवस्था
ज्ञानादेवोल्लसति लवणस्वादभेदव्युदासः ।
ज्ञानादेव स्वरसविकसन्नित्यचैतन्यधातोः
क्रोधादेश्च प्रभवति भिदा भिन्दती कर्तृभावम् ।१५-६०।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ज्ञानात् एव स्वरसविकसन्नित्यचैतन्यधातो क्रोधादेच भिदा प्रभवति" [ज्ञानात् एव] शुद्ध स्वरूपमात्र वस्तुको अनुभवन करते ही [स्वरस] चेतनस्वरूप, उससे [विकसत्] प्रकाशमान है [नित्य] अविनश्वर ऐसा जो [चैतन्यधातोः] शुद्ध जीवस्वरूपका (और) [क्रोधादेश्च] जितने अशुद्ध चेतनारूप रागादि परिणामका [भिदा] भिन्नपना [प्रभवति] होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि साम्प्रत (-वर्त्तमान मे) जीवद्रव्य रागादि अशुद्ध चेतनारूप परिणमा है, सो तो ऐसा प्रतिभासता है कि ज्ञान क्रोधरूप परिणमा है, सो ज्ञान भिन्न क्रोध भिन्न ऐसा अनुभवना अति ही कठिन है। उत्तर इस प्रकार है कि साँचा ही कठिन है, पर वस्तुका शुद्धस्वरूप विचारनेपर भिन्नपनेरूप स्वाद आता है। कैसा है भिदा (-भिन्नपना) ? "कर्तृभावं भिन्दती" [कर्तृभावं] कर्मका कर्ता जीव ऐसी भ्रान्ति, उसको [भिन्दती] मूलसे दूर करता है। दृष्टात कहते हैं—"एव ज्वलनपयसोः औष्ण्यशैत्यव्यवस्था ज्ञानात् उल्लसति" [एव] जिस प्रकार [ज्वलन] अग्नि [पयसोः] पानी, उनका [औष्ण्य] उष्णपना [शैत्य] शीतपना, उनका [व्यवस्था] भेद [ज्ञानात्] निजस्वरूपग्राही ज्ञानके द्वारा [उल्लसति] प्रगट होता है। भावार्थ-इस प्रकार है कि जिस प्रकार अग्नि सयोगसे पानी ताता (उष्ण) किया जाता है, फिर 'ताता पानी' ऐसा कहा जाता है तथापि स्वभाव विचारनेपर उष्णपना अग्निका है, पानी तो स्वभावसे शीला (ठडा) है ऐसा भेदज्ञान विचारनेपर उपजता है। और दृष्टात—"एव लवणस्वादभेदव्युदास. ज्ञानात्

उल्लसति" [एव] जिस प्रकार [लवण] खारा रस, उसका [स्वादभेद] व्यंजनसे भिन्नपनेके द्वारा खारा लवणका स्वभाव ऐसा जानपना, उससे [व्युदासः] व्यजन खारा ऐसा कहा जाता था, जाना जाता था सो छूटा। (ऐसा) [ज्ञानात्] निज स्वरूपका जानपना उसके द्वारा [उल्लसति] प्रगट होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार लवणके सयोगसे व्यजन सभारते है तो खारा व्यजन ऐसा कहा जाता है, जाना भी जाता है, स्वरूप विचारनेपर खारा लवण, व्यजन जैसा है वैसा ही है ॥१५-६०॥

(अनुष्टुप्)

अज्ञानं ज्ञानमप्येवं कुर्वन्नात्मानमञ्जसा ।
स्यात्कर्तात्मात्मभावस्य परभावस्य न क्वचित् ॥१६-६१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एवं आत्मा आत्मभावस्य कर्ता स्यात्" [एवं] सर्वथा प्रकार [आत्मा] जीवद्रव्य [आत्मभावस्य कर्ता स्यात्] अपने परिणामका कर्ता होता है। "परभावस्य कर्ता न क्वचित् स्यात्" [परभावस्य] कर्मरूप अचेतन पुद्गल-द्रव्यका [कर्ता क्वचित् न स्यात्] कभी तीनो कालमे कर्ता नही होता। कैसा है आत्मा? "ज्ञान अपि आत्मान कुर्वन्" [ज्ञानं] शुद्ध चेतनमात्र प्रगटरूप सिद्धअवस्था [अपि] उस रूप भी [आत्मानं कुर्वन्] आप तद्रूप परिणमता है। और कैसा है? "अज्ञानं अपि आत्मान कुर्वन्" [अज्ञानं] अशुद्ध चेतनारूप विभाव परिणाम [अपि] उसरूप भी [आत्मानं कुर्वन्] आप तद्रूप परिणमता है। भावार्थ इस प्रकार है—जीवद्रव्य अशुद्ध चेतनारूप परिणमता है, शुद्ध चेतनारूप परिणमता है, इसलिये जिस कालमे जिस चेतनारूप परिणमता है उस कालमे उसी चेतनाके साथ व्याप्य-व्यापकरूप है, इसलिए उस कालमे उसी चेतनाका कर्ता है। तो भी पुद्गलपिण्डरूप जो ज्ञानावरणादि कर्म है उसके साथ तो व्याप्य-व्यापकरूप नही है, इसलिये उसका कर्ता नही है। "अञ्जसा" समस्तरूपसे ऐसा अर्थ है ॥१६-६१॥

(अनुष्टुप्)

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम् ।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम् ॥१७-६२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"आत्मा ज्ञान करोति" [आत्मा] चेतनद्रव्य [ज्ञानं] चेतनामात्र परिणामको [करोति] करता है। कैसा होता हुआ? "स्वय ज्ञान" जिस

कारणसे आत्मा स्वय चेतना परिणाममात्र स्वरूप है। "ज्ञानात् अन्यत् करोति किं" [ज्ञानात् अन्यत्] चेतन परिणामसें भिन्न जो अचेतन पुद्गल परिणामरूप कर्म उसका [किं करोति] करता है क्या ? अपि तु न करोति—सर्वथा नही करता है। "आत्मा परभावस्य कर्ता अयं व्यवहारिणा मोह" [आत्मा] चेतनद्रव्य [परभावस्य कर्ता] ज्ञानावरणादि कर्मको करता है [अयं] ऐसा जानपना, ऐसा कहना [व्यवहारिणां मोहः] मिथ्यादृष्टि जीवोका अज्ञान है। भावार्थ इस प्रकार है कि कहनेमे ऐसा आता है कि ज्ञानावरणादि कर्मका कर्ता जीव है सो कहना भी झूठा है ॥१७-६२॥

(वसन्ततिलका)

जीवः करोति यदि पुद्गलकर्म नैव
कस्तर्हि तत्कुरुत इत्यभिशंकयैव।
एतर्हि तीव्ररयमोहनिवर्हणाय
संकीर्त्यते शृणुत पुद्गलकर्म कर्तृ ॥१८-६३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"पुद्गलकर्म कर्तृ संकीर्त्यते" [पुद्गलकर्म] द्रव्य-पिण्डरूप आठ कर्म उसका [कर्तृ] कर्ता [संकीर्त्यते] जैसा है वैसा कहते है। "शृणुत" सावधान होकर तुम सुनो। प्रयोजन कहते है—"एतर्हि तीव्ररयमोहनिवर्हणाय" [एतर्हि] इस समय [तीव्ररय] दुर्निवार उदय है जिसका ऐसा जो [मोह] विपरीत ज्ञान उसको [निवर्हणाय] मूलसे दूर करनेके निमित्त। विपरीतपना कैसा करके जाना जाता है। "इति अभिशङ्कया एव" [इति] जैसी करते है [अभिशङ्कया] आशका उसके द्वारा [एव] ही। वह आशका कैसी है ? "यदि जीव एव पुद्गलकर्म न करोति तर्हि क तत् कुरुते" [यदि] जो [जीव एव] चेतनद्रव्य [पुद्गलकर्म] पिण्डरूप आठ कर्मको [न करोति] नही करता है [तर्हि] तो [कः तत् कुरुते] उसे कौन करता है। भावार्थ इस प्रकार है—जो जीवके करनेपर ज्ञानावरणादि कर्म होता है ऐसी भ्राति उपजती है उसके प्रति उत्तर इस प्रकार है कि पुद्गलद्रव्य परिणामी है, स्वय सहज ही कर्मरूप परिणमता है ॥१८-६३॥

(उपजाति)

स्थितेत्यविघ्ना खलु पुद्गलस्य
स्वभावभूता परिणामशक्तिः

तस्यां स्थितायां स करोति भावं
यमात्मनस्तस्य स एव कर्ता ॥१६-६४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इति खलु पुद्गलस्य परिणामशक्ति स्थिता" [**इति**] इस प्रकार [**खलु**] निश्चयसे [**पुद्गलस्य**] मूर्त द्रव्यका [**परिणामशक्तिः**] परिणामन-स्वरूप स्वभाव [**स्थिता**] अनादिनिधन विद्यमान है। कैसा है ? "स्वभावभूता" सहज-रूप है। और कैसा है ? "अविघ्ना" निर्विघ्नरूप है। "तस्या स्थितायां स आत्मन य भाव करोति स तस्य कर्ता भवेत्" [**तस्यां स्थितायां**] उस परिणामशक्तिके रहते हुए [**सः**] पुद्गलद्रव्य [**आत्मनः**] अपने अचेतन द्रव्यसम्बन्धी [**यं भावं करोति**] जिस परिणामको करता है [**सः**] पुद्गलद्रव्य [**तस्य कर्ता भवेत्**] उस परिणामका कर्ता होता है। भावार्थ इस प्रकार है—ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलद्रव्य परिणमता है उस भावका कर्ता फिर पुद्गलद्रव्य होता है ॥१६-६४॥

(उपजाति)

स्थितेति जीवस्य निरन्तराया
स्वभावभूता परिणामशक्तिः।
तस्यां स्थितायां स करोति भावं
यं स्वस्य तस्यैव भवेत् स कर्ता ॥२०-६५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"जीवस्य परिणामशक्ति स्थिता इति" [**जीवस्य**] चेतनद्रव्यकी [**परिणामशक्तिः**] परिणमनरूप सामर्थ्य [**स्थिता**] अनादिसे विद्यमान है। [**इति**] ऐसा द्रव्यका सहज है। "स्वभावभूता" जो शक्ति [**स्वभावभूता**] सहजरूप है। और कैसी है ? "निरन्तराया" प्रवाहरूप है, एक समयमात्र खण्ड नही है। "तस्या स्थितायां" उस परिणामशक्तिके होते हुए "स स्वस्य य भाव करोति" [**सः**] जीववस्तु [**स्वस्य**] आपसम्बन्धी [**यं भावं**] जिस किसी शुद्ध चेतनारूप अशुद्ध चेतनारूप परिणामको [**करोति**] करता है "तस्य एव स कर्ता भवेत्" [**तस्य**] उस परिणामका [**एव**] निश्चयसे [**सः**] जीववस्तु [**कर्ता**] करणशील [**भवेत्**] होता है। भावार्थ इस प्रकार है—जीवद्रव्यकी अनादिनिधन परिणमनशक्ति है ॥२०-६५॥

(आर्या)

ज्ञानमय एव भावः कुतो भवेद् ज्ञानिनो न पुनरन्यः।
अज्ञानमयः सर्वः कुतोऽयमज्ञानिनो नान्यः ॥२१-६६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—यहाँपर कोई प्रश्न करता है—"ज्ञानिन. ज्ञानमय एव भाव कुतो भवेत् पुन' न अन्य." [**ज्ञानिनः**] सम्यग्दृष्टिके [**ज्ञानमय एव भावः**] भेद-विज्ञानस्वरूप परिणाम [**कुतो भवेत्**] किस कारणसे होता है [**न पुनः अन्यः**] अज्ञान-रूप नही होता। भावार्थ इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि जीव कर्मके उदयको भोगनेपर विचित्र रागादिरूप परिणमता है सो ज्ञानभावका कर्ता है और [**उसके**] ज्ञानभाव है, अज्ञानभाव नही है सो कैसे है ऐसा कोई बूझता है। "अय सर्व अज्ञानिन अज्ञानमय कुत न अन्य" [**अयं**] परिणाम [**सर्वः**] सबका सब परिणमन [**अज्ञानिनः**] मिथ्यादृष्टिके [**अज्ञानमयः**] अशुद्ध चेतनारूप बन्धका कारण होता है। [**कुतः**] कोई प्रश्न करता है ऐसा है सो कैसे है, [**न अन्यः**] ज्ञानजातिका कैसे नही होता। भावार्थ इस प्रकार है—मिथ्यादृष्टिके जो कुछ परिणाम होता है वह बन्धका कारण है ॥२१-६६॥

(अनुष्टुप्)

ज्ञानिनो ज्ञाननिर्वृत्ता सर्वे भावा भवन्ति हि ।
सर्वेऽप्यज्ञाननिर्वृत्ताः भवन्त्यज्ञानिनस्तु ते ॥२२-६७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—'हि ज्ञानिन सर्वे भावा ज्ञाननिर्वृत्ता भवन्ति" [**हि**] निश्चयसे [**ज्ञानिनः**] सम्यग्दृष्टिके [**सर्वे भावाः**] जितने परिणाम है [**ज्ञाननिर्वृत्ताः भवन्ति**] ज्ञानस्वरूप होते है। भावार्थ इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टिका द्रव्य शुद्धत्वरूप परिणमा है, इसलिये सम्यग्दृष्टिका जो कोई परिणाम होता है वह ज्ञानमय शुद्धत्व जातिरूप होता है, कर्मका अबन्धक होता है। "तु ते सर्वे अपि अज्ञानिन' अज्ञाननिर्वृत्ता भवन्ति" [**तु**] यो भी है कि [**ते**] जितने परिणाम [**सर्वे अपि**] शुभोपयोगरूप अथवा अशुभोपयोगरूप है वे सब [**अज्ञानिनः**] मिथ्यादृष्टिके [**अज्ञाननिर्वृत्ताः**] अशुद्धत्वसे निपजे है। [**भवन्ति**] विद्यमान है। भावार्थ इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि जीवकी और मिथ्यादृष्टि जीवकी क्रिया तो एकसी है, क्रियासम्बन्धी विषय कषाय भी एकसी है, परन्तु द्रव्यका परिणमनभेद है। विवरण—सम्यग्दृष्टिका द्रव्य शुद्धत्वरूप परिणमा है, इसलिये जो कोई परिणाम बुद्धिपूर्वक अनुभवरूप है अथवा विचाररूप है अथवा व्रत-क्रियारूप है अथवा भोगाभिलापरूप है अथवा चारित्रमोहके उदय क्रोध, मान, माया, लोभरूप है वह सभी परिणाम ज्ञानजातिमे घटता है। कारण कि जो कोई परिणाम है वह सवर-निर्जराका कारण है, ऐसा ही कोई द्रव्य-परिणमनका विशेष है। मिथ्यादृष्टिका द्रव्य अशुद्धरूप परिणमा है, इसलिये जो कोई

मिथ्यादृष्टिका परिणाम अनुभवरूप तो होता ही नही। इस कारण सूत्रसिद्धान्तके पाठरूप है अथवा व्रत-तपश्चरणरूप है अथवा दान, पूजा, दया, शीलरूप है अथवा भोगाभिलाप-रूप है अथवा क्रोध, मान, माया, लोभरूप है ऐसा समस्त परिणाम अज्ञानजातिका है, क्योकि बन्धका कारण है, सवर-निर्जराका कारण नही है। द्रव्यका ऐसा ही परिणमन-विशेप है ॥२२-६७॥

(अनुष्टुप्)

अज्ञानमयभावानामज्ञानी व्याप्य भूमिकाः ।
द्रव्यकर्मनिमित्तानां भावानामेति हेतुताम् ॥२३-६८॥

खण्डान्वय महित अर्थ—ऐसा कहा है कि सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यादृष्टि जीवकी वाह्य क्रिया तो एकसी है परन्तु द्रव्य परिणमनविशेप है सो विशेषके अनुसार दिखलाते हैं। सर्वथा तो प्रत्यक्ष ज्ञानगोचर है। "अज्ञानी द्रव्यकर्मनिमित्ताना भावाना हेतुता एति" [**अज्ञानी**] मिथ्यादृष्टि जीव [**द्रव्यकर्म**] धाराप्रवाहरूप निरन्तर बँधते है—पुद्गलद्रव्यकी पर्यायरूप कार्मणवर्गणा ज्ञानावरणादि कर्म पिण्डरूप वँधते है जीवके प्रदेशके साथ एक क्षेत्रावगाही हैं, परस्पर वन्ध्यबन्धकभाव भी है। उनके [**निमित्तानां**] वाह्य कारणरूप है [**भावानां**] मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्व, राग, द्वेषरूप अशुद्ध परिणाम। भावार्थ इस प्रकार है—जैसे कलशरूप मृत्तिका परिणमती है, जैसे कुम्भकारका परिणाम उसका वाह्य निमित्तकारण है, व्याप्य-व्यापकरूप नही है उसी प्रकार ज्ञाना-वरणादि कर्मपिण्डरूप पुद्गलद्रव्य स्वय व्याप्य-व्यापकरूप है। तथापि जीवका अशुद्ध चेतनारूप मोह, राग, द्वेषादि परिणाम बाह्य निमित्तकारण है, व्याप्य-व्यापकरूप तो नही है। उस परिणामके [**हेतुतां**] कारणरूप [**एति**] आप परिणमा है। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई जानेगा कि जीवद्रव्य तो शुद्ध है, उपचारमात्र कर्मवन्धका कारण होता है सो ऐसा तो नही है। आप स्वय मोह, राग, द्वेप अशुद्ध चेतना परिणामरूप परिणमता है, इसलिये कर्मका कारण है। मिथ्यादृष्टि जीव अशुद्धरूप जिस प्रकार परिणमता है उसी प्रकार कहते हैं—"अज्ञानमयभावाना भूमिका प्राप्य" [**अज्ञानमय**] मिथ्यात्व जाति ऐसी है [**भावानां**] कर्मके उदयकी अवस्था उनकी [**भूमिकाः**] जिसके पानेपर अशुद्ध परिणाम होते है ऐसी सगतिको [**प्राप्य**] प्राप्त कर मिथ्यादृष्टि जीव अशुद्ध परिणामरूप परिणमता है। भावार्थ इस प्रकार है—द्रव्यकर्म अनेक प्रकारका है, उसका उदय अनेक प्रकारका है। एक कर्म ऐसा है जिसके उदय शरीर होता है, एक

कर्म ऐसा है जिसके उदय मन, वचन, काय होता है, एक कर्म ऐसा है जिसके उदय सुख, दुःख होता है। ऐसे अनेक प्रकारके कर्मका उदय होनेपर मिथ्यादृष्टि जीव कर्मके उदयको आपरूप अनुभवता है, इससे राग, द्वेष, मोह परिणाम होते हैं, उनके द्वारा नूतन कर्मबन्ध होता है। इस कारण मिथ्यादृष्टि जीव अशुद्ध चेतन परिणामका कर्ता है। क्योंकि मिथ्यादृष्टि जीवके शुद्धस्वरूपका अनुभव नही है, इसलिये कर्मके उदय कार्यको आपरूप अनुभवता है। जिस प्रकार मिथ्यादृष्टिके कर्मका उदय है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टिके भी है, परन्तु सम्यग्दृष्टि जीवको शुद्धस्वरूपका अनुभव है, इस कारण कर्मके उदयको कर्मजातिरूप अनुभवता है, आपको शुद्धस्वरूप अनुभवता है। इसलिये कर्मके उदयमे नही रजायमान होता है, इसलिये मोह, राग, द्वेषरूप नही परिणमता है, इसलिये कर्मबन्ध नही होता है, इसलिये सम्यग्दृष्टि अशुद्ध परिणामका कर्ता नही है। ऐसा विशेष है ॥२३-६८॥

(उपेन्द्रवज्रा)

य एव मुक्त्वा नयपक्षपातं
स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्यम् ।
विकल्पजालच्युतशान्तचित्ता-
स्त एव साक्षादमृतं पिबन्ति ॥२४-६९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ये एव नित्य स्वरूपगुप्ता निवसन्ति ते एव साक्षात् अमृतं पिबन्ति"—[**ये एव**] जो कोई जीव [**नित्यं**] निरन्तर [**स्वरूप**] शुद्ध चैतन्यमात्र वस्तुमें [**गुप्ताः**] तन्मय हुए है [**निवसन्ति**] तिष्ठते है [**ते एव**] वे ही जीव [**साक्षात् अमृतं**] अतीन्द्रिय सुखका [**पिबन्ति**] आस्वाद करते है। क्या करके? "नयपक्षपात मुक्त्वा"—[**नय**] द्रव्यपर्यायरूप विकलपबुद्धि, उसके [**पक्षपातं**] एक पक्षरूप अगीकार, उसको [**मुक्त्वा**] छोडकर। कैसे है वे जीव? "विकल्पजालच्युत-शान्तचित्ता" [**विकल्पजाल**] एक सत्त्वका अनेकरूप विचार, उससें [**च्युत**] रहित हुआ है, [**शान्तचित्ताः**] निर्विकल्प समाधान मन जिनका, ऐसे है। भावार्थ इस प्रकार है—जो एक सत्त्वरूप वस्तु है उसका द्रव्य-गुण-पर्यायरूप, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप विचार करनेपर विकल्प होता है, उस विकल्पके होनेपर मन आकुल होता है, आकुलता दुःख है, इसलिये वस्तुमात्रके अनुभवनेपर विकल्प मिटता है, विकल्पके मिटनेपर आकुलता

मिटती है, आकुलताके मिटनेपर दुःख मिटता है, इससे अनुभवशीली जीव परम सुखी है ॥२४-६९॥

(उपजाति)

एकस्य बद्धो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥२५-७०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"चिति द्वयो इति द्वौ पक्षपातौ"—[**चिति**] चैतन्यमात्र वस्तुमे [**द्वयोः**] द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक दो नयोके [**इति**] इस प्रकार [**द्वौ पक्षपातौ**] दो ही पक्षपात है। "एकस्य बद्ध तथा अपरस्य न"—[**एकस्य**] अशुद्ध पर्यायमात्र ग्राहक ज्ञानका पक्ष करने पर [**बद्धः**] जीवद्रव्य बँधा है। भावार्थ इस प्रकार है—जीवद्रव्य अनादिसे कर्मसंयोगके साथ एक पर्यायरूप चला आया है, विभावरूप परिणमा है। इस प्रकार एक बन्धपर्यायको अंगीकार करिये, द्रव्यस्वरूपका पक्ष न करिये तब जीव बँधा है, एक पक्ष इस प्रकार है। [**तथा**] दूसरा पक्ष— [**अपरस्य**] द्रव्यार्थिक नयका पक्ष करने पर [**न**] नही बँधा है। भावार्थ इस प्रकार है—जीव द्रव्य अनादिनिधन चेतनालक्षण है, इस प्रकार द्रव्यमात्रका पक्ष करने पर जीव द्रव्य बँधा तो नही है, सदा अपने स्वरूप है, क्योकि कोई भी द्रव्य किसी अन्य द्रव्य-गुण-पर्यायरूप नही परिणमता है, सभी द्रव्य अपने स्वरूपरूप परिणमते है। "य तत्त्ववेदी" जो कोई शुद्ध चेतनामात्र जीवके स्वरूपका अनुभवनशील है जीव "च्युतपक्षपात"—वह जीव पक्षपातसे रहित है। भावार्थ इस प्रकार है—एक वस्तुकी अनेकरूप कल्पना की जाती है उसका नाम पक्षपात कहा जाता है, इसलिये वस्तुमात्रका स्वाद आने पर कल्पनाबुद्धि सहज ही मिटती है। "तस्य चित् चित् एव अस्ति"—[**तस्य**] शुद्धस्वरूपको अनुभवता है, उसको [**चित्**] चैतन्य वस्तु [**चित् एव अस्ति**] चेतनामात्र वस्तु है ऐसा प्रत्यक्षपने स्वाद आता है ॥२५-७०॥*

---

* आगे २६से ४४ तकके श्लोक २५ वें श्लोकके साथ मिलते-जुलते है। इसलिये पं० श्री राजमलजीने उन श्लोकोका "खण्डान्वय सहित अर्थ" नहीं किया है। मूल श्लोक, उनका अर्थ और भावार्थ हिन्दी समयसारमेंसे यहाँ दिया गया है।

(उपजाति)

एकस्य मूढो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥२६-७१॥

अर्थ—जीव मूढ (मोही) है ऐसा एक नयका पक्ष है और वह मूढ नही है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है, इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमे दो नयोंके दो पक्षपात है। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपातरहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है (अर्थात् उसे चित्स्वरूप जीव जैसा है वैसा ही निरन्तर अनुभवमें आता है) ॥२६-७१॥

(उपजाति)

एकस्य रक्तो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥२७-७२॥

अर्थ—जीव रागी है ऐसा एक नयका पक्ष है और वह रागी नही है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है, इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमे दो नयोंके दो पक्षपात है। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपातरहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥२७-७२॥

(उपजाति)

एकस्य दुष्टो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥२८-७३॥

अर्थ—जीव द्वेषी है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव द्वेषी नही है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है, इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमें दो नयोके दो पक्षपात है। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥२८-७३॥

(उपजाति)

एकस्य कर्ता न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥२९-७४॥

अर्थ—जीव कर्ता है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव कर्ता नही है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है, इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमे दो नयोके दो पक्षपात है। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपातरहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥२९-७४॥

(उपजाति)

एकस्य भोक्ता न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३०-७५॥

अर्थ—जीव भोक्ता है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव भोक्ता नही है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है, इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमे दो नयोके दो पक्षपात है। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपातरहित है उसे निरतर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥३०-७५॥

(उपजाति)

एकस्य जीवो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३१-७६॥

अर्थ—जीव जीव है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव जीव नही है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है, इसप्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमे दो नयोके दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपातरहित है उसे निरतर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥३१-७६॥

(उपजाति)

एकस्य सूक्ष्मो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३२-७७॥

अर्थ—जीव सूक्ष्म है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव सूक्ष्म नही है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है; इसप्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपातरहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥३२-७७॥

(उपजाति)

एकस्य हेतुर्न न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३३-७८॥

अर्थ—जीव हेतु (कारण) है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव हेतु (कारण) नहीं है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमे दो नयोंके दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥३३-७८॥

(उपजाति)

एकस्य कार्यं न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३४-७९॥

अर्थ—जीव कार्य है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव कार्य नही है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है: इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरंतर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥३४-७९॥

(उपजाति)

एकस्य भावो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३५-८०॥

अर्थ—जीव भाव है (अर्थात् भावरूप है) ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव भाव नही है (अर्थात् अभावरूप है) ऐसा दूसरे नयका पक्ष है, इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमे दो नयोके दो पक्षपात हैं । जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरतर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥३५-८०॥

(उपजाति)

एकस्य चैको न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३६-८१॥

अर्थ—जीव एक है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव एक नही है (अनेक है) ऐसा दूसरे नयका पक्ष है, इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमे दो नयोके दो पक्षपात है । जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरतर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥३६-८१॥

(उपजाति)

एकस्य सांतो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३७-८२॥

अर्थ—जीव सान्त है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव सात नही है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है, इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमे दो नयोके दो पक्षपात है । जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥३७-८२॥

(उपजाति)

एकस्य नित्यो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।।३८-८३।।

अर्थ—जीव नित्य है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव नित्य नही है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है, इसप्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमें दो नयोके दो पक्षपात है । जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ।।३८-८३।।

(उपजाति)

एकस्य वाच्यो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।।३९-८४।।

अर्थ—जीव वाच्य (अर्थात् वचनसे कहा जा सके ऐसा) है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव वाच्य (वचनगोचर) नही है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है, इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमे दो नयोके दो पक्षपात है । जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ।।३९-८४।।

(उपजाति)

एकस्य नाना न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।।४०-८५।।

अर्थ—जीव नानारूप है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव नानारूप नही है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है, इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमे दो नयोके दो पक्षपात है । जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ।।४०-८५।।

(उपजाति)

एकस्य चेत्यो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥४१-८६॥

अर्थ—जीव चेत्य (जाननेयोग्य) है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव चेत्य नही है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है, इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमे दो नयोके दो पक्षपात है। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपातरहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥४१-८६॥

(उपजाति)

एकस्य दृश्यो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥४२-८७॥

अर्थ—जीव दृश्य (देखनेयोग्य) है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव दृश्य नही है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है, इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमे दो नयोके दो पक्षपात है। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥४२-८७॥

(उपजाति)

एकस्य वेद्यो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥४३-८८ ।

अर्थ—जीव वेद्य (वेदनेयोग्य-ज्ञात होनेयोग्य) है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव वेद्य नही है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है, इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमे दो नयोके दो पक्षपात है। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपातरहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥४३-८८॥

(उपजाति)

एकस्य भातो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥४४-८६॥

अर्थ—जीव भात (प्रकाशमान अर्थात् वर्तमान प्रत्यक्ष) है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव भात नही है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है, इस प्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्वन्धमे दो नयोके दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपातरहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥४४-८६॥

भावार्थ—वद्ध अवद्ध, मूढ अमूढ, रागी अरागी, द्वेपी अद्वेपी, कर्त्ता अकर्त्ता, भोक्ता अभोक्ता, जीव अजीव, सूक्ष्म स्थूल, कारण अकारण, कार्य अकार्य, भाव अभाव, एक अनेक, सात अनन्त, नित्य अनित्य, वाच्य अवाच्य, नाना अनाना, चेत्य अचेत्य, दृश्य अदृश्य, वेद्य अवेद्य, भात अभात इत्यादि नयोके पक्ष्पात है। जो पुरुष नयोके कथनानुसार यथा योग्य विवक्षापूर्वक तत्त्वका—वस्तुस्वरूपका निर्णय करके नयोंके पक्षपातको छोडता है उसे चित्स्वरूप जीवका चित्स्वरूप अनुभव होता है।

जीवमें अनेक साधारण धर्म हैं, परन्तु चित्स्वभाव उसका प्रगट अनुभवगोचर असाधारण धर्म है, इसलिये उसे मुख्य करके यहाँ जीवको चित्स्वरूप कहा है ॥४४-८६॥

(वसन्ततिलका)

स्वेच्छासमुच्छलदनल्पविकल्पजाला-
मेवं व्यतीत्य महतीं नयपक्षकक्षाम् ।
अन्तर्बहिः समरसैकरसस्वभावं
स्वं भावमेकमुपयात्यनुभूतिमात्रम् ॥४५-६०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एवं स तत्त्ववेदी एकं स्वं भावं उपयाति" [एवं] पूर्वोक्त प्रकार [सः] सम्यग्दृष्टि जीव—[तत्त्ववेदी] शुद्धस्वरूपका अनुभवशील, [एकं स्वं भावं उपयाति] एक शुद्धस्वरूप चिद्रूप आत्माको आस्वादता है। कैसा है आत्मा ? "अन्तर्वहि समरसैकरसस्वभाव" [अन्तः] भीतर [वहिः] वाहर [समरस] तुल्यरूप ऐसी [एकरस] चेतनशक्ति ऐसा है [स्वभावं] सहजरूप जिसका ऐसा है।

किं कृत्वा—क्या करके शुद्धस्वरूप पाता है ? "नयपक्षकक्षा व्यतीत्य" [नय] द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक भेद, उनका [पक्ष] अंगीकार, उसकी [कक्षां] समूह है—अनन्त नयविकल्प है, उनको [व्यतीत्य] दूरसे ही छोडकर। भावार्थ इस प्रकार है—अनुभव निर्विकल्प है। उस अनुभवके कालमे समस्त विकल्प छूट जाते हैं। (नयपक्षकक्षा) कैसी है ? "महती" जितने वाह्य-अभ्यतर बुद्धिके विकल्प उतने ही नयभेद ऐसी है। और कैसी है ? "स्वेच्छासमुच्छलदनल्पविकल्पजाला" [स्वेच्छा] विना ही उपजाए गये [समुच्छलत्] उपजते है ऐसे जो [अनल्प] अति वहु [विकल्प] निर्भेद वस्तुमे भेदकल्पना, उसका [जालां] समूह है जिसमे ऐसी है। कैसा है आत्मस्वरूप ? "अनुभूतिमात्र" अतीन्द्रिय सुखस्वरूप है ॥४५-९०॥

(रथोद्धता)

इन्द्रजालमिदमेवमुच्छलत्
पुष्कलोच्चलविकल्पवीचिभिः।
यस्य विस्फुरणमेव तत्क्षणं
कृत्स्नमस्यति तदस्मि चिन्महः ॥४६-९१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तत् चिन्मह अस्मि" मैं ऐसा ज्ञानपुञ्जरूप हूँ, "यस्य विस्फुरण" जिसका प्रकाशमात्र होने पर "इद कृत्स्नं इन्द्रजाल तत्क्षणं एव अस्यति" [इदं] विद्यमान अनेक नयविकल्प जो [कृत्स्नं] अति वहुत है [इन्द्रजालं] झूठा है पर विद्यमान है, वह [तत्क्षणं] जिस कालमे शुद्ध चिद्रूप अनुभव होता है उसी कालमे [एव] निश्चयसे [अस्यति] विनश जाता है। भावार्थ इस प्रकार है—जैसे सूर्यका प्रकाश होनेपर अन्धकार फट जाता है उसी प्रकार शुद्ध चैतन्यमात्रका अनुभव होनेपर यावत् समस्त विकल्प मिटते हैं ऐसी शुद्ध चैतन्य वस्तु है सो मेरा स्वभाव, अन्य समस्त कर्मकी उपाधि है। कैसा है इन्द्रजाल ? "पुष्कलोच्चलविकल्पवीचिभि उच्छलत्" [पुष्कल] अति बहुत [उच्चल] अति स्थूल ऐसी जो [विकल्प] भेद कल्पना ऐसी जो [वीचिभिः] तरंगावली उस द्वारा [उच्छलत्] आकुलतारूप है इसलिए हेय है, उपादेय नही है ॥४६-९१॥

(स्वागता)

चित्स्वभावभरभावितभावा-
भावभावपरमार्थतयैकम्।

बन्धपद्धतिमपास्य समस्तां
चेतये समयसारमपारम् ॥४७-९२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"समयसारं चेतये" शुद्ध चैतन्यका अनुभव करना कार्यसिद्धि है। कैसा है ? "अपारं" अनादि-अनन्त है। और कैसा है ? "एक" शुद्धस्वरूप है। कैसा करके शुद्धस्वरूप है ? "चित्स्वभावभरभावितभावाभावभावपरमार्थतया एकं" [चित्स्वभाव] ज्ञानगुण, उसका [भर] अर्थग्रहण व्यापार उसके द्वारा [भावित] होते है [भाव] उत्पाद [अभाव] विनाश [भाव] ध्रौव्य ऐसे तीन भेद उनके द्वारा [परमार्थतया एकं] साधा है एक अस्तित्व जिसका। किं कृत्वा—क्या करके ? "समस्ता वन्धपद्धतिं अपास्य" [समस्तां] जितनी असख्यात लोकमात्र भेदरूप है ऐसी जो [वन्धपद्धतिं] ज्ञानावरणादि कर्मवन्धरचना, उसका [अपास्य] ममत्व छोडकर। भावार्थ इस प्रकार है—शुद्धस्वरूपका अनुभव होनेपर जिस प्रकार नयविकल्प मिटते है उसी प्रकार समस्त कर्मके उदयसे होनेवाले जितने भाव है वे भी अवश्य मिटते हैं ऐसा स्वभाव है ॥४७-९२॥

(शार्दूलविक्रीडित)

आक्रामन्नविकल्पभावमचलं पक्षैर्नयानां विना
सारो यः समयस्य भाति निभृतैरास्वाद्यमानः स्वयम् ।
विज्ञानैकरसः स एष भगवान्पुण्यः पुराणः पुमान्
ज्ञानं दर्शनमप्ययं किमथवा यत्किञ्चनैकोऽप्ययम् ॥४८-९३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"य समयस्य सार भाति" [यः] जो [समयस्य सारः] शुद्धस्वरूप आत्मा [भाति] अपने शुद्ध स्वरूपरूप परिणमता है। जैसा परिणमता है वैसा कहते है—"नयाना पक्षै विना अचलं अविकल्पभाव आक्रामन्" [नयानां] द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक ऐसे जो अनेक विकल्प उनके [पक्षैः विना] पक्षपात विना किये [अचलं] त्रिकाल ही एक रूप है ऐसी [अविकल्पभावं] निर्विकल्प शुद्ध चैतन्य वस्तु, उस रूप [आक्रामन्] जिस प्रकार शुद्धस्वरूप है उस प्रकार परिणमता हुआ। भावार्थ इस प्रकार है—जितना नय है उतना श्रुतज्ञान है, श्रुतज्ञान परोक्ष है, अनुभव प्रत्यक्ष है, इसलिए श्रुतज्ञान विना जो ज्ञान है वह प्रत्यक्ष अनुभवता है। इस कारण प्रत्यक्ष-रूपसे अनुभवता हुआ जो कोई शुद्धस्वरुप आत्मा "स विज्ञानैकरस" वही ज्ञानपुञ्ज वस्तु है ऐसा कहा जाता है। "स भगवान्" वही परब्रह्म परमेश्वर ऐसा कहा जाता है।

"एष. पुण्य" वही पवित्र पदार्थ ऐसा भी कहा जाता है। "एप पुराण" वही अनादि-निधन वस्तु ऐसा भी कहा जाता है। "एष पुमान्" वही अनन्त गुण विराजमान पुरुष ऐसा भी कहा जाता है। "अय ज्ञान दर्शन अपि" वही सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान ऐसा भी कहा जाता है। "अथवा किं" अथवा बहुत क्या कहे "अथ एक यत् किञ्चन अपि" [**अयं एकः**] यह जो है शुद्ध चैतन्य वस्तुकी प्राप्ति [**यत् किञ्चन अपि**] उसे जो कुछ कहा जाय वही है जैसी भी कही जाय वैसी ही है। भावार्थ इस प्रकार है—शुद्ध चैतन्य-मात्र वस्तुप्रकाश निर्विकल्प एकरूप है, उसके नामकी महिमा की जाय सो अनन्त नाम कहे जाँय तो उतने ही घटित हो जाँय, वस्तु तो एकरूप है। कैसा है वह शुद्ध स्वरूप आत्मा ? "निभृतै स्वय आस्वाद्यमान." निश्चल ज्ञानी पुरुषोके द्वारा आप स्वय अनुभवशील है ॥४८-९३॥

(शार्दूलविक्रीडित)

दूरं भूरिविकल्पजालगहने भ्राम्यन्निजौघाच्च्युतो
दूरादेव विवेकनिम्नगमनान्नीतो निजौघं बलात् ।
विज्ञानैकरसस्तदेकरसिनामात्मानमात्माहरन्
आत्मन्येव सदा गतानुगततामायात्ययं तोयवत् ॥४९-९४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अय आत्मा गतानुगतता आयाति तोयवत्" [**अयं**] द्रव्यरूप विद्यमान है ऐसा [**आत्मा**] चेतन पदार्थ [**गतानुगततां**] स्वरूपसे नष्ट हुआ था सो फिर उस स्वरूपको प्राप्त हुआ. ऐसे भावको [**आयाति**] प्राप्त होता है। दृष्टात [**तोयवत्**] पानीके समान। क्या करके ? "आत्मान आत्मनि सदा आहरन्" आपको आपमे निरन्तर अनुभवता हुआ। कैसा है आत्मा ? "तदेकरसिना विज्ञानैकरस" [**तदेकरसिनां**] अनुभवरसिक है जो पुरुष उनको [**विज्ञानैकरसः**] ज्ञानगुण आस्वादरूप है। कैसा हुआ है ? "निजौघात् च्युत" [**निजौघात्**] जिस प्रकार पानीका शीत, स्वच्छ, द्रवत्व स्वभाव है, उस स्वभावसे कभी च्युत होता है, अपने स्वभावको छोडता है उसी प्रकार जीव द्रव्यका स्वभाव केवलज्ञान, केवलदर्शन, अतीन्द्रिय सुख इत्यादि अनन्त गुण-स्वरूप है, उससे [**च्युतः**] अनादिकालसे लेकर भ्रष्ट हुआ है, विभावरूप परिणमा है। भ्रष्टपना जिस प्रकार है उस प्रकार कहते है—"दूर भूरिविकल्पजालगहने भ्राम्यन्"

[दूरं] अनादि कालसे लेकर [भूरि] अति बहुत है [विकल्प] कर्मजनित जितने भाव, उनमे आत्मरूप संस्कारबुद्धि, उसका [जाल] समूह, वही है [गहने] अटवीवन, उसमें [भ्राम्यन्] भ्रमता हुआ। भावार्थ इस प्रकार है—जिस प्रकार पानी अपने स्वादसे भ्रष्ट हुआ नाना वृक्षरूप परिणमता है उसी प्रकार जीव द्रव्य अपने शुद्ध स्वरूपसे भ्रष्ट हुआ नाना प्रकार चतुर्गति पर्यायरूप अपनेको आस्वादता है। हुआ तो कैसा हुआ ? "बलात् निजौघ नीत" [बलात्] बलजोरीसे [निजौघं] अपने शुद्धस्वरूपलक्षण निष्कर्म अवस्था [नीतः] उसरूप परिणमा है। ऐसा जिस कारणसे हुआ वही कहते हैं— "दूरात् एव" अनन्त काल फिरते हुए प्राप्त हुआ ऐसा जो "विवेकनिम्नगमनात्" [विवेक] शुद्धस्वरूपका अनुभव, ऐसा जो [निम्नगमनात्] नीचा मार्ग, उस कारणसे जीव द्रव्यका जैसा स्वरूप था वैसा प्रगट हुआ। भावार्थ इस प्रकार है—जिस प्रकार पानी अपने स्वरूपसे भ्रष्ट होता है, काल निमित्त पाकर पुन. जलरूप होता है, नीचे मार्गसे ढलकता हुआ पुञ्जरूप भी होता है उसी प्रकार जीव द्रव्य अनादिसे स्वरूपसे भ्रष्ट है। शुद्ध-स्वरूपलक्षण सम्यक्त्व गुणके प्रगट होने पर मुक्त होता है, ऐसा द्रव्यका परिणाम है ॥४९-९४॥

(अनुष्टुप्)

विकल्पकः परं कर्ता विकल्पः कर्म केवलम् ।
न जातु कर्तृकर्मत्वं सविकल्पस्य नश्यति ॥५०-९५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"सविकल्पस्य कर्तृ-कर्मत्व जातु न नश्यति" [सविकल्पस्य] कर्मजनित है जो अशुद्ध रागादि भाव, उनको आपरूप जानता है ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवके [कर्तृ-कर्मत्वं] कर्तापना कर्मपना [जातु] सर्व काल [न नश्यति] नही मिटता है। जिस कारणसे "पर विकल्पक· कर्ता केवल विकल्प· कर्म" [परं] एतावन्मात्र [विकल्पकः] विभाव मिथ्यात्व परिणामरूप परिणमा है जो जीव वह [कर्ता] जिस भावरूप परिणमा है उसका कर्ता अवश्य होता है। [केवलं] एतावन्मात्र [विकल्पः] मिथ्यात्व रागादिरूप अशुद्ध चेतनपरिणामको [कर्म] जीवकी करतूति जानना। भावार्थ इस प्रकार है—कोई ऐसा मानेगा कि जीव द्रव्य सदा ही अकर्ता है उसके प्रति ऐसा समाधान कि जितने काल तक जीवका सम्यक्त्व गुण प्रगट नही होता उतने काल तक जीव मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यादृष्टि हो तो अशुद्ध परिणामका कर्ता होता है सो जब सम्यक्त्व

गुण प्रगट होता है तब अशुद्ध परिणाम मिटता है, तब अशुद्ध परिणामका कर्ता नही होता ॥५०-९५॥

(रथोद्धता)

य करोति स करोति केवलं
यस्तु वेत्ति स तु वेत्ति केवलम् ।
यः करोति न हि वेत्ति स क्वचित्
यस्तु वेत्ति न करोति स क्वचित् ॥५१-९६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—इस समय सम्यग्दृष्टि जीवका व मिथ्यादृष्टि जीवका परिणाम भेद बहुत है वही कहते है—"यः करोति स केवल करोति" [यः] जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव [करोति] मिथ्यात्व रागादि परिणामरूप परिणमता है [स केवलं करोति] वह वैसे ही परिणामका कर्ता होता है। "तु यः वेत्ति" जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव शुद्धस्वरूपके अनुभवरूप परिणमता है "स केवल वेत्ति" वह जीव उस ज्ञानपरिणामरूप है, इसलिए केवल ज्ञाता है, कर्ता नही है। "य. करोति स क्वचित् न वेत्ति" जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व रागादि रूप परिणमता है वह शुद्ध स्वरूपका अनुभवशील एक ही काल तो नही होता। "य तु वेत्ति स क्वचित् न करोति" जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव शुद्ध स्वरूपको अनुभवता है वह जीव मिथ्यात्व रागादि भावका परिणमनशील नही होता। भावार्थ इस प्रकार है कि सम्यक्त्व मिथ्यात्वके परिणाम परस्पर विरुद्ध हैं। जिस प्रकार सूर्यके प्रकाश होते हुए अन्धकार नही होता, अन्धकार होते हुए प्रकाश नही होता उसीप्रकार सम्यक्त्व के परिणाम होते हुए मिथ्यात्व परिणमन नही होता। इस कारण एक कालमें एक परिणामरूप जीव द्रव्य परिणमता है, अत· उस परिणामका कर्ता होता है, इसलिए मिथ्यादृष्टि जीव कर्मका कर्ता, सम्यग्दृष्टि जीव कर्मका अकर्ता ऐसा सिद्धान्त सिद्ध हुआ ॥ ५१-९६ ॥

(इन्द्रवज्रा)

ज्ञप्तिः करोतौ न हि भासतेऽन्तः
ज्ञप्तौ करोतिश्च न भासतेऽन्तः ।

ज्ञप्ति करोतिश्च ततो विभिन्ने
ज्ञाता न कर्तेति ततः स्थितं च ॥५२-९७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अन्तः" सूक्ष्म द्रव्यस्वरूप दृष्टिसे "ज्ञप्ति करोतौ न हि भासते" [**ज्ञप्तिः**] ज्ञानगुण [**करोतौ**] मिथ्यात्व रागादिरूप चिक्कणता इनमें [**न हि भासते**] एकत्वपना नही है। भावार्थ इस प्रकार है—ससार अवस्था [**रूप**] मिथ्यादृष्टि जीवके ज्ञानगुण भी है और रागादि चिक्कणता भी है, कर्मबन्ध होता है सो रागादि सचिक्कणतासे होता है। ज्ञानगुणके परिणमनसें नही होता ऐसा वस्तुका स्वरूप है। तथा "ज्ञप्तौ करोति अन्त. न भासते" [**ज्ञप्तौ**] ज्ञानगुणमे [**करोतिः**] अशुद्धरागादि परिणमनका [**अन्तः न भासते**] अन्तरगमे एकत्वपना नही है। "तत ज्ञप्ति करोतिश्च विभिन्ने" [**ततः**] उस कारणसे [**ज्ञप्तिः**] ज्ञानगुण [**करोतिः**] अशुद्धपना [**विभिन्ने**] भिन्न-भिन्न है, एकरूप तो नही है। भावार्थ इस प्रकार है—ज्ञान-गुण, अशुद्धपना देखने पर तो मिलेके समान दिखता है, परन्तु स्वरूपसे भिन्न-भिन्न है। विवरण—ज्ञानपना मात्र ज्ञानगुण है, उसमें गर्भित यही दिखता है। सचिक्कणपना सो रागादि है, उससे अशुद्धपना कहा जाता है। "तत स्थितं ज्ञाता न कर्त्ता" [**ततः**] इस कारणसे [**स्थितं**] ऐसा सिद्धान्त निष्पन्न हुआ—[**ज्ञाता**] सम्यग्दृष्टि पुरुष [**न कर्ता**] रागादि अशुद्ध परिणामका कर्ता नही होता। भावार्थ-इस प्रकार है—द्रव्यके स्वभावसे ज्ञानगुण कर्ता नही है, अशुद्धपना कर्ता है। सो सम्यग्दृष्टिके अशुद्धपना नही है, इसलिए सम्यग्दृष्टि कर्ता नही है ॥ ५२–९७ ॥

(शार्दूलविक्रीडित)

कर्ता कर्मणि नास्ति नास्ति नियतं कर्मापि तत्कर्तरि
द्वन्द्वं विप्रतिषिध्यते यदि तदा का कर्तृकर्मस्थितिः ।
ज्ञाता ज्ञातरि कर्म कर्मणि सदा व्यक्तेति वस्तुस्थिति-
र्नेपथ्ये वत नानटीति रभसा मोहस्तथाप्येष किम् ॥५३-९८॥

खण्डान्वय सहित अर्थः—"कर्ता कर्मणि नियत नास्ति" [**कर्ता**] मिथ्यात्व रागादि अशुद्ध परिणाम परिणत जीव [**कर्मणि**] ज्ञानावरणादि पुद्गलपिण्डमे [**नियतं**] निश्चयसे [**नास्ति**] नही है अर्थात् इन दोनोमे एक द्रव्यपना नही है। "तत् कर्म अपि कर्तरि नास्ति" [**तत् कर्म अपि**] वह भी ज्ञानावरणादि पुद्गलपिण्ड [**कर्तरि**] अशुद्ध

भाव परिणत मिथ्यादृष्टि जीवमे [**नास्ति**] नही है अर्थात् इन दोनोमे एक द्रव्यपना नही है। "यदि द्वन्द्व विप्रतिषिध्यते तदा कर्तृ-कर्मस्थितिः का" [**यदि**] जो [**द्वन्द्वं**] जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्यके एकत्वपनेका [**विप्रतिषिध्यते**] निषेध किया [**तदा**] तो [**कर्तृ-कर्मस्थितिः का**] जीवकर्ता ज्ञानावरणादि कर्म ऐसी व्यवस्था कैसे घटती है, अपितु नही घटती है। "ज्ञाता ज्ञातरि" जीवद्रव्य अपने द्रव्यत्वसे एकत्वको लिए हुए है। "सदा" सर्व ही काल ऐसा वस्तुका स्वरूप है। "कर्म कर्मणि" ज्ञानावरणादि पुद्गल-पिण्ड अपने पुद्गलपिण्डरूप है। "इति वस्तुस्थिति व्यक्ता" [**इति**] इसरूप [**वस्तुस्थितिः**] द्रव्यका स्वरूप [**व्यक्ता**] अनादिनिधनपने प्रगट है। "तथापि एष मोह नेपथ्ये वत कथं रभसा नानटीति" [**तथापि**] स्वरूप तो वस्तुका ऐसा है, जैसा कहा वैसा, फिर भी [**एषः मोहः**] यह है जो जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्यकी एकत्वरूप बुद्धि, वह [**नेपथ्ये**] मिथ्यामार्गमे [**वत**] इस बातका अचम्भा है कि [**रभसा**] निरन्तर [**कथं नानटीति**] क्यो प्रवर्तती है। इस प्रकार बातका विचार क्यो है। भावार्थ इस प्रकार है—जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य भिन्न भिन्न है, मिथ्यात्वरूप परिणमा हुआ जीव एकरूप जानता है इसका घना अचम्भा है ॥ ५३–६८ ॥

आगे मिथ्यादृष्टि एकरूप जानो तथापि जीव पुद्गल भिन्न भिन्न है ऐसा कहते है—

(मन्दाक्रान्ता)

कर्ता कर्ता भवति न यथा कर्म कर्मापि नैव
ज्ञानं ज्ञानं भवति च यथा पुद्गलः पुद्गलोऽपि
ज्ञानज्योतिर्ज्वलितमचलं व्यक्तमंतस्तथोच्चै-
श्चिच्छक्तीनां निकरभरतोऽत्यन्तगम्भीरमेतत् ॥५४-६६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एतत् ज्ञानज्योति तथा ज्वलित" [**एतत् ज्ञानज्योतिः**] विद्यमान शुद्धचैतन्यप्रकाश [**तथा ज्वलितं**] जैसा था वैसा प्रगट हुआ। कैसा है ? "अचल" स्वरूपसे चलायमान नही होता। और कैसा है ? "अन्त व्यक्त" असख्यात प्रदेशोमे प्रगट है। और कैसा है ? "उच्चै अत्यन्तगम्भीर" अनन्त से अनन्त शक्ति विराजमान है। किस कारण गम्भीर है ? "चिच्छक्तीनां निकरभरत" [**चिच्छक्तीनां**] ज्ञान गुणके जितने निरश भेद-भाग उनके

[निकरभरतः] अनन्तानन्त समूह होते हैं, उनसे अत्यन्त गम्भीर है। आगे ज्ञान-गुणका प्रकाश होने पर कैसे फलसिद्धि है वही कहते हैं—"यथा कर्ता कर्ता न भवति" **[यथा]** ज्ञानगुण ऐसा प्रगट हुआ। जैसे **[कर्ता]** अज्ञानपनाको लिए हुए जीव मिथ्यात्व परिणामका कर्ता होता था सो तो **[कर्ता न भवति]** ज्ञान प्रकाश होने पर अज्ञान भावका कर्ता नहीं होता। "कर्म अपि कर्म एव न"—**[कर्म अपि]** मिथ्यात्व रागादि विभाव कर्म भी **[कर्म एव न भवति]** रागादिरूप नही होता। "यथा च" जैसे कि "ज्ञानं ज्ञान भवति" जो शक्ति विभाव परिणमनरूप परिणमी थी वही फिर अपने स्वभावरूप हुई। "यथा" जिस प्रकार "पुद्गल· अपि पुद्गल." **[पुद्गलः अपि]** ज्ञानावरणादि कर्मरूप परिणमा था जो पुद्गल द्रव्य वही **[पुद्गलः]** कर्म-पर्यायको छोड़कर पुद्गल द्रव्य हुआ ॥५४-६६॥



[४]

पुण्य-पाप-अधिकार



(द्रुतविलम्बित)

तदथ कर्म शुभाशुभभेदतो
द्वितयतां गतमैक्यमुपानयन् ।
ग्लपितनिर्भरमोहरजा अयं
स्वयमुदेत्यवबोधसुधाप्लवः ॥१-१००॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अय अववोध सुधाप्लव स्वय उदेति" [अयं] विद्यमान [अवबोधः] शुद्ध ज्ञानप्रकाश, वही है [सुधाप्लवः] चन्द्रमा [स्वयं उदेति] जैसा है वैसा अपने तेजपुञ्जके द्वारा प्रगट होता है। कैसा है ? "ग्लपितनिर्भरमोहरजा" [ग्लपित] दूर किया है [निर्भर] अतिशय सघन [मोहरजा] मिथ्यात्व अन्धकार जिसने, ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है—चन्द्रमाका उदय होने पर अन्धकार मिटता है, शुद्ध ज्ञान प्रकाश होने पर मिथ्यात्व परिणामन मिटता है। क्या करता हुआ ज्ञान चन्द्रमा उदय करता है—"अथ तत् कर्म ऐक्य उपानयन्" [अथ] यहाँ से लेकर [तत् कर्म] रागादि अशुद्ध चेतना परिणामरूप अथवा ज्ञानावरणादि पुद्गल पिण्डरूप कर्म, इनका [ऐक्यं उपानयन्] एकत्वपना साधता हुआ। कैसा है कर्म ? "द्वितयतां गत" दोपना करता है। कैसा दोपना ? "शुभाशुभभेदत "[शुभ] भला [अशुभ] बुरा ऐसा [भेदतः] भेद करता है। भावार्थ इस प्रकार है—किसी मिथ्यादृष्टि जीवका अभिप्राय ऐसा है जो दया, व्रत, तप, शील, सयम आदिसे देहरूप लेकर जितनी है शुभ क्रिया और शुभ क्रियाके अनुसार है उसरूप जो शुभोपयोगपरिणाम तथा उन परिणामोको निमित्त कर बाँधता है जो साताकर्म आदिसे लेकर पुण्यरूप पुद्गलपिण्ड, वे भले हैं, जीवको सुखकारी है। हिंसा विषय कषायरूप जितनी है क्रिया, उस क्रियाके अनुसार अशुभोपयोगरूप सक्लेश परिणाम, उस परिणामके निमित्त कर होता है जो असाताकर्म

आदिसे लेकर पाप बन्धरूप पुद्गलपिण्ड, वे बुरे है, जीवको दु:खकर्ता है। ऐसा कोई जीव मानता है। उसके प्रति समाधान ऐसा कि जैसे अशुभ कर्म जीवको दु:ख करता है उसी प्रकार शुभ कर्म भी जीवको दु ख करता है। कर्ममे तो भला कोई नही है। अपने मोहको लिये हुए मिथ्यादृष्टि जीव कर्मको भला करके मानता है। ऐसी भेद प्रतीति शुद्ध स्वरूपका अनुभव हुआ तबसे पायी जाती है ॥१-१००॥

ऐसा जो कहा कि कर्म एकरूप है उसके प्रति दृष्टात कहते है——

(मन्दाक्रान्ता)

एको दूरात्त्यजति मदिरां ब्राह्मणत्वाभिमाना-
दन्यः शूद्रः स्वयमहमिति स्नाति नित्यं तयैव ।
द्वावप्येतौ युगपदुदरान्निर्गतौ शूद्रिकायाः
शूद्रौ साक्षादपि च चरतो जातिभेदभ्रमेण ॥२-१०१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"द्वौ अपि एतौ साक्षात् शूद्रौ" [**द्वौ अपि**] विद्यमान दोनो [**एतौ**] ऐसे है——[**साक्षात्**] नि सन्देहपने [**शूद्रौ**] दोनो चडाल हैं। कैसा होनेसे ? "शूद्रिकाया उदरात् युगपत् निर्गतौ"——जिस कारणसे [**शूद्रिकायाः उदरात्**] चाण्डालीके पेटसे [**युगपत् निर्गतौ**] एक ही बार जन्मे है। भावार्थ इस प्रकार है——किसी चाण्डालीने युगल दो पुत्रोको एक ही बार जन्मा। कर्मके योगसे एक पुत्र ब्राह्मणका प्रतिपाल हुआ सो तो ब्राह्मणकी क्रिया करने लगा। दूसरा पुत्र चाण्डालीका प्रतिपाल हुआ सो तो चाण्डालकी क्रिया करने लगा। अब जो दोनोके वंशकी उत्पत्ति विचारिये तो दोनो चाण्डाल है। उसी प्रकार कोई जीव दया, व्रत, शील, सयममे मग्न है, उनके शुभ कर्मबध भी होता है। कोई जीव हिंसा विषय कषाय मे मग्न है, उनके पापबन्ध भी होता है। सो दोनो अपनी अपनी क्रियामे मग्न है। मिथ्यादृष्टिसे ऐसा मानते हैं कि शुभ कर्म भला, अशुभ कर्म बुरा। सो ऐसे दोनो जीव मिथ्यादृष्टि है, दोनो जीव कर्मबन्ध करणशील है। कैसे है वे ? "अथ च जातिभेदभ्रमेण चरत." [**अथ च**] दोनो चाण्डाल है तो भी [**जातिभेद**] ब्राह्मण शूद्र ऐसा वर्णभेद उसरूप है [**भ्रमेण**] परमार्थ शून्य अभिमानमात्र, उस रूपसे [**चरतः**] प्रवर्तते है। कैसा है जातिभेदभ्रम ? "एक मदिरा दूरात् त्यजति" [**एकः**] चाण्डालीके पेटसे उपजा है पर प्रतिपाल ब्राह्मणके घर हुआ है ऐसा जो है वह [**मदिरां**] सुरापानको [**दूरात् त्यजति**] अत्यन्त त्याग करता है, छूता भी

नही है, नाम भी नही लेता है ऐसा विरक्त है। किस कारण से ? "ब्राह्मणत्वाभिमानात्" [ब्राह्मणत्व] अह ब्राह्मण ऐसा सस्कार, उसका [अभिमानात्] पक्षपातसे। भावार्थ इस प्रकार है—शूद्रीके पेटसे उपजा हूँ ऐसे मर्मको नही जानता है, 'मैं ब्राह्मण, मेरे कुलमे मदिरा निषिद्ध है' ऐसा जानकर मदिराको छोडा है, सो भी विचार करने पर, चाण्डाल है, उसी प्रकार कोई जीव शुभोपयोगी होता हुआ यतिक्रियामे मग्न होता हुआ—शुद्धोपयोगको नही जानता, केवल यतिक्रियामात्र मग्न है, वह जीव ऐसा मानता है कि मै तो मुनीश्वर, हमको विषय-कषाय सामग्री निषिद्ध है। ऐसा जानकर विषय-कषाय-सामग्रीको छोडता है, आपको धन्यपना मानता है, मोक्षमार्ग मानता है, सो विचार करने पर ऐसा जीव मिथ्यादृष्टि है, कर्मबन्धको करता है, कोई भलापन तो नही है। "अन्य तया एव नित्य स्नाति" [अन्यः] शूद्रीके पेटसे उपजा है, शूद्रका प्रतिपाल हुआ है, ऐसा जीव [तया] मदिरासे [एव] अवश्य ही [नित्यं स्नाति] नित्य अति मग्न हो पीता है। क्या जानकर पीता है ? "स्वय शूद्र इति" 'मैं शूद्र, हमारे कुल मदिरा योग्य है,' ऐसा जानकर। ऐसा जीव विचार करने पर चाण्डाल है। भावार्थ इस प्रकार है—कोई मिथ्यादृष्टि जीव अशुभोपयोगी है, गृहस्थ क्रियामे रत है—'हम गृहस्थ, मेरे विषय-कषाय क्रिया योग्य है' ऐसा जानकर विषय-कषाय सेवता है सो भी जीव मिथ्यादृष्टि है, कर्मबन्ध करता है, क्योकि कर्मजनित पर्यायमात्रको आपरूप जानता है, जीवके शुद्ध स्वरूपका अनुभव नही है।२-१०१।

(उपजाति)

हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणां
सदाप्यभेदान्न हि कर्मभेदः।
तद्बन्धमार्गाश्रितमेकमिष्टं
स्वयं समस्तं खलु बन्धहेतुः॥३-१०२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—यहा कोई मतान्तररूप होकर आशका करता है—ऐसा कहता है कि कर्मभेद है—कोई कर्म शुभ है, कोई कर्म अशुभ है। किस कारणसे ? हेतुभेद है, स्वभावभेद है, अनुभवभेद है, आश्रय भिन्न है—इन चार भेदोके कारण कर्म-भेद है। वहाँ हेतु अर्थात् कारणभेद हे। विवरण—सक्लेशपरिणामसे अशुभ कर्म बँधता है, विशुद्धपरिणामसे शुभबन्ध होता है। स्वभाव भेद अर्थात् प्रकृतिभेद है।

विवरण—अशुभकर्मसम्बन्धी प्रकृति भिन्न है—पुद्गल कर्मवर्गणा भिन्न है; शुभकर्मसम्बन्धी प्रकृति भिन्न है—पुद्गलकर्म वर्गणा भी भिन्न है। अनुभव अर्थात् कर्मका रस, सो भी रसभेद है। विवरण—अशुभ कर्मके उदयमें जीव नारकी होता है अथवा तिर्यञ्च होता है अथवा हीन मनुष्य होता है, वहा अनिष्ट विषयसंयोगरूप दु खको पाता है, अशुभ कर्मका स्वाद ऐसा है। शुभ कर्मके उदयमे जीव देव होता है अथवा उत्तम मनुष्य होता है; वहां इष्ट विषयसयोगरूप सुखको पाता है; शुभ कर्मका स्वाद ऐसा है। इसलिए स्वादभेद भी है। आश्रय अर्थात् फलकी निष्पत्ति ऐसा भी भेद है। विवरण—अशुभ कर्मके उदयमे हीन पर्याय होती है, वहाँ अधिक सक्लेश होता है, उससे ससारकी परिपाटी होती है, शुभ कर्मके उदयमे उत्तम पर्याय होती है, वहाँ धर्मकी सामग्री मिलती है, उस धर्मकी सामग्रीसे जीव मोक्ष जाता है, इसलिए मोक्षकी परिपाटी शुभ कर्म है—ऐसा कोई मिथ्यावादी मानता है। उसके प्रति उत्तर ऐसा जो "कर्मभेद न हि" कोई कर्म शुभरूप, कोई कर्म अशुभरूप—ऐसा भेद तो नही है। किस कारणसे ? "हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणा सदा अपि अभेदात्" [हेतु] कर्मबन्धके कारण विशुद्धपरिणाम सक्लेशपरिणाम ऐसे दोनों परिणाम अशुद्धरूप हैं, अज्ञानरूप है, इससे कारणभेद भी नही है, कारण एक ही है। [**स्वभाव**] शुभकर्म अशुभकर्म ऐसे दोनो कर्म पुद्गल पिण्डरूप है, इस कारण एक ही स्वभाव है, स्वभावभेद तो नही। (अनुभव) रस भी तो एक ही है, रसभेद तो नही। विवरण—शुभ कर्मके उदयसे जीव बँधा है, सुखी है, अशुभ कर्मके उदयसे जीव बँधा है, दुखी है, विशेष तो कुछ नही। [**आश्रय**] फलकी निष्पत्ति, वह भी एक ही है, विशेष तो कुछ नही। विवरण—शुभ कर्मके उदय ससार, त्यो ही अशुभ कर्मके उदय ससार, विशेष तो कुछ नही। इससे ऐसा अर्थ निश्चित हुआ कि कोई कर्म भला, कोई कर्म बुरा ऐसा तो नही, सब ही कर्म दु खरूप है। 'तत् एक बन्धमार्गाश्रित इष्ट" [**तत्**] कर्म [**एकं**] नि सन्देह [**बन्धमार्गाश्रित**] बन्धको करता है, [**इष्टं**] गणधरदेवने ऐसा माना है। किस कारणसे ? जिस कारण "खलु समस्त स्वय बन्धहेतु" [**खलु**] निश्चयसे [**समस्त**] सब कर्म जाति [**स्वयं बन्धहेतुः**] आप भी बन्धरूप है। भावार्थ इस प्रकार है—आप मुक्तस्वरूप होवे तो कदाचित् मुक्तिको करे, कर्मजाति आप स्वय बन्ध पर्यायरूप पुद्गलपिण्ड बँधी है सो मुक्ति कैसे करेगी। इससे कर्म सर्वथा बन्धमार्ग है॥ ३–१०२॥

(स्वागता)

कर्म सर्वमपि सर्वविदो यद्
बन्धसाधनमुशन्त्यविशेषात् ।
तेन सर्वमपि तत्प्रतिषिद्धं
ज्ञानमेव विहितं शिवहेतुः ॥४-१०३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"यत् सर्वविद. सर्वं अपि कर्म अविशेषात् बधसाधन उशन्ति" [यत्] जिस कारण [सर्वविदः] सर्वज्ञ वीतराग [सर्वं अपि कर्म] जितनी शुभरूप व्रत, संयम, तप, शील, उपवास इत्यादि क्रिया अथवा विपय-कषाय, असयम इत्यादि क्रिया उसको [अविशेषात्] एकसी दृष्टिकर [बन्धसाधनं उशन्ति] बन्धका कारण कहते हैं, भावार्थ इस प्रकार है—जैसे जीवको अशुभ क्रिया करते हुए बध होता है वैसे ही शुभ क्रिया करते हुए जीवको बन्ध होता है, बन्धनमे तो विशेष कुछ नही, "तेन तत् सर्व अपि प्रतिषिद्ध" [तेन] इस कारण [तत्] कर्म [सर्वं अपि] शुभरूप अथवा अशुभरूप, (उनमे) [प्रतिषिद्धं] कोई मिथ्यादृष्टि जीव शुभ क्रियाको मोक्षमार्ग जानकर पक्ष करता हैं सो निषेध किया, ऐसा भाव स्थापित किया कि मोक्षमार्ग कोई कर्म नही । "एव ज्ञान शिवहेतु विहित" [एव ज्ञानं] निश्चयसे शुद्धस्वरूप अनुभव [शिवहेतुः] मोक्षमार्ग है, [विहितं] अनादि परम्परा ऐसा उपदेश है ॥४-१०३॥

(शिखरिणी)

निषिद्धे सर्वस्मिन् सुकृतदुरिते कर्मणि किल
प्रवृत्ते नैष्कर्म्ये न खलु मुनयः संत्यशरणाः ।
तदा ज्ञाने ज्ञानं प्रतिचरितमेषां हि शरणं
स्वयं विन्दन्त्येते परमममृतं तत्र निरताः ॥५-१०४॥

खण्डान्वय सहित अर्थः—यहाँ कोई प्रश्न करता है कि शुभ क्रिया तथा अशुभ क्रिया सर्व निषिद्ध की, मुनीश्वर किसे अवलम्बते है ? उसका ऐसा समाधान किया जाता है—"सर्वस्मिन् सुकृत-दुरिते कर्मणि निषिद्धे" [सर्वस्मिन्] आमूल चूल [सुकृत] व्रत संयम तपरूप क्रिया अथवा शुभोपयोगरूप परिणाम [दुरिते] विषय-कषायरूप क्रिया अथवा अशुभोपयोगरूप सक्लेश परिणाम, ऐसी [कर्मणि] करतूतिरूप [निषिद्धे] मोक्षमार्ग नही ऐसा मानते हुए, "किल नैष्कर्म्ये प्रवृत्ते" [किल] निश्चयसे [नैष्कर्म्ये]

सूक्ष्म स्थूलरूप अन्तर्जल्पबहिर्जल्परूप समस्त विकल्पोसे रहित निर्विकल्प शुद्ध चैतन्यमात्र-प्रकाशरूप वस्तु मोक्षमार्ग ऐसा [**प्रवृत्ते**] एकरूप ऐसा ही है ऐसा निश्चयसे ठहराते हुए, "खलु मुनय अशरणा न सन्ति" [**खलु**] निश्चयसे [**मनुयः**] ससार शरीर भोगसे विरक्त होकर धरा है यतिपना जिन्होने, वे [**अशरणाः न सन्ति**] आलम्बनके बिना शून्य मन ऐसे तो नही हैं। तो कैसा है ? "तदा हि एषा ज्ञान स्वय शरण" [**तदा**] जिस कालमे ऐसी प्रतीति आती है कि अशुभ क्रिया मोक्षमार्ग नही, शुभ क्रिया भी मोक्षमार्ग नही, उस कालमे [**हि**] निश्चयसे [**एषां**] मुनीश्वरोको [**ज्ञानं स्वयं शरणं**] शुद्ध स्वरूपका अनुभव सहज ही आलम्बन है। कैसा है ज्ञान ? "ज्ञाने प्रतिचरितं" जो वाह्य-रूप परिणमा था वही अपने शुद्धस्वरूप परिणमा है। शुद्ध स्वरूपका अनुभव होने पर कुछ विशेष भी है, कहते है—"एते तत्र निरताः परम अमृत विन्दन्ति" [**एते**] विद्यमान जो सम्यग्दृष्टि मुनीश्वर [**तत्र**] शुद्ध स्वरूपके अनुभवमे [**निरताः**] मग्न है वे [**परमं अमृतं**] सर्वोत्कृष्ट अतीन्द्रिय सुखको [**विन्दन्ति**] आस्वादतें है। भावार्थ इस प्रकार है—शुभ अशुभ क्रियामे मग्न होता हुआ जीव विकल्पी है, इससे दुखी है। क्रियासंस्कार छूटकर शुद्धस्वरूपका अनुभव होते ही जीव निर्विकल्प है, इससे सुखी है ॥५-१०४॥

(शिखरिणी)

यदेतद् ज्ञानात्मा ध्रुवमचलमाभाति भवनं
शिवस्यायं हेतुः स्वयमपि यतस्तच्छिव इति ।
अतोऽन्यद्बन्धस्य स्वयमपि यतो बन्ध इति तत्
ततो ज्ञानात्मत्वं भवनमनुभूतिर्हि विहितम् ॥६-१०५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"यत् एतत् ज्ञानात्मा भवन ध्रुव अचल आभाति अयं शिवस्य हेतु." [**यत् एतत्**] जो कोई [**ज्ञानात्मा**] चेतनालक्षण ऐसा [**भवनं**] सत्त्वस्वरूप वस्तु [**ध्रुवं अचलं**] निश्चयसे स्थिर होकर [**आभाति**] प्रत्यक्षरूपसे स्वरूपका आस्वादक कहा है [**अयं**] यही [**शिवस्य हेतुः**] मोक्षका मार्ग है। किस कारणसे ? "यतः स्वय अपि तत् शिव इति" [**यतः**] जिस कारण [**स्वयं अपि**] अपने आप भी [**तच्छिव इति**] मोक्षरूप है। भावार्थ इस प्रकार है—जीवका स्वरूप सदा कर्मसे मुक्त है, उसको अनुभवने पर मोक्ष होता है ऐसा घटता है, विरुद्ध तो नही। "अत अन्यत् बन्धस्य हेतु" [**अतः**] शुद्धस्वरूपका अनुभव मोक्षमार्ग है, इसके विना [**अन्यत्**] जो कुछ है शुभ

क्रियारूप, अशुभ क्रियारूप अनेक प्रकार [बन्धस्य हेतुः] वह सब बन्धका मार्ग है, "यत स्वय अपि बन्ध इति" [यतः] जिस कारण [स्वयं अपि] अपने आप भी [बन्ध इति] सर्व ही बन्धरूप है। "तत तत् ज्ञानात्मा स्व भवन विहित हि अनुभूति" [ततः] तिस कारण [तत्] पूर्वोक्त [ज्ञानात्मा] चेतनालक्षण, ऐसा है [स्वं भवनं] अपना जीवका सत्त्व [विहितम्] मोक्षमार्ग है, [हि] निश्चयसे [अनुभूतिः] प्रत्यक्षपने आस्वाद किया होता हुआ ॥६-१०५॥

(अनुष्टुप्)

वृत्तं ज्ञानस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं सदा।
एकद्रव्यस्वभावत्वान्मोक्षहेतुस्तदेव तत् ॥७-१०६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ज्ञानस्वभावेन वृत्त तत् तत् मोक्षहेतु. एव" [ज्ञान] शुद्ध वस्तुमात्र, उसकी [स्वभावेन] स्वरूपनिष्पत्ति, उससे जो [वृत्तं] स्वरूपाचरण चारित्र [तत् तत् मोक्षहेतुः] वही वही मोक्षमार्ग है, [एव] इस बातमे सन्देह नही। भावार्थ इस प्रकार है—कोई जानेगा कि स्वरूपाचरण चारित्र ऐसा कहा जाता है जो आत्माके शुद्ध स्वरूपको विचारे अथवा चिन्तवे अथवा एकाग्ररूपसे मग्न होकर अनुभवे। सो ऐसा तो नही, उसके करने पर बन्ध होता है, क्योकि ऐसा तो स्वरूपाचरण चारित्र नही है। तो स्वरूपाचरण चारित्र कैसा है ? जिस प्रकार पन्ना [सुवर्णपत्र] पकानेसे सुवर्णमेकी कालिमा जाती है, सुवर्ण शुद्ध होता है, उसी प्रकार जीव द्रव्यके अनादिसे अशुद्ध चेतनारूप रागादि परिणमन था, वह जाता है, शुद्ध स्वरूपमात्र शुद्धचेतनारूप जीवद्रव्य परिणमता है, उसका नाम स्वरूपाचरण चारित्र कहा जाता है, ऐसा मोक्ष-मार्ग है। कुछ विशेष—वह शुद्धपरिणमन जहा तक सर्वोत्कृष्ट होता है वहा तक शुद्धपनाके अनन्त भेद है। वे भेद जातिभेदकी अपेक्षा तो नही। बहुत शुद्धता, उससे बहुत, उससे बहुत ऐसा थोडा-बहुतरूप भेद है। भावार्थ इस प्रकार है—जितनी शुद्धता होती है उतनी ही मोक्षका कारण है। जब सर्वथा शुद्धता होती है तब सकल कर्मक्षय-लक्षण मोक्षपदकी प्राप्ति होती है। किस कारण ? "सदा ज्ञानस्य भवने एकद्रव्यस्व-भावत्वात्" [सदा] तीनो कालोंमे ही [ज्ञानस्य भवने] ऐसा है जो शुद्धचेतना-परिणमनरूप स्वरूपाचरणचारित्र वह आत्मद्रव्यका निजस्वरूप है, शुभाशुभ क्रियाके समान उपाधिरूप नही है, इस कारण [एकद्रव्यस्वभावत्वात्] एक जीवद्रव्यस्वरूप है। भावार्थ इस प्रकार है—कि जो गुण-गुणीरूप भेद करते हैं तो ऐसा भेद होता है कि

जीवका शुद्धपना गुण; जो वस्तुमात्र अनुभव करते है तो ऐसा भेद भी मिटता है, क्योंकि शुद्धपना तथा जीवद्रव्य वस्तु तो एक सत्ता है, ऐसा शुद्धपना मोक्षकारण है, इसके बिना जो कुछ करतूतिरूप है वह समस्त बन्धका कारण है ।।७-१०६।।

(अनुष्टुप्)

वृत्तं कर्मस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं न हि ।
द्रव्यान्तरस्वभावत्वान्मोक्षहेतुर्न कर्म तत् ।।८-१०७।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"कर्मस्वभावेन वृत्तं ज्ञानस्य भवनं न हि" [**कर्म-स्वभावेन**] जितना शुभ क्रियारूप अथवा अशुभ क्रियारूप आचरणलक्षण चारित्र उसके स्वभावसे अर्थात् उसरूप जो [**वृत्तं**] चारित्र वह [**ज्ञानस्य**] शुद्ध चैतन्यवस्तुका [**भवनं**] शुद्धस्वरूपपरिणमन [**न हि**] नही होता ऐसा निश्चय है । भावार्थ इस प्रकार है—जितना शुभ-अशुभक्रियारूप आचरण अथवा बाह्यरूप वक्तव्य अथवा सूक्ष्म अन्तरंगरूप चिन्तवन अभिलाष स्मरण इत्यादि समस्त अशुद्धत्वरूप परिणमन है, शुद्ध परिणमन नही; इसलिए बन्धका कारण है, मोक्षका कारण नही है । इस कारण जिस प्रकार कामलाका नाहर (सिंह) कहनेके लिए नाहर है उसी प्रकार आचरणरूप (क्रियारूप) चारित्र कहनेके लिए चारित्र है, परन्तु चारित्र नही है, निःसन्देहरूपसे ऐसा जानो । "तत् कर्म मोक्षहेतुः न" [**तत्**] इस कारण [**कर्म**] बाह्य-आभ्यन्तररूप सूक्ष्म-स्थूलरूप जितना आचरणरूप (चारित्र) है वह [**मोक्षहेतुः न**] कर्मक्षपणका कारण नही, बन्धका कारण है । किस कारणसे ? "द्रव्यान्तरस्वभावत्वात्" [**द्रव्या-न्तर**] आत्मद्रव्यसे भिन्न पुद्गलद्रव्य, उसके [**स्वभावत्वात्**] स्वभावरूप होनेसे, अर्थात् यह सब पुद्गल द्रव्यके उदयका कार्य है, जीवका स्वरूप नही है । भावार्थ इस प्रकार है—जो शुभ-अशुभ क्रिया, सूक्ष्म-स्थूल अन्तर्जल्प बहिःजल्परूप जितना विकल्परूप आचरण है वह सब कर्मका उदयरूप परिणमन है, जीवका शुद्ध परिणमन नही है, इसलिए समस्त ही आचरण मोक्षका कारण नही है, बन्धका कारण है ।। ८-१०७ ।।

(अनुष्टुप्)

मोक्षहेतुतिरोधानाद्बन्धत्वात्स्वयमेव च ।
मोक्षहेतुतिरोधायिभावत्वात्तन्निषिध्यते ।।९-१०८।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—यहाँ कोई जानेगा कि शुभ-अशुभ क्रियारूप जो आचरणरूप चारित्र है सो करनेयोग्य नही है उसी प्रकार वर्जन करनेयोग्य भी नही है ? उत्तर इस प्रकार है—वर्जन करने योग्य है । कारण कि व्यवहार चारित्र होता हुआ दुष्ट है, अनिष्ट है, घातक है, इसलिए विषय-कषायके समान क्रियारूप चारित्र निषिद्ध है ऐसा कहते हैं—"तत् निषिध्यते" [तत्] शुभ-अशुभरूप करतूति [निषिध्यते] तजनीय है । कैसा होनेसे निषिद्ध है ? "मोक्षहेतुतिरोधानात्" [मोक्ष] निष्कर्म अवस्था, उसका [हेतु] कारण है जीवका शुद्धरूप परिणमन, उसका [तिरोधानात्] घातक ऐसा है । इसलिए करतूति निषिद्ध है । और कैसा होनेसे ? "स्वय एव बन्धत्वात्" अपने आप भी वन्धरूप है । भावार्थ इस प्रकार है—जितना शुभ अशुभ आचरण है वह सव कर्मके उदयके कारण अशुद्धरूप है, इसलिए त्याज्य है, उपादेय नही है । और कैसा होनेसे ? "मोक्षहेतुतिरोधायिभावत्वात्" [मोक्ष] सकल कर्मक्षयलक्षण परमात्म-पद, उसका [हेतु] जीवका गुण जो शुद्ध चेतनारूप परिणमन उसका [तिरोधायि] घातनशील ऐसा है [भावत्वात्] सहज लक्षण जिसका, ऐसा है इसलिए कर्म निषिद्ध है । भावार्थ इस प्रकार है—जिस प्रकार पानी स्वरूपसे निर्मल है, कीचडके सयोगसे मैला होता है—पानीका शुद्धपना घाता जाता है, उसी प्रकार जीवद्रव्य स्वभावसे स्वच्छस्वरूप है—केवलज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यरूप है, वह स्वच्छपना विभावरूप अशुद्ध चेतनालक्षण मिथ्यात्व विषय-कषायरूप परिणामके कारण मिटा है । अशुद्ध परिणामका ऐसा ही स्वभाव है जो शुद्धपनाको मेटे, इसलिए समस्त कर्म निषिद्ध है । भावार्थ इस प्रकार है—कोई जीव क्रियारूप यतिपना पाते है, उस यतिपनेमे मग्न होते हैं—जो 'हमने मोक्षमार्ग पाया, जो कुछ करना था सो किया,' सो उन जीवोको समझाते है कि यतिपनाका भरोसा छोडकर शुद्ध चैतन्य स्वरूपको अनुभवो ॥९-१०८॥

(शार्दूलविक्रीडित)

संन्यस्तव्यमिदं समस्तमपि तत्कर्मैव मोक्षार्थिना
संन्यस्ते सति तत्र का किल कथा पुण्यस्य पापस्य वा ।
सम्यक्त्वादिनिजस्वभावभवनान्मोक्षस्य हेतुर्भवन्
नैष्कर्म्यप्रतिबद्धमुद्धतरसं ज्ञानं स्वयं धावति ॥१०-१०९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"मोक्षार्थिना तत् इद समस्त अपि कर्म सन्यस्तव्य" [मोक्षार्थिना] लकर्मक्षयलक्षण मोक्ष—अतीन्द्रिय पद, उसमे जो अनन्त

सुख उसको उपादेय अनुभवता है ऐसा है जो कोई जीव उसके द्वारा [तत् इदं] वही कर्म जो पहले ही कहा था [समस्तं अपि] जितना शुभ क्रियारूप अशुभ क्रियारूप, अन्तर्जल्परूप बहिर्जल्परूप इत्यादि करतूतिरूप [कर्म] क्रिया अथवा ज्ञानावरणादि पुद्गलका पिण्ड, अशुद्ध रागादिरूप जीवके परिणाम—ऐसा कर्म [संन्यस्तव्यं] जीवस्वरूपका घातक है ऐसा जानकर आमूलचूल त्याज्य है। "तत्र सन्यस्ते सति" उस समस्त ही कर्मका त्याग होनेपर "पुण्यस्य वा पापस्य वा का कथा" पुण्यका पापका कौन भेद रहा ? भावार्थ इस प्रकार है—समस्त कर्मजाति हेय है, पुण्य-पापके विवरणकी क्या बात रही। "किल" ऐसी बात निश्चयसे जानो, पुण्यकर्म भला ऐसी भ्रान्ति मत करो। "ज्ञान मोक्षस्य हेतु भवन् स्वय धावति" [ज्ञानं] आत्माका शुद्ध चेतनारूप परिणामन [मोक्षस्य] सकल कर्मक्षयलक्षण ऐसी अवस्थाका [हेतुः भवन्] कारण होता हुआ [स्वयं धावति] स्वयं दौडता है ऐसा सहज है। भावार्थ इस प्रकार है—जैसे सूर्यका प्रकाश होनेपर सहज ही अन्धकार मिटता है वैसे ही जीवके शुद्ध चेतनारूप परिणामने पर सहज ही समस्त विकल्प मिटते है, ज्ञानावरणादि कर्म अकर्म-रूप परिणमते है, रागादि अशुद्ध परिणाम मिटता है। कैसा है ज्ञान ? "नैष्कर्मप्रतिवद्ध" निर्विकल्पस्वरूप है। और कैसा है ? "उद्धतरस" प्रगटरूपसे चैतन्यस्वरूप है। कैसा होनेसे मोक्षका कारण होता है ? "सम्यक्त्वादिनिजस्वभावभवनात्" [सम्यक्त्व] जीवका गुण सम्यग्दर्शन [आदि] सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र ऐसे है जो [निजस्वभाव] जीवके क्षायिक गुण उनके [भवनात्] प्रगटपनेके कारण। भावार्थ इस प्रकार है—कोई आशका करेगा कि मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र इन तीनका मिला हुआ है, यहा ज्ञानमात्र मोक्षमार्ग कहा सो क्यो कहा ? उसका समाधान ऐसा है—शुद्धस्वरूप ज्ञानमे सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्र सहज ही गर्भित है, इसलिए दोप तो कुछ नही, गुण है ॥१०-१०६॥

(शार्दूलविक्रीडित)

यावत्पाकमुपैति कर्मविरतिर्ज्ञानस्य सम्यङ् न सा
कर्मज्ञानसमुच्चयोऽपिविहितस्तावन्न काचित्क्षतिः।
किंत्वत्रापि समुल्लसत्यवशतो यत्कर्म बन्धाय तन्
मोक्षाय स्थितमेकमेव परमं ज्ञानं विमुक्तं स्वतः ।११-११०।

खण्डान्वय सहित अर्थ—यहा कोई भ्रान्ति करेगा जो मिथ्यादृष्टिका यतिपना क्रियारूप है, सो बन्धका कारण है सम्यग्दृष्टिका है, जो यतिपना शुभ क्रियारूप, सो मोक्षका कारण है, कारण कि अनुभवज्ञान तथा दया, व्रत, तप, सयमरूप क्रिया दोनो मिलकर ज्ञानावरणादि कर्मका क्षय करते है । ऐसी प्रतीति कितने ही अज्ञानी जीव करते है । वहा समाधान ऐसा—जितनी शुभ अशुभ क्रिया, बहिर्जल्परूप विकल्प अथवा अन्तर्जल्परूप अथवा द्रव्योका विचाररूप अथवा शुद्ध स्वरूपका विचार इत्यादि समस्त कर्मबन्धका कारण है । ऐसी क्रियाका ऐसा ही स्वभाव है । सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टिका ऐसा भेद तो कुछ नही । ऐसी करतूतिसे ऐसा बन्ध है । शुद्धस्वरूप परिणमनमात्रसे मोक्ष है । यद्यपि एक ही कालमे सम्यग्दृष्टि जीवके शुद्ध ज्ञान भी है, क्रियारूप परिणाम भी है । तथापि क्रियारूप है जो परिणाम उससे अकेला बन्ध होता है, कर्मका क्षय एक अशमात्र भी नही होता है । ऐसा वस्तुका स्वरूप, सहारा किसका ? उसी समय शुद्ध-स्वरूप अनुभव ज्ञान भी है । उसी समय ज्ञानसे कर्मक्षय होता है, एक अशमात्र भी बध नही होता है । वस्तुका ऐसा ही स्वरूप है । ऐसा जिस प्रकार है उस प्रकार कहते हैं— "तावत्कर्मज्ञानसमुच्चय अपि विहित:" [**तावत्**] तब तक [**कर्म**] क्रियारूप परिणाम [**ज्ञान**] आत्मद्रव्यका शुद्धस्वरूप परिणमन, उनका [**समुच्चयः**] एक जीवमे एक ही काल अस्तित्वपना है, [**अपि विहितः**] ऐसा भी है, परन्तु एक विशेष—"काचित् क्षति न" [**काचित्**] कोई भी [**क्षतिः**] हानि [**न**] नही है । भावार्थ इस प्रकार है—एक जीवमे एक ही काल ज्ञान, क्रिया दोनो कैसे होते है ? समाधान ऐसा—विरुद्ध तो कुछ नही, कितने ही काल तक दोनो होते है, ऐसा ही वस्तुका परिणाम है, परन्तु विरोधीके समान दिखता है, परन्तु अपने अपने स्वरूप है, विरोध तो नही करता है । उतने काल तक जिस प्रकार है उस प्रकार कहते है—"यावत् ज्ञानस्य सा कर्मविरति सम्यक् पाक न उपैति" [**यावत्**] जितने काल [**ज्ञानस्य**] आत्माका मिथ्यात्वरूप विभावपरिणाम मिटा है, आत्मद्रव्य शुद्ध हुआ है, उसकी [**सा**] पूर्वोक्त [**कर्म**] क्रिया, उसका [**विरतिः**] त्याग [**सम्यक् पाकं न उपैति**] बराबर परिपक्वताको नही पाता है अर्थात् क्रियाका मूलसे विनाश नही हुआ है । भावार्थ इस प्रकार है—जब तक अशुद्ध परिणमन है तब तक जीवका विभाव परिणमनरूप है । उस विभाव परिणमनका अन्तरग निमित्त है, बहिरग निमित्त है । विवरण—अन्तरग निमित्त जीवकी विभावरूप परिणमनशक्ति, बहिरग निमित्त मोहनीय कर्मरूप परिणमा है

पुद्गलपिण्डका उदय। सो मोहनीयकर्म दो प्रकारका है:— एक मिथ्यात्वरूप है, दूसरा चारित्रमोहरूप है। जीवका विभाव परिणाम भी दो प्रकारका है:—जीवका एक सम्यक्त्व गुण है वही विभावरूप होकर मिथ्यात्वरूप परिणमा है। उसके प्रति वहिरग निमित्त मिथ्यात्वरूप परिणमा है पुद्गलपिण्डका उदय, जीवका एक चारित्रगुण है, वह विभावरूप परिणमता हुआ विषय कषायलक्षण चारित्रमोहरूप परिणमा है, उसके प्रति बहिरग निमित्त है चारित्रमोहरूप परिणमा पुद्गलपिण्डका उदय। विशेप ऐसा—उपशमका, क्षपणका क्रम इस प्रकार है, पहले मिथ्यात्व कर्मका उपशम होता है अथवा क्षपण होता है, उसके बाद चारित्रमोहका उपशम होता है अथवा क्षपण होता है। इसलिए समाधान ऐसा—किसी आसन्न भव्य जीवके काललब्धि प्राप्त होनेसे मिथ्यात्व-रूप पुद्गलपिण्ड—कर्म उपशमता है अथवा क्षपण होता है। ऐसा होने पर जीव सम्यक्त्वगुणरूप परिणमता है, वह परिणमन शुद्धतारूप है। वही जीव जब तक क्षपक-श्रेणिपर चढेगा तब तक चारित्रमोह कर्मका उदय है। उस उदयके रहते हुए जीव भी विषय कषायरूप परिणमता है, वह परिणमन रागरूप है, अशुद्धरूप है, इस कारण किसी कालमे जीवका शुद्धपना अशुद्धपना एक ही समय घटता है, विरुद्ध नही। "किन्तु" कुछ विशेष है, वह विशेष जिस प्रकार है उस प्रकार कहते है—"अत्र अपि" एक ही जीवके एक ही काल शुद्धपना अशुद्धपना यद्यपि होता है तथापि अपना अपना कार्य करते है। "यत् कर्म अवशत वन्धाय समुल्लसति" [यत्] जितनी [कर्म] द्रव्यरूप भावरूप—अन्तर्जल्प-बहिर्जल्परूप—सूक्ष्म-स्थूलरूप क्रिया, [**अवशतः**] सम्यग्दृष्टि पुरुष सर्वथा क्रियासे विरक्त है पर चारित्रमोह कर्मके उदयमे बलात्कार होती है ऐसी [**वन्धाय समुल्लसति**] जितनी क्रिया है उतनी—ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध करती है, सवर निर्जरा अशमात्र भी नही करती है। "तत् एकं ज्ञान मोक्षाय स्थित" [तत्] पूर्वोक्त [**एकं ज्ञानं**] एक शुद्ध चैतन्यप्रकाश [**मोक्षाय स्थितं**] ज्ञानावरणादि कर्मक्षयका निमित्त है। भावार्थ इस प्रकार है—एक जीवमे शुद्धपना अशुद्धपना एक ही काल होता है, परन्तु जितना अश शुद्धपना है उतना अंश कर्मक्षपण है, जितना अश अशुद्धपना है उतना अश कर्मवन्ध होता है। एक ही काल दोनो कार्य होते है। "एव" ऐसा ही है, सन्देह करना नही। कैसा है शुद्धज्ञान? "परम" सर्वोत्कृष्ट है—पूज्य है। और कैसा है? "स्वत विमुक्त" तीनो कालमे समस्त पर द्रव्यसे भिन्न है ॥ ११–११० ॥

(शार्दूलविक्रीडित)

मग्नाः कर्मनयावलम्बनपरा ज्ञानं न जानन्तियन्
मग्ना ज्ञाननयैषिणोऽपि यदतिस्वच्छन्दमन्दोद्यमाः ।
विश्वस्योपरि ते तरन्ति सततं ज्ञानं भवन्तः स्वयं
ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वशं यान्ति प्रमादस्य च ॥१२-१११॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"कर्मनयावलम्वनपरा मग्ना" [कर्म] अनेक प्रकार की क्रिया, ऐसा है [नय] पक्षपात, उसका [अवलम्बन] क्रिया मोक्षमार्ग है ऐसा जानकर क्रियाका प्रतिपाल, उसमे [पराः] तत्पर है जो कोई अज्ञानी जीव वे भी [मग्नाः] धारमे डूवे है । भावार्थ इस प्रकार है—ससारमे रुलेगा, मोक्षका अधिकारी नही है । किस कारणसे डूवे है ? "यत् ज्ञान न जानन्ति" [यत्] जिस कारण [ज्ञानं] शुद्ध चैतन्यवस्तुका [न जानन्ति] प्रत्यक्षरूपसे आस्वाद करनेको समर्थ नही हैं, क्रिया-मात्र मोक्षमार्ग ऐसा जानकर क्रिया करनेको तत्पर हैं । "ज्ञाननयैषिण अपि मग्ना" [ज्ञान] शुद्ध चैतन्यप्रकाश, उसका [नय] पक्षपात, उसके [एषिणः] अभिलाषी है । भावार्थ इस प्रकार है—शुद्ध स्वरूपका अनुभव तो नही है, परन्तु पक्षमात्र वोलते है । [अपि] ऐसे भी जीव [मग्नाः] ससारमे डूवे ही है । कैसे होकर डूवे ही हैं ? "यत् अतिस्वच्छन्दमन्दोद्यमा" [यत्] जिस कारण [अतिस्वच्छन्द] अति ही स्वेच्छाचारपना, ऐसा है [मन्दोद्यमाः] शुद्ध चैतन्यस्वरूपका विचारमात्र भी नही करते है । ऐसे जो कोई हैं उन्हे मिथ्यादृष्टि जानना । यहा कोई आशका करता है कि शुद्ध स्वरूपका अनुभव मोक्षमार्ग ऐसी प्रतीति करने पर मिथ्यादृष्टिपना क्यो होता है ? समाधान इस प्रकार है—वस्तुका स्वरूप इस प्रकार है कि जिस काल शुद्ध स्वरूपका अनुभव है उस काल अशुद्धतारूप है जितनी भाव द्रव्यरूप क्रिया उतनी सहज ही मिटती है । मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा मानता है कि जितनी क्रिया जैसी है वैसी ही रहती है, शुद्धस्वरूप अनुभव मोक्षमार्ग है, सो वस्तुका स्वरूप ऐसा तो नही है । इससे जो ऐसा मानता है वह जीव मिथ्यादृष्टि है, वचनमात्रसे कहता है कि 'शुद्धस्वरूप अनुभव मोक्षमार्ग है, ऐसा कहनेसे कार्यसिद्धि तो कुछ नही है । "ते विश्वस्य उपरि तरन्ति" [ते] ऐसे जीव सम्यग्दृष्टि है जो कोई, वे [विश्वस्य उपरि] कहे है जो दोनो जातिके जीव उन दोनोके ऊपर होकर, [तरन्ति] सकल कर्मोका क्षय कर मोक्षपदको प्राप्त होते हैं । कैसे हैं वे ? "ये सतत स्वय ज्ञान भवन्त कर्म न कुर्वन्ति प्रमादस्य वश जातु न यान्ति" [ये] जो कोई

निकट संसारी सम्यग्दृष्टि जीव [सततं] निरन्तर [स्वयं ज्ञानं] शुद्ध ज्ञानस्वरूप [भवन्तः] परिणमते हैं, [कर्म न कुर्वन्ति] अनेक प्रकारकी क्रियाको मोक्षमार्ग जानकर नही करते हैं, भावार्थ इस प्रकार है—जिस प्रकार कर्मके उदयमे शरीर विद्यमान है पर हेयरूप जानते हैं, उसी प्रकार अनेक प्रकारकी क्रियाये विद्यमान हैं पर हेयरूप जानते हैं। [प्रमादस्य वशं जातु न यान्ति] 'क्रिया तो कुछ नही'—ऐसा जानकर विषयी असंयमी भी कदाचित् नही होते, क्योकि असयमका कारण तीव्र संक्लेश परिणाम है सो तो संक्लेश मूल ही से गया है। ऐसे जो सम्यग्दृष्टि जीव वे जीव तत्काल मात्र मोक्षपदको पाते है ।।१२-१११।।

(मन्दाक्रान्ता)

भेदोन्मादं भ्रमरसभरान्नाटयत्पीतमोहं
मूलोन्मूलं सकलमपि तत्कर्म कृत्वा बलेन ।
हेलोन्मीलत्परमकलया सार्धमारब्धकेलि
ज्ञानज्योतिःकवलिततमःप्रोज्जजृम्भे भरेण ।।१३-११२।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ज्ञानज्योति· भरेण प्रोज्जजृम्भे" [ज्ञानज्योतिः] शुद्ध स्वरूपका प्रकाश [भरेण] अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्यके द्वारा [प्रोज्जजृम्भे] प्रगट हुआ। कैसा है ? "हेलोन्मीलत्परमकलया सार्द्ध आरब्धकेलि" [हेला] सहजरूपसे [उन्मीलत्] प्रगट हुए [परमकलया] निरन्तरपने अतीन्द्रिय सुखप्रवाहके [सार्द्ध] साथ [आरब्धकेलि] प्राप्त किया है परिणमन जिसने, ऐसा है। और कैसा है ? "कवलिततम" [कवलित] दूर किया है [तमः] मिथ्यात्वअन्धकार जिसने, ऐसा है। ऐसा जिस प्रकार हुआ है उस प्रकार कहते है—"तत्कर्म सकलमपि वलेन मूलोन्मूलं कृत्वा" [तत्] कही है अनेक प्रकार [कर्म] भावरूप अथवा द्रव्यरूप क्रिया–[सकलं अपि] पापरूप अथवा पुण्यरूप–(उसे) [बलेन] बलजोरीसे [मूलोन्मूलं कृत्वा] जितनी क्रिया है वह सब मोक्षमार्ग नही है ऐसा जान समस्त क्रियामे ममत्वका त्याग कर शुद्ध ज्ञान मोक्षमार्ग है ऐसा सिद्धान्त सिद्ध हुआ। कैसा है कर्म ? "भेदोन्मादं" [भेद] शुभ क्रिया मोक्षमार्ग ऐसा पक्षपातरूप भेद (अन्तर) उससे [उन्मादं] हुआ है गहिलपना (पागलपना) जिसमे, ऐसा है। और कैसा है ? "पीतमोह" [पीत]

निगला है [मोहं] विपरीतपना जिसने, ऐसा है। जैसे कोई धतूराका पान कर गहिल होता है ऐसा है जो पुण्यकर्मको भला मानता है। और कैसा है ? "भ्रमरसभरात् नाटयत्" [भ्रम] धोखा, उसका [रस] अमल, उसका [भरात्] अत्यन्त चढना, उससे [नाटयत्] नाचता है। भावार्थ इस प्रकार है—जिस प्रकार कोई धतूरा पीकर सुध जानेपर नाचता है उसी प्रकार मिथ्यात्वकर्मके उदयमे शुद्ध स्वरूपके अनुभवसे भ्रष्ट है। शुभ कर्मके उदयसे जो देव आदि पदवी, उसमे रजायमान होता है कि मैं देव, मेरे ऐसी विभूति, सो तो पुण्यकर्मके उदयसे, ऐसा मानकर बार-बार रजायमान होता है ॥१३–११२॥



[५]

आस्रव-अधिकार

(द्रुतविलम्वित)

अथ महामदनिर्भरमन्थरं
समररंगपरागतमास्रवम् ।
अयमुदारगंभीरमहोदयो
जयति दुर्जयबोधधनुर्धरः ॥१-११३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अथ अयं दुर्जयवोधधनुर्धर आस्रवं जयति" [अथ] यहाँसे लेकर [अयं दुर्जय] यह अखण्डित प्रताप, ऐसा [बोध] शुद्ध स्वरूप अनुभव, ऐसा है [धनुर्धरः] महायोधा, वह [आस्रवं] अशुद्ध रागादि परिणामलक्षण आस्रव, उसको [जयति] मेटता है । भावार्थ इस प्रकार है—यहाँसे लेकर आस्रवका स्वरूप कहते है। कैसा है ज्ञान योद्धा ? "उदार-गम्भीरमहोदय" [उदार] शाश्वत ऐसा है [गम्भीर] अनन्त शक्ति विराजमान, ऐसा है [महोदयः] स्वरूप जिसका ऐसा है। कैसा है आस्रव ? "महामदनिर्भरमन्थरं" [महामद] समस्त संसारी जीवराशि आस्रव-के आधीन है, उससे हुआ है गर्व-अभिमान, उससे [निर्भर] मग्न हुआ है [मन्थरं] मतवालाकी भाँति, ऐसा है। "समररङ्गपरागत" [समर] संग्राम ऐसी ही [रङ्ग] भूमि, उसमें [परागतं] सन्मुख आया है। भावार्थ इस प्रकार है—जिस प्रकार प्रकाश अन्धकारका परस्पर विरोध है उसी प्रकार शुद्ध ज्ञान और आस्रवको परस्पर विरोध है ॥१-११३॥

(शालिनी)

भावो रागद्वेषमोहैर्विना यो
जीवस्य स्याद् ज्ञाननिर्वृत्त एव ।

रुन्धन् सर्वान् द्रव्यकर्मास्रवौघान्
एषोऽभावःसर्वभावास्रवाणाम् ॥२-११४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"जीवस्य य भाव ज्ञाननिर्वृत्त एव स्यात्" [**जीवस्य**] काललब्धि प्राप्त होनेसे प्रगट हुआ है सम्यक्त्वगुण जिसका ऐसा है जो कोई जीव, उसका [**यः भावः**] जो कोई सम्यक्त्वपूर्वक शुद्धस्वरूपअनुभवरूप परिणाम। ऐसा परिणाम कैसा होता है ? [**ज्ञाननिर्वृत्त एव स्यात्**] शुद्ध ज्ञानचेतनामात्र है। उस कारणसे "एष" ऐसा है जो शुद्ध चेतनामात्र परिणाम, वह "सर्वभावास्रवाणा अभाव" [**सर्व**] असख्यात लोकमात्र जितने [**भाव**] अशुद्ध चेतनारूप राग, द्वेष, मोह आदि जीवके विभावपरिणाम होते हैं जो [**आस्रवाणां**] ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्मके आगमनको निमित्तमात्र है उनके [**अभावः**] मूलोन्मूल विनाश है। भावार्थ इस प्रकार है—जिस काल शुद्ध चैतन्यवस्तुकी प्राप्ति होती है उस काल मिथ्यात्व राग द्वेषरूप जीवका विभावपरिणाम मिटता है, इसलिए एक ही काल है, समयका अन्तर नही है। कैसा है शुद्ध भाव ? "रागद्वेष-मोहैः विना" रागादि परिणाम रहित है। शुद्ध चेतनामात्र भाव है। और कैसा है ? "द्रव्य-कर्मास्रवौघान् सर्वान् रुन्धन्" [**द्रव्यकर्म**] ज्ञानावरणादि कर्मपर्यायरूप परिणमा है पुद्गलपिण्ड, उसका [**आस्रव**] होता है धाराप्रवाहरूप समय-समय आत्मप्रदेशोके साथ एकक्षेत्रावगाह, उसका [**ओघ**] समूह। भावार्थ इस प्रकार है—ज्ञानावरणादिरूप कर्मवर्गणा परिणमती है, उसके भेद असख्यात लोकमात्र है। उसके [**सर्वान्**] जितने धारारूप आते हैं कर्म उन सबको [**रुन्धन्**] रोकता हुआ। भावार्थ इस प्रकार है—जो कोई ऐसा मानेगा कि जीवका शुद्ध भाव होता हुआ रागादि अशुद्ध परिणामका नाश करता है, आस्रव जैसा ही होता है वैसा ही होता है सो ऐसा तो नही, जैसा कहते है वैसा है—जीवके शुद्ध भावरूप परिणमने पर अवश्य ही अशुद्धभाव मिटता है। अशुद्ध भावके मिटने पर अवश्य ही द्रव्यकर्मरूप आस्रव मिटता है, इसलिये शुद्ध भाव उपादेय है, अन्य समस्त विकल्प हेय है ॥२-११४॥

(उपजाति)

भावास्रवाभावमयं प्रपन्नो
द्रव्यास्रवेभ्यः स्वत एव भिन्नः।
ज्ञानी सदा ज्ञानमयैकभावो
निरास्रवो ज्ञायक एक एव ॥३-११५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अय ज्ञानी निरास्रव एव" [**अयं**] द्रव्यरूप विद्यमान है वह [**ज्ञानी**] सम्यग्दृष्टि जीव [**निरास्रवः एव**] आस्रवसे रहित है। भावार्थ इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि जीवोको नौध कर (समझ पूर्वक) विचारने पर आस्रव घटता नही। कैसा है ज्ञानी ? "एक." रागादि अशुद्ध परिणामसे रहित है, शुद्धस्वरूप परिणमा है। और कैसा है ? "ज्ञायक" स्वद्रव्यस्वरूप परद्रव्यस्वरूप समस्त ज्ञेय वस्तुको जाननेके लिए समर्थ है। भावार्थ इस प्रकार है—ज्ञायकमात्र है, रागादि अशुद्धरूप नही है। और कैसा है ? "सदा ज्ञानमयैकभाव" [**सदा**] सर्व काल धाराप्रवाहरूप [**ज्ञानमय**] चेतनरूप ऐसा है [**एकभावः**] एक परिणाम जिसका, ऐसा है, भावार्थ इस प्रकार है—जितने विकल्प है वे सब मिथ्या। ज्ञानमात्र वस्तुका स्वरूप था सो अविनश्वर रहा। निरास्रवपना सम्यग्दृष्टि जीवको जिस प्रकार घटता है उस प्रकार कहते है—"भावास्रवाभाव प्रपन्न" [**भावास्रव**] मिथ्यात्व राग द्वेषरूप अशुद्ध चेतनापरिणाम, उसका [**अभाव**] विनाश, उसको [**प्रपन्नः**] प्राप्त हुआ है। भावार्थ इस प्रकार है—अनन्त कालसे लेकर जीव मिथ्यादृष्टि होता हुआ मिथ्यात्व, राग, द्वेषरूप परिणमता था, उसका नाम आस्रव है। सो तो काललब्धि प्राप्त होने पर वही जीव सम्यक्त्व पर्यायरूप परिणमा, शुद्धतारूप परिणमा, अशुद्ध परिणाम मिटा इसलिए, भावास्रवसे तो इस प्रकार रहित हुआ। "द्रव्यास्रवेभ्यः स्वत एव भिन्न." [**द्रव्यास्रवेभ्यः**] ज्ञानावरणादि कर्म पर्यायरूप जीवके प्रदेशोमे बैठे है पुद्गलपिण्ड, उनसे [**स्वतः**] स्वभावसे [**भिन्नः एव**] सर्व काल निराला ही है। भावार्थ इस प्रकार है—आस्रव दो प्रकारका है। विवरण—एक द्रव्यास्रव है, एक भावास्रव है। द्रव्यास्रव कहने पर कर्मरूप बैठे है आत्माके प्रदेशोमे पुद्गलपिण्ड, ऐसे द्रव्यास्रवसे जीव स्वभाव ही से रहित है। यद्यपि जीवके प्रदेश कर्म पुद्गलपिण्डके प्रदेश एक ही क्षेत्रमे रहते है तथापि परस्पर एक द्रव्यरूप नही होते है, अपने अपने द्रव्य गुण पर्यायरूप रहते है। इसलिये पुद्गलपिण्डसे जीव भिन्न है। भावास्रव कहने पर मोह राग द्वेषरूप विभाव अशुद्धचेतन परिणाम सो ऐसा परिणाम यद्यपि जीवके मिथ्यादृष्टि अवस्थामे विद्यमान ही था तथापि सम्यक्त्वरूप परिणमने पर अशुद्ध परिणाम मिटा। इस कारण सम्यग्दृष्टि जीव भावास्रवसे रहित है। इससे ऐसा अर्थ निपजा कि सम्यग्दृष्टि जीव निरास्रव है ॥३-११५॥

और सम्यग्दृष्टि जीव जिस प्रकार निरास्रव है उस प्रकार कहते है—

(शार्दूलविक्रीडित)

सन्न्यस्यन्निजबुद्धिपूर्वमनिशं रागं समग्रं स्वयं
वारंवारमबुद्धिपूर्वमपि तं जेतुं स्वशक्तिं स्पृशन् ।
उच्छिन्दन्परवृत्तिमेव सकलां ज्ञानस्य पूर्णो भवन्
आत्मा नित्यनिरास्रवो भवति हि ज्ञानी यदा स्यात्तदा ॥४-११६॥

खण्डान्वयसहित अर्थ—"आत्मा यदा ज्ञानी स्यात् तदा नित्यनिरास्रवःभवति" [आत्मा] जीवद्रव्य [यदा] जिसी काल [ज्ञानी स्यात्] अनत कालसे विभाव मिथ्यात्वभावरूप परिणमा था सो निकट सामग्री पाकर सहज ही विभाव परिणाम छूट जाता है, स्वभाव सम्यक्त्वरूप परिणमता है । ऐसा कोई जीव होता है । [तदा] उस कालसे लेकर पूरे आगामी कालमे [नित्यनिरास्रवः] सर्वथा सर्व काल सम्यग्दृष्टि जीव आस्रवसे रहित [भवति] होता है । भावार्थ इस प्रकार है—कोई सदेह करेगा कि सम्यग्दृष्टि आस्रव सहित है कि आस्रव रहित हैं ? समाधान ऐसा कि आस्रवसे रहित है । क्या करता हुआ निरास्रव है ? "निजबुद्धिपूर्वं राग समग्र अनिश स्वयं सन्न्यस्यन्" [निज] अपने [बुद्धि] मनको [पूर्वं] आलम्बन कर होता है जितना मोह राग द्वेष-रूप अशुद्ध परिणाम ऐसा जो [रागं] पर द्रव्यके साथ रजित परिणाम, जो [समग्रं] असख्यात लोकमात्र भेदरूप है, उसे [अनिशं] सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके कालसे लेकर आगामी सर्व कालमे [स्वयं] सहज ही [सन्न्यस्यन्] छोडता हुआ । भावार्थ इस प्रकार है—नाना प्रकारके कर्मके उदयमे नाना प्रकारकी ससार-शरीर-भोग सामग्री होती है । इस समस्त सामग्रीको भोगता हुआ मैं देव हूँ, मैं मनुष्य हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं दु खी हूँ, इत्यादिरूप रजायमान नही होता । जानता है—मैं चेतनामात्र शुद्धस्वरूप हूँ, यह समस्त कर्मकी रचना है । ऐसा अनुभवते हुए मनका व्यापाररूप राग मिटता है । "अबुद्धिपूर्वं अपि त जेतु वारवार स्वशक्ति स्पृशन्" [अबुद्धिपूर्व] मनके आलम्बन विना मोहकर्मके उदयरूप निमित्तकारणसे परिणमे है अशुद्धतारूप जीवके प्रदेश, [तं अपि] उसको भी [जेतुं] जीतनेके लिए [वारंवारं] अखण्डितधाराप्रवाहरूप [स्वशक्तिं] शुद्ध चैतन्य वस्तु, उसको [स्पृशन्] स्वानुभवप्रत्यक्षरूपसे आस्वादता हुआ । भावार्थ इस प्रकार है—मिथ्यात्व रागद्वेषरूप है जो जीवके अशुद्धचेतनारूप विभाव परिणाम वे दो प्रकारके है—एक परिणाम बुद्धिपूर्वक है, एक परिणाम अबुद्धिपूर्वक है । विवरण—

बुद्धिपूर्वक कहने पर जो सब परिणाम मनके द्वारा प्रवर्तते है, बाह्य विषयके आधारसे प्रवर्तते हैं। प्रवर्तते हुए वह जीव आप भी जानता है कि मेरा परिणाम इस रूप है । तथा अन्य जीव भी अनुमान करके जानता है जो इस जीवके ऐसा परिणाम हैं। ऐसा परिणाम बुद्धिपूर्वक कहा जाता है । सो ऐसे परिणामको सम्यग्दृष्टि जीव मेट सकता है, क्योकि ऐसा परिणाम जीवकी जानकारीमे है । शुद्धस्वरूपका अनुभव होने पर जीवके सहाराका भी है, इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव पहले ही ऐसा परिणाम मेटता है । अबुद्धिपूर्वक परिणाम कहने पर पाँच इन्द्रिय और मनके व्यापारके विना ही मोहकर्मके उदयका निमित्त कर मोह राग द्वेषरूप अशुद्धविभावपरिणामरूप आप स्वय जीव द्रव्य असंख्यात प्रदेशोंमें परिणमता है सो ऐसा परिणमन जीवकी जानकारीमे नहीं है और जीवके सहाराका भी नही है, इसलिए जिस किसी प्रकार मेटा जाता नहीं । अतएव ऐसे परिणामको मेटनेके लिये निरन्तरपने शुद्ध स्वरूपको अनुभवता है, शुद्ध स्वरूपका अनुभव करने पर सहज ही मिटेगा । दूसरा उपाय तो कोई नही, इसलिए एक शुद्ध स्वरूपका अनुभव उपाय है । और क्या करता हुआ निरास्रव होता है ? "एव परवृत्ति सकलां उच्छिन्दन्" [एव] अवश्य ही [पर] जितनी ज्ञेय वस्तु है उसमे [वृत्ति] रंजकपना ऐसी परिणाम-क्रिया, जो [सकलां] जितनी है शुभरूप अथवा अशुभरूप, उसको [उच्छिन्दन्] मूलसे ही उखारता हुआ सम्यग्दृष्टि निरास्रव होता है । भावार्थ इस प्रकार है—ज्ञेय-ज्ञायकका सम्बन्ध दो प्रकार है—एक तो जानपनामात्र है, राग-द्वेपरूप नही है । यथा—केवली सकल ज्ञेय वस्तुको देखते जानते है परन्तु किसी वस्तुमे राग-द्वेप नहीं करते । उसका नाम शुद्ध ज्ञानचेतना कहा जाता है । सो सम्यग्दृष्टि जीवके शुद्ध ज्ञानचेतनारूप जानपना है, इसलिए मोक्षका कारण है—बन्धका कारण नही है । दूसरा जानपना ऐसा जो कितनी ही विषयरूप वस्तुका जानपना भी है और मोह कर्मके उदयका निमित्त पाकर इष्टमे राग करता है, भोगकी अभिलाषा करता है तथा अनिष्टमें द्वेप करता है, अरुचि करता है सो ऐसे राग-द्वेपसे मिला हुआ है जो ज्ञान उसका नाम अशुद्ध चेतनालक्षण कर्मचेतना कर्मफलचेतनारूप कहा जाता है, इसलिए बन्धका कारण है । ऐसा परिणमन सम्यग्-दृष्टिके नहीं है, क्योकि मिथ्यात्वरूप परिणाम गया होनेसे ऐसा परिणमन नही होता है। ऐसा अशुद्ध ज्ञानचेतनारूप परिणाम मिथ्यादृष्टिके होता है । और कैसा होता हुआ निरास्रव होता है ? "ज्ञानस्य पूर्ण. भवन्" पूर्ण ज्ञानरूप होता हुआ । भावार्थ इस प्रकार है—ज्ञानका खण्डितपना यह कि वह राग-द्वेपमे मिला हुआ है । राग-द्वेप गये होनेसे

ज्ञानका पूर्णपना कहा जाता है। ऐसा होता हुआ सम्यग्दृष्टि जीव निरास्रव है ।। ४-११६ ।।

(अनुष्टुप्)

सर्वस्यामेव जीवन्त्यां द्रव्यप्रत्ययसन्ततौ ।
कुतो निरास्रवो ज्ञानी नित्यमेवेति चेन्मतिः ।।५-११७।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—यहाँ कोई आशका करता है—सम्यग्दृष्टि जीव सर्वथा निरास्रव कहा और ऐसा ही है। परन्तु ज्ञानावरणादि द्रव्यपिण्ड जैसा था वैसा ही विद्यमान है। तथा उस कर्मके उदयमे नाना प्रकारकी भोगसामग्री जैसी थी वैसी ही है। तथा उस कर्मके उदयमे नाना प्रकारके सुख-दु खको भोगता है, इन्द्रिय-शरीर-सम्बन्धी भोग सामग्री जैसी थी वैसी ही है। सम्यग्दृष्टि जीव उस सामग्रीको भोगता भी है। इतनी सामग्रीके रहते हुए निरास्रवपना कैसे घटित होता है ऐसा कोई प्रश्न करता है—"द्रव्यप्रत्ययसन्ततौ सर्वस्यामेव जीवन्त्या ज्ञानी नित्य निरास्रव कुत" [**द्रव्यप्रत्यय**] जीवके प्रदेशोमे परिणमा है पुद्गल पिण्डरूप अनेक प्रकारका मोहनीयकर्म, उसकी [**सन्ततौ**] सन्तति—स्थितिबन्धरूप बहुत काल पर्यन्त जीवके प्रदेशोमे रहती है। [**सर्वस्यां**] जितनी होती, जैसी होती [**जीवन्त्यां**] उतनी ही है, विद्यमान है, वैसी ही है। [**एव**] निश्चयसे फिर भी [**ज्ञानी**] सम्यग्दृष्टि जीव [**नित्यं निरास्रवः**] सर्वथा सर्व काल आस्रवसे रहित है ऐसा जो कहा सो [**कुतः**] क्या विचार करके कहा "चेत् इति मति" [**चेत्**] भो शिष्य ! यदि [**इति मतिः**] तेरे मनमें ऐसी आशका है तो उत्तर सुन, कहते है ।।५-११७।।

(मालिनी)

विजहति न हि सत्तां प्रत्ययाः पूर्वबद्धाः
समयमनुसरन्तो यद्यपि द्रव्यरूपाः ।
तदपि सकलरागद्वेषमोहव्युदासा-
दवतरति न जातु ज्ञानिनः कर्मबन्धः ।।६-११८।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तदपि ज्ञानिन जातु कर्मबन्ध न अवतरति" [**तदपि**] तो भी [**ज्ञानिनः**] सम्यग्दृष्टि जीवके [**जातु**] कदाचित् किसी भी नयसे [**कर्मबन्धः**]

ज्ञानावरणादिरूप पुद्गलपिण्डका नूतन आगमन—कर्मरूप परिणमन [न अवतरति] नही होता । अथवा जो कभी सूक्ष्म अबुद्धिपूर्वक राग-द्वेष परिणामसे बन्ध होता है, अति ही अल्प वन्ध होता है तो भी सम्यग्दृष्टि जीवके वन्ध होता है ऐसा कोई तीनो कालोमे कह सकता नही । आगे कैसा होनेसे वन्ध नही ? "सकलरागद्वेपमोहव्युदासात्" जिस कारणसे ऐसा है उस कारणसे बन्ध नही घटित होता । [सकल] जितने शुभरूप अथवा अशुभरूप [राग] प्रीतिरूप परिणाम [द्वेप] दुष्ट परिणाम [मोह] पुद्गलद्रव्यकी विचित्रतामे आत्मबुद्धि ऐसा विपरीतरूप परिणाम, ऐसे [व्युदासात्] तीनों ही परिणामोसे रहितपना ऐसा कारण है, इससे सामग्रीके विद्यमान होते हुए भी सम्यग्दृष्टि जीव कर्मबन्धका कर्ता नही है । विद्यमान सामग्री जिस प्रकार है उस प्रकार कहते है—"यद्यपि पूर्वबद्धा. प्रत्यया. द्रव्यरूपा. सत्ता न हि विजहति" [यद्यपि] जो ऐसा भी है कि [पूर्वबद्धाः] सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके पहले जीव मिथ्यादृष्टि था, इससे मिथ्यात्व, राग, द्वेपरूप परिणामके द्वारा वाँधे थे जो [द्रव्यरूपाः प्रत्ययाः] मिथ्यात्वरूप तथा चारित्रमोहरूप पुद्गल कर्मपिण्ड, वे [सत्तां] स्थिति बन्धरूप होकर जीवके प्रदेशोंमे कर्मरूप विद्यमान हैं ऐसे अपने अस्तित्वको [न हि विजहति] नही छोड़ते है । उदय भी देते है ऐसा कहते हैं—"समयं अनुसरन्त. अपि" [समयं] समय समय प्रति अखण्डित धाराप्रवाहरूप [अनुसरन्तः अपि] उदय भी देते है, तथापि सम्यग्दृष्टि कर्मबन्धका कर्ता नही है । भावार्थ इस प्रकार है—कोई अनादिकालका मिथ्यादृष्टि जीव काललब्धिको प्राप्त करता हुआ सम्यक्त्व गुणरूप परिणमा, चारित्रमोह कर्मकी सत्ता विद्यमान है, उदय भी विद्यमान है, पचेन्द्रिय विषयसस्कार विद्यमान है, भोगता भी है, भोगता हुआ ज्ञान गुणके द्वारा वेदक भी है, तथापि जिस प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव आत्मस्वरूपको नही जानता है, कर्मके उदयको आप कर जानता है, इससे इष्ट-अनिष्ट विषय सामग्रीको भोगता हुआ राग-द्वेष करता है, इससे कर्मका वंधक होता है उस प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव नही है । सम्यग्दृष्टि जीव आत्माको शुद्धस्वरूप अनुभवता है, शरीर आदि समस्त सामग्रीको कर्मका उदय जानता है, आये उदयको खपाता है । परन्तु अन्तरंगमे परम उदासीन है, इसलिए सम्यग्दृष्टि जीवको कर्मवन्ध नही है । ऐसी अवस्था सम्यग्दृष्टि जीवके सर्वकाल नही । जब तक सकल कर्मोका क्षय कर निर्वाणपदवीको प्राप्त करता है तव तक ऐसी अवस्था है जव निर्वाणपद प्राप्त करेगा उस कालका तो कुछ कहना ही नही—साक्षात् परमात्मा है ।।६-११८।।

(अनुष्टुप्)

रागद्वेषविमोहानां ज्ञानिनो यदसम्भवः।
तत एव न बन्धोऽस्य ते हि बन्धस्य कारणम् ॥७-११९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—ऐसा कहा कि सम्यग्दृष्टि जीवके वन्ध नही है सो ऐसी प्रतीति जिस प्रकार होती है उस प्रकार और कहते है—"यत् ज्ञानिन रागद्वेषविमोहाना असम्भव तत अस्य बन्ध न" [**यत्**] जिस कारण [**ज्ञानिनः**] सम्यग्दृष्टि जीवके [**राग**] रजकपरिणाम [**द्वेष**] उद्वेग [**विमोहानां**] प्रतीतिका विपरीतपना ऐसे अशुद्ध भावोकी [**असम्भवः**] विद्यमानता नही है। भावार्थ इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि जीव कर्मके उदयमे रजायमान नही होता, इसलिये रागादिक नही हैं [**ततः**] उस कारणसे [**अस्य**] सम्यग्दृष्टि जीवके [**बन्धः न**] ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मका बन्ध नही है। "एव" निश्चयसे ऐसा ही द्रव्यका स्वरूप है। "हि ते बन्धस्य कारण" [**हि**] जिस कारण [**ते**] राग, द्वेष, मोह ऐसे अशुद्ध परिणाम [**बन्धस्य कारणं**] बन्धके कारण है। भावार्थ इस प्रकार है—कोई अज्ञानी जीव ऐसा मानेगा कि सम्यग्दृष्टि जीवके चारित्रमोहका उदय तो है, वह उदयमात्र होने पर आगामी ज्ञानावरणादि कर्मका वन्ध होता होगा ? समाधान इस प्रकार है—चारित्रमोहका उदयमात्र होने पर बन्ध नही है। उदयके होने पर जो जीवके राग, द्वेष, मोहपरिणाम हो तो कर्मबन्ध होता है अन्यथा सहस्र कारण हो तो भी कर्मबन्ध नही होता। राग, द्वेष, मोह परिणाम भी मिथ्यात्व कर्मके उदयके सहारा है, मिथ्यात्वके जाने पर अकेले चारित्रमोहके उदयके सहारा का राग, द्वेष, मोह परिणाम नही है। इस कारण सम्यग्दृष्टिके राग, द्वेष, मोहपरिणाम होता नही, इसलिए कर्मबन्धका कर्ता सम्यग्दृष्टि जीव नही होता ॥७-११९॥

(वसन्ततिलका)

अध्यास्य शुद्धनयमुद्धतबोधचिह्न-
मैकाग्र्यमेव कलयन्ति सदैव ये ते।
रागादिमुक्तमनसः सततं भवन्तः
पश्यन्ति बन्धविधुरं समयस्य सारम् ।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ये शुद्धनयं ऐकाग्र्य एव सदा कलयन्ति" [**ये**] जो कोई आसन्न भव्य जीव [**शुद्धनयं**] निर्विकल्प शुद्ध चैतन्यवस्तुमात्रका, [**ऐकाग्र्यं**] समस्त रागादि विकल्पसे चित्तका निरोध कर [**एव**] चित्तमें निश्चय लाकर [**कलयन्ति**] अखण्डित धाराप्रवाहरूप अभ्यास करते है [**सदा**] सर्व काल । कैसा है ? "उद्धतवोधचिह्न" [**उद्धत**] सर्व काल प्रगट जो [**बोध**] ज्ञानगुण वही है [**चिह्नं**] लक्षण जिसका, ऐसा है । क्या करके "अध्यास्य" जिस किसी प्रकार मनमें प्रतीति लाकर । "ते एव समयस्य सारं पश्यन्ति" [**ते एव**] वे ही जीव निश्चयसे [**समयस्य सारं**] सकल कर्मसे रहित अनन्तचतुष्टय विराजमान परमात्मपदको [**पश्यन्ति**] प्रगटरूपसे पाते हैं । कैसा पाते है ? "बन्धविधुर" [**बन्ध**] अनादि कालसे एकबन्धपर्यायरूप चला आया था ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलपिण्ड, उससे [**विधुरं**] सर्वथा रहित है । भावार्थ इस प्रकार है—सकल कर्मके क्षयसे हुआ है शुद्ध, उसकी प्राप्ति होती हैं शुद्धस्वरूपका अनुभव करते हुए । कैसे है वे जीव ? "रागादिमुक्तमनस." राग, द्वेष, मोहसे रहित है परिणाम जिनका, ऐसे हैं । और कैसे हैं ? "सततं भवन्त·" [**सततं**] निरन्तरपने [**भवन्तः**] ऐसे ही हैं । भावार्थ इस प्रकार है—कोई जानेगा कि सर्वकाल प्रमादी रहता है, कभी एक जैसा कहा वैसा होता है सो इस प्रकार तो नही, सदा सर्वकाल शुद्धपनेरूप रहता है ॥८-१२०॥

(वसन्ततिलका)

प्रच्युत्य शुद्धनयतः पुनरेव ये तु
रागादियोगमुपयान्ति विमुक्तबोधाः ।
ते कर्मबन्धमिह बिभ्रति पूर्वबद्ध-
द्रव्यास्रवैः कृतविचित्रविकल्पजालम् ॥९-१२१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तु पुनः" ऐसा भी है—"ये शुद्धनयत. प्रच्युत्य रागादियोग उपयान्ति ते इह कर्मवन्धं बिभ्रति" [**ये**] जो कोई उपशमसम्यग्दृष्टि अथवा वेदकसम्यग्दृष्टि जीव [**शुद्धनयतः**] शुद्ध चैतन्यस्वरूपके अनुभवसे [**प्रच्युत्य**] भ्रष्ट हुए है तथा [**रागादि**] राग, द्वेष, मोहरूप अशुद्ध परिणाम [**योगं**] रूप [**उपयान्ति**] होते हैं [**ते**] ऐसे हैं जो जीव वे [**कर्मबन्धं**] ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलपिण्ड [**बिभ्रति**] नया उपार्जित करते है । भावार्थ इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि जीव जब तक सम्यक्त्वके परिणामोमे सावुत रहता है तव तक राग, द्वेष, मोहरूप अशुद्ध परिणामके

नही होनेसे ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध नही होता। (किन्तु) जो सम्यग्दृष्टि जीव थे पीछे सम्यक्त्वके परिणामसे भ्रष्ट हुए, उनको राग,द्वेष, मोहरूप अशुद्ध परिणामके होनेसे ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध होता है, क्योकि मिथ्यात्वके परिणाम अशुद्धरूप है। कैसे है वे जीव ? "विमुक्तबोधा" [विमुक्त] छूटा है [बोधाः] शुद्धस्वरूपका अनुभव जिनका, ऐसे है। कैसा है कर्मबन्ध ? "पूर्वबद्धद्रव्यास्रवैं कृतविचित्रविकल्पजाल" [पूर्व] सम्यक्त्वके विना उत्पन्न हुए [बद्ध] मिथ्यात्व, राग, द्वेषरूप परिणामके द्वारा बाँधे थे जो [द्रव्यास्रवैः] पुद्गलपिण्डरूप मिथ्यात्वकर्म तथा चारित्र मोहकर्म उनके द्वारा [कृत] किया है [विचित्र] नानाप्रकार [विकल्प] राग, द्वेप, मोहपरिणाम, उसका [जालं] समूह ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है—जितने काल जीव सम्यक्त्वके भावरूप परिणमा था उतने काल चारित्रमोहकर्म कीले हुए सर्पके समान अपना कार्य करनेके लिए समर्थ नही था। जब वही जीव सम्यक्त्वके भावसे भ्रष्ट हुआ मिथ्यात्व भावरूप परिणमा तब उकीले हुए सर्पके समान अपना कार्य करनेके लिए समर्थ हुआ। चारित्रमोहकर्मका कार्य ऐसा जो जीवके अशुद्ध परिणमनका निमित्त होना। भावार्थ इस प्रकार है—जीवके मिथ्यादृष्टि होनेपर चारित्रमोहका वन्ध भी होता है। जब जीव सम्यक्त्वको प्राप्त करता है तब चारित्रमोहके उदयमे बन्ध होता है परन्तु वन्धशक्ति हीन होती है, इसलिए बध नही कहलाता। इस कारण सम्यक्त्वके होनेपर चारित्रमोहको कीले हुए सर्पके समान ऊपर कहा है। जब सम्यक्त्व छूट जाता है तब उकीले हुए सर्प के समान चारित्रमोहको कहा सो ऊपरके भावार्थका अभिप्राय जानना ॥९-१२१॥

(अनुष्टुप्)

इदमेवात्र तात्पर्यं हेयः शुद्धनयो न हि।
नास्ति बंधस्तदत्यागात्तत्त्यागाद्बंध एव हि ॥१०-१२२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अत्र इद एव तात्पर्यं" [अत्र] इस समस्त अधिकारमे [इदं एव तात्पर्यं] निश्चयसे इतना ही कार्य है। वह कार्य कैसा ? "शुद्धनयः हेय न हि" [शुद्धनयः] आत्माके शुद्ध स्वरूपका अनुभव [हेयः न हि] सूक्ष्म कालमात्र भी विसारने (भूलने) योग्य नही है। किस कारण ? "हि तत् अत्यागात् बन्ध नास्ति" [हि] जिस कारण [तत्] शुद्ध स्वरूपका अनुभव, उसके [अत्यागात्] नही छूटनेसे [बन्धः नास्ति] ज्ञानावरणादि कर्मका वन्ध नही होता। और किस कारण ? "तत्त्या-

गात् बन्ध एव" [तत्] शुद्ध स्वरूपका अनुभव, उसके [त्यागात्] छूटनेसे [बन्ध एव] ज्ञानावरणादि कर्मका बन्ध है। भावार्थ प्रगट है ॥१०-१२२॥

(शार्दूलविक्रीडित)

धीरोदारमहिम्न्यनादिनिधने बोधे निबध्नन्धृतिं
त्याज्यः शुद्धनयो न जातु कृतिभिः सर्वंकषः कर्मणाम्।
तत्रस्थाः स्वमरीचिचक्रमचिरात्संहृत्य निर्यद्बहिः
पूर्णं ज्ञानघनौघमेकमचलं पश्यन्ति शान्तं महः ॥११-१२३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"कृतिभि· जातु शुद्धनय त्याज्य. न हि" [कृतिभिः] सम्यग्दृष्टि जीवोके द्वारा [जातु] सूक्ष्मकालमात्र भी [शुद्धनयः] शुद्ध चैतन्यमात्र-वस्तुका अनुभव [त्याज्यः न हि] विस्मरण योग्य नही है। कैसा है शुद्धनय ? "वोधे धृति निबध्नन्" [वोधे] आत्मस्वरूपमे [धृतिं] अतीन्द्रिय सुखस्वरूप परिणतिको [निबध्नन्] परिणमाता है। कैसा है बोध ? "धीरोदारमहिम्नि" [धीर] शाश्वती [उदार] धाराप्रवाहरूप परिणमनशील, ऐसी है [महिम्नि] बढाई जिसकी, ऐसा है। और कैसा है ? "अनादिनिधने" [अनादि] नही है आदि [अनिधने] नही है अन्त जिसका, ऐसा है। और कैसा है शुद्धनय ? "कर्मणा सर्वकष" [कर्मणां] ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्मपिण्डका अथवा राग, द्वेष, मोहरूप अशुद्ध परिणामोका [सर्वंकषः] मूलसे क्षयकरणशील है। "तत्रस्था शान्त मह. पश्यन्ति" [तत्रस्थाः] शुद्धस्वरूप-अनुभवमे मग्न है जो जीव, वे [शान्तं] सर्व उपाधिसे रहित ऐसे [महः] चैतन्यद्रव्य को [पश्यन्ति] प्रत्यक्षरूपसे प्राप्त करते है। भावार्थ इस प्रकार है—परमात्मपदको प्राप्त होते है। कैसा है मह ? "पूर्णं" असंख्यात प्रदेश ज्ञान विराजमान है। और कैसा है ? "ज्ञानघनौघ" चेतनागुणका पुंज है। और कैसा है ? "एक" समस्त विकल्पसे रहित निर्विकल्प वस्तुमात्र है। और कैसा है ? "अचलं" कर्मसयोगके मिटनेसे निश्चल है। क्या करके ऐसे स्वरूपकी प्राप्ति होती है ? "स्वमरीचिचक्र अचिरात् संहृत्य" [स्वमरीचिचक्रं] झूठ है, भ्रम है जो कर्मकी सामग्री इन्द्रिय, शरीर रागादिमे आत्मबुद्धि, उसको [अचिरात्] तत्कालमात्र [संहृत्य] विनाशकर। कैसा है मरीचिचक्र ? "बहि· निर्यत्" अनात्मपदार्थोमे भ्रमता है। भावार्थ इस प्रकार है—परमात्मपदकी प्राप्ति होनेपर समस्त विकल्प मिटते हैं ॥११-१२३॥

(मन्दाक्रान्ता)

रागादीनां झगिति विगमात्सर्वतोऽप्यास्रवाणां
नित्योद्योतं किमपि परमं वस्तु संपश्यतोऽन्तः ।
स्फारस्फारैः स्वरसविसरैः प्लावयत्सर्वभावा-
नालोकान्तादचलमतुलं ज्ञानमुन्मग्नमेतत् ॥१२-१२४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एतत् ज्ञान उन्मग्न" [**एतत्**] जैसा कहा है वैसा शुद्ध [**ज्ञानं**] शुद्ध चैतन्यप्रकाश [**उन्मग्नं**] प्रगट हुआ । जिसको ज्ञान प्रगट हुआ वह जीव कैसा है ? "किमपि वस्तु अन्त सपश्यत" [**किमपि वस्तु**] निर्विकल्पसत्तामात्र कुछ वस्तु, उसको [**अन्तः संपश्यतः**] भावश्रुतज्ञानके द्वारा प्रत्यक्षपने अवलम्बता है । भावार्थ इस प्रकार है—शुद्ध स्वरूपके अनुभवके काल जीव काष्ठके समान जड है ऐसा भी नही है, सामान्यतया सविकल्पी जीवके समान विकल्पी भी नही है, भावश्रुतज्ञानके द्वारा कुछ निर्विकल्प वस्तुमात्रको अवलम्बता है । अवश्य अवलम्बता है । "परम" ऐसे अवलम्वनको वचनद्वारसे कहनेको समर्थपना नही है, इसलिए कहना शक्य नही । कैसा है शुद्ध ज्ञानप्रकाश ? "नित्योद्योत" अविनाशी है प्रकाश जिसका । किस कारणसे ? "रागादीना झगिति विगमात्" [**रागादीनां**] राग, द्वेष, मोहकी जातिके हैं जितने असख्यात लोकमात्र अशुद्ध परिणाम उनका [**झगिति विगमात्**] तत्काल विनाश होनेसे । कैसे है अशुद्धपरिणाम ? "सर्वत अपि आस्रवाणा" [**सर्वतः अपि**] सर्वथा प्रकार [**आस्रवाणां**] आस्रव ऐसा नाम-सज्ञा है जिनकी, ऐसे है । भावार्थ इस प्रकार है—जीवके अशुद्ध रागादि परिणामको सच्चा आस्रवपना घटता है, उनका निमित्त पाकर कर्मरूप आस्रवती है जो पुद्गलकी वर्गणा वे तो अशुद्धपरिणामके सहारेकी है, इसलिए उनकी कौन बात, परिणामोके शुद्ध होनेपर सहज ही मिटती है। और कैसा है शुद्ध ज्ञान ? "सर्वभावान् प्लावयन्" [**सर्वभावान्**] जितने ज्ञेयवस्तु अतीत, अनागत, वर्तमानपर्यायिसे सहित है उनको [**प्लावयन्**] अपनेमे प्रतिविम्बित करता हुआ । किसके द्वारा ? "स्वरसविसरै" [**स्वरस**] चिद्रूप गुण, उसकी [**विसरैः**] अनन्तशक्ति, उसके द्वारा । कैसी है वे ? "स्फारस्फारै" [**स्फार**] अनन्त शक्ति, उससे भी [**स्फारैः**] अनन्तानन्तगुणी है । भावार्थ इस प्रकार है—द्रव्य अनन्त है, उनसे पर्यायभेद अनन्तगुणे

है। उन समस्त ज्ञेयोसे ज्ञानकी अनन्तगुणी शक्ति है। ऐसा द्रव्यका स्वभाव है। और कैसा है शुद्ध ज्ञान ? "आलोकान्तात् अचल" सकल कर्मोका क्षय होनेपर जैसा उत्पन्न हुआ वैसा ही अनन्त कालपर्यन्त रहेगा, कभी और-सा नही होगा। और कैसा है शुद्ध ज्ञान ? "अतुल" तीन लोकमे जिसका सुखरूप परिणामनका दृष्टात नही है। ऐसा शुद्ध ज्ञानप्रकाश प्रगट हुआ ॥१२-१२४॥



[६]

संवर-अधिकार

(शार्दूलविक्रीडित)

आसंसारविरोधिसंवरजयैकान्तावलिप्तास्रव-
न्यक्कारात्प्रतिलब्धनित्यविजयं सम्पादयत्संवरम् ।
व्यावृत्तं पररूपतो नियमितं सम्यक् स्वरूपे स्फुर-
ज्ज्योतिश्चिन्मयमुज्ज्वलं निजरसप्राग्भारमुज्जृम्भते ।।१-१२५।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"चिन्मय ज्योति उज्जृम्भते" [चित्] चेतना, वही है [मयं] स्वरूप जिसका, ऐसा [ज्योतिः] प्रकाशस्वरूप वस्तु [उज्जृम्भते] प्रगट होता है। कैसी है ज्योति ? "स्फुरत्" सर्व काल प्रगट है। और कैसी है ? "उज्ज्वल" कर्मकलकसे रहित है। और कैसी है ? "निजरसप्राग्भार" [निजरस] चेतनगुण, उसका [प्राग्भारं] समूह है। और कैसी है ? "पररूपत व्यावृत्त" [पररूपतः] ज्ञेयाकारपरिणमन, उससे [व्यावृत्तं] परान्मुख है। भावार्थ इस प्रकार है—सकल ज्ञेयवस्तुको जानती है तद्रूप नही होती, अपने स्वरूप रहती है। और कैसी है ? "स्वरूपे सम्यक् नियमित" [स्वरूपे] जीवका शुद्धस्वरूप, उसमे [सम्यक्] जैसी है वैसी [नियमितं] गाढरूपसे स्थापित है। और कैसी है ? "संवर सम्पादयत्" [संवरं] धाराप्रवाहरूप आस्रवता है ज्ञानावरणादि कर्म उसका निरोध [सम्पादयत्] करणशील है। भावार्थ इस प्रकार है—यहाँ से लेकर सवरका स्वरूप कहते है। कैसा है सवर ? "प्रतिलब्धनित्यविजय" [प्रतिलब्ध] पाया है [नित्य] शाश्वत [विजयं] जीतपना, जिसने, ऐसा है। किस कारणसे ऐसा है ? "आससारविरोधिसवरजयैकान्तावलिप्तास्रवन्यक्कारात्" [आसंसार] अनन्त कालसे लेकर [विरोधि] वैरी है ऐसा जो [संवर] वध्यमान कर्मका निरोध, उसका [जय] जीतपना, उसके द्वारा [एकान्तावलिप्त] मुझसे वडा तीन लोकमे कोई नही ऐसा हुआ है गर्व जिसको ऐसा [आस्रव] धाराप्रवाहरूप कर्मका आगमन उसको

[न्यक्कारात्] दूर करनेरूप मानभंगके कारण। भावार्थ इस प्रकार है—आस्रव तथा संवर परस्पर अति ही वैरी है, इसलिए अनन्तकालसे लेकर सर्व जीवराशि विभाव-मिथ्यात्वपरिणतिरूप परिणमता है, इस कारण शुद्धज्ञानका प्रकाश नही है। इसलिए आस्रवके सहारे सर्व जीव है। काललब्धि पाकर कोई आसन्नभव्य जीव सम्यक्त्वरूप स्वभावपरिणति परिणमता है, इससे शुद्ध प्रकाश प्रगट होता है, इससे कर्मका आस्रव मिटता है। इससे शुद्ध ज्ञानका जीतपना घटित होता है ॥१-१२५॥

(शार्दूलविक्रीडित)

चैद्रूप्यं जडरूपतां च दधतोः कृत्वा विभागं द्वयो-
रन्तर्दारुणदारणेन परितो ज्ञानस्य रागस्य च।
भेदज्ञानमुदेति निर्मलमिदं मोदध्वमध्यासिताः
शुद्धज्ञानघनौघमेकमधुना सन्तो द्वितीयच्युताः ॥२-१२६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इदं भेदज्ञानं उदेति" [इदं] प्रत्यक्ष ऐसा [भेदज्ञानं] जीवके शुद्धस्वरूपका अनुभव [उदेति] प्रगट होता है। कैसा है? "निर्मल" राग, द्वेष, मोहरूप अशुद्धपरिणतिसे रहित है। और कैसा है? "शुद्धज्ञानघनौघं" [शुद्धज्ञान] शुद्धस्वरूपंका ग्राहक ज्ञान, उसका [घन] समूह, उसका [ओघं] पुञ्ज है। और कैसा है? "एकं" समस्त भेदविकल्पसे रहित है। भेदज्ञान जिस प्रकार होता है उस प्रकार कहते हैं—"ज्ञानस्य रागस्य च द्वयोः विभागं परत. कृत्वा" [ज्ञानस्य] ज्ञान-गुणमात्र [रागस्य च] और अशुद्ध परिणति, उन [द्वयोः] दोनोका [विभागं] भिन्न-भिन्नपना [परतः] एक दूसरेसे [कृत्वा] करके भेदज्ञान प्रगट होता है। कैसे हैं वे दोनों? "चैद्रूप्यं जडरूपतां च दधतो." चैतन्यमात्र जीवका स्वरूप, जडत्वमात्र अशुद्ध-पनाका स्वरूप। कैसा करके भिन्नपना किया? "अन्तर्दारुणदारणेन" [अन्तर्दारुण] अन्तरंग सूक्ष्म अनुभवदृष्टि, ऐसी है [दारणेन] करोंत, उसके द्वारा। भावार्थ इस प्रकार है—शुद्ध ज्ञानमात्र तथा रागादि अशुद्धपना ये दोनो भिन्न-भिन्नरूपसे अनुभव करनेके लिए अति सूक्ष्म हैं, क्योकि रागादि अशुद्धपना चेतनसा दीखता है, इसलिए अतिसूक्ष्म दृष्टिसे, जिस प्रकार पानी कीचड़से मिला होनेसे मैला हुआ है तथापि स्वरूपका अनुभव करने पर स्वच्छतामात्र पानी है, मैला है सो कीचड़की उपाधि है उसी प्रकार रागादिपरिणामके कारण ज्ञान अशुद्ध ऐसा दीखता है तथापि ज्ञानपनामात्र ज्ञान

है, रागादि अशुद्धपना उपाधि है। "सन्त अधुना इद मोदध्व" [सन्तः] सम्यग्दृष्टि जीव [अधुना] वर्तमान समयमे [इदं मोदध्वं] शुद्धज्ञानानुभवको आस्वादो। कैसे हैं सन्तपुरुष ? "अध्यासित:" शुद्धस्वरूपका अनुभव है जीवन जिनका ऐसे है। और कैसे है ? "द्वितीयच्च्युता" हेय वस्तुको नही अवलम्बते हैं ॥२-१२६॥

(मालिनी)

यदि कथमपि धारावाहिना बोधनेन
ध्रुवमुपलभमानः शुद्धमात्मानमास्ते ।
तदयमुदयदात्मारामात्मानमात्मा
परपरिणतिरोधाच्छुद्धमेवाभ्युपैति ॥३-१२७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तत् अयं आत्मा आत्मान शुद्धं अभ्युपैति" [तत्] तिस कारण [अयं आत्मा] यह प्रत्यक्ष जीव [आत्मानं] अपने स्वरूपको [शुद्धं] जितने है द्रव्यकर्म भावकर्म, उनसे रहित [अभ्युपैति] प्राप्त करता है। कैसा है आत्मा ? "उदयदात्माराम" [उदयत्] प्रगट हुआ है [आत्मा] अपना द्रव्य, ऐसा है [आरामं] निवास जिसका, ऐसा है। किस कारणसे शुद्धकी प्राप्ति होती है। "परपरिणतिरोधात्" [परपरिणति] अशुद्धपना, उसके [रोधात्] विनाशसे। अशुद्धपनाका विनाश जिस प्रकार होता है उस प्रकार कहते हैं—"यदि आत्मा कथमपि शुद्ध आत्मान उपलभमानः आस्ते" [यदि] जो [आत्मा] चेतन द्रव्य [कथमपि] काललब्धिको पाकर सम्यक्त्व पर्यायरूप परिणमता हुआ [शुद्धं] द्रव्यकर्म, भावकर्मसे रहित ऐसे [आत्मानं] अपने स्वरूपको [उपलभमानः आस्ते] आस्वादता हुआ प्रवर्तता है। कैसा करके ? "बोधनेन" भावश्रुतज्ञानके द्वारा। कैसा है भावश्रुतज्ञान ? "धारावाहिना" अखण्डित धाराप्रवाहरूप निरन्तर प्रवर्तता है। "ध्रुव" इस बातका निश्चय है ॥३-१२७॥

(मालिनी)

निजमहिमरतानां भेदविज्ञानशक्त्या
भवति नियतमेषां शुद्धतत्त्वोपलम्भः ।
अचलितमखिलान्यद्रव्यदूरेस्थितानां
भवति सति च तस्मिन्नक्षयः कर्ममोक्षः ॥४-१२८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एषां निजमहिमरतानां शुद्धतत्त्वोपलम्भ भवति" [**एषां**] ऐसे जो है, कैसे ? [**निजमहिम**] जीवके शुद्धस्वरूप परिणमनमे [**रतानां**] मग्न है जो कोई, उनको [**शुद्धतत्वोपलम्भः भवति**] सकल कर्मोसे रहित अनन्त चतुष्टय विराजमान ऐसा जो आत्मवस्तु उसकी प्राप्ति होती है। "नियतं" अवश्य होती है। कैसा करके होती है ? "भेदविज्ञानशक्त्या" [**भेदविज्ञान**] समस्त परद्रव्योसे आत्मस्वरूप भिन्न है ऐसे अनुभवरूप [**शक्त्या**] सामर्थ्यके द्वारा। "तस्मिन् सति कर्ममोक्षो भवति" [**तस्मिन्**] शुद्धस्वरूपकी प्राप्ति होनेपर [**कर्ममोक्षः भवति**] द्रव्यकर्म भावकर्मका मूलसे विनाश होता है। "अचलित" ऐसा द्रव्यका स्वरूप अमिट है। कैसा है कर्मक्षय ? "अक्षय" आगामी अनन्त काल तक और कर्मका वन्ध नही होगा। जिन जीवोका कर्मक्षय होता है वे जीव कैसे हैं ? "अखिलान्यद्रव्यदूरे स्थिताना" [**अखिल**] समस्त ऐसे जो [**अन्यद्रव्य**] अपने जीवद्रव्यसे भिन्न सब द्रव्य, उनसे [**दूरे स्थितानां**] सर्व प्रकार भिन्न हैं ऐसे जो जीव, उनके ॥४-१२८॥

(उपजाति)

सम्पद्यते संवर एष साक्षा-
च्छुद्धात्मतत्त्वस्य किलोपलम्भात् ।
स भेदविज्ञानत एव तस्मात्
तद्भेदविज्ञानमतीव भाव्यम् ॥५-१२९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तद् भेदविज्ञानं अतीव भाव्य" [**तत्**] उस कारणसे [**भेदविज्ञानं**] समस्त परद्रव्योसे भिन्न चैतन्यस्वरूपका अनुभव [**अतीव भाव्यं**] सर्वथा उपादेय है ऐसा मानकर अखण्डित धाराप्रवाहरूप अनुभव करना योग्य है। कैसा होनेसे ? "किल शुद्धात्मतत्त्वस्य उपलम्भात् एष. संवरः साक्षात् सम्पद्यते" [**किल**] निश्चयसे [**शुद्धात्मतत्त्वस्य**] जीवके शुद्धस्वरूपके [**उपलम्भात्**] प्राप्ति होनेसे [**एषः संवरः**] नूतन कर्मके आगमनरूप आस्रवका निरोधलक्षण सवर [**साक्षात् सम्पद्यते**] सर्वथा प्रकार होता है। 'स भेदविज्ञानत एव" [**सः**] शुद्धस्वरूपका प्रगटपना [**भेदविज्ञानतः**] शुद्धस्वरूपके अनुभवसे [**एव**] निश्चयसे होता है। "तस्मात्" तिस कारण भेदविज्ञान भी विनाशीक है तथापि उपादेय है ॥५-१२९॥

(अनुष्टुप्)

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया ।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते ॥६-१३०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इदं भेदविज्ञानं तावत् अच्छिन्नधारया भावयेत्" [इदं भेदविज्ञानं] पूर्वोक्त लक्षण है जो शुद्ध स्वरूपका अनुभव उसका [तावत्] उतने काल तक [अच्छिन्नधारया] अखण्डित धाराप्रवाहरूपसे [भावयेत्] आस्वाद करे। "यावत् परात् च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते" [यावत्] जितने कालमें [परात् च्युत्वा] परसे छूट कर [ज्ञानं] आत्मा [ज्ञाने] शुद्धस्वरूपमें [प्रतिष्ठते] एकरूप परिणमे। भावार्थ इस प्रकार है—निरन्तर शुद्धस्वरूपका अनुभव कर्तव्य है। जिस काल सकल कर्मक्षयलक्षण मोक्ष होगा उस काल समस्त विकल्प सहज ही छूट जायेंगे। वहाँ भेदविज्ञान भी एक विकल्परूप है, केवलज्ञानके समान जीवका शुद्धस्वरूप नहीं है, इसलिए सहज ही विनाशीक है ॥६-१३०॥

(अनुष्टुप्)

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन ।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ॥७-१३१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ये किल केचन सिद्धाः ते भेदविज्ञानतः सिद्धाः" [ये] आसन्नभव्य जीव हैं जो कोई [किल] निश्चयसे [केचन] संसारी जीवराशिमेंसे जो कोई गिनतीके [सिद्धाः] सकल कर्मोंका क्षय कर निर्वाणपदको प्राप्त हुए [ते] वे समस्त जीव [भेदविज्ञानतः] सकल परद्रव्योंसे भिन्न शुद्धस्वरूपके अनुभवसे [सिद्धाः] मोक्षपदको प्राप्त हुए। भावार्थ इस प्रकार है—मोक्षका मार्ग शुद्धस्वरूपका अनुभव, अनादि संसिद्ध यही एक मोक्षमार्ग है। "ये केचन बद्धाः ते किल अस्य एव अभावतः बद्धाः" [ये केचन] जो कोई [बद्धाः] ज्ञानावरणादि कर्मोंसे बंधे हैं [ते] वे समस्त जीव [किल] निश्चयसे [अस्य एव] ऐसा जो भेदविज्ञान, उसके [अभावतः] नहीं होनेसे [बद्धाः] बद्ध होकर संसारमें रुल रहे हैं। भावार्थ इस प्रकार है—भेदज्ञान सर्वथा उपादेय है ॥७-१३१॥

(मन्दाक्रान्ता)

भेदज्ञानोच्छलनकलनाच्छुद्धतत्त्वोपलम्भा-
द्रागग्रामप्रलयकरणात्कर्मणां संवरेण ।

बिभ्रत्तोषं परमममलालोकमम्लानमेकं
ज्ञानं ज्ञाने नियतमुदितं शाश्वतोद्योतमेतत् ।।८-१३२।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एतत् ज्ञानं उदित" [**एतत्**] प्रत्यक्ष विद्यमान [**ज्ञानं**] शुद्ध चैतन्यप्रकाश [**उदितं**] आस्रवका निरोध करके प्रगट हुआ। कैसा है ? "ज्ञाने नियत" अनन्त कालसे परिणमता था अशुद्ध रागादि विभावरूप वह काललब्धि पाकर अपने शुद्धस्वरूप परिणमा है। और कैसा है ? "शाश्वतोद्योत" अविनश्वर प्रकाश है जिसका, ऐसा है। और कैसा है ? "तोषं विभ्रत्" अतीन्द्रिय सुखरूप परिणमा है। और कैसा है ? "परम" उत्कृष्ट है। और कैसा है ? "अमलालोकं" सर्वथा प्रकार सर्व काल सर्व त्रैलोक्यमे निर्मल है–साक्षात् शुद्ध है। और कैसा है ? "अम्लान" सदा प्रकाशरूप है। और कैसा है ? "एक" निर्विकल्प है। शुद्ध ज्ञान ऐसा जिस प्रकार हुआ है उसी प्रकार कहते है—"कर्मणा सवरेण" ज्ञानावरणादिरूप आस्रवते थे जो कर्मपुद्गल उनके निरोधसे। कर्मका निरोध जिस प्रकार हुआ है उस प्रकार कहते हैं—"रागग्रामप्रलयकरणात्" [**राग**] राग, द्वेष, मोहरूप अशुद्ध विभावपरिणाम, उनका [**ग्राम**] समूह–असख्यात् लोकमात्र भेद, उनका [**प्रलय**] मूलसे सत्तानाश, उसके [**करणात्**] करनेसे। ऐसा भी किस कारणसे ? "शुद्धतत्त्वोपलम्भात्" [**शुद्धतत्त्व**] शुद्धचैतन्यवस्तु, उसकी [**उपलम्भात्**] साक्षात् प्राप्ति, उससे। ऐसा भी किस कारणसे ? "भेदज्ञानोच्छलनकलनात् [**भेदज्ञान**] शुद्धस्वरूपज्ञान, उसका [**उच्छलन**] प्रगटपना, उसका [**कलनात्**] निरन्तर अभ्यास, उससे। भावार्थ इस प्रकार है—शुद्ध स्वरूपका अनुभव उपादेय है ।।८-१३२।।



७

निर्जरा-अधिकार



(शार्दूलविक्रीडित)

रागाद्यास्रवरोधतो निजधुरान्धृत्वा परः संवरः
कर्मागामि समस्तमेव भरतो दूरान्निरुन्धन् स्थितः ।
प्राग्बद्धं तु तदेव दग्धुमधुना व्याजृम्भते निर्जरा
ज्ञानज्योतिरपावृत्तं न हि यतो रागादिभिर्मूर्च्छति ॥१-१३३

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अधुना निर्जरा व्याजृम्भते" [**अधुना**] यहाँसे लेकर [**निर्जरा**] पूर्वबद्ध कर्मका अकर्मरूप परिणाम [**व्याजृम्भते**] प्रगट होता है । भावार्थ इस प्रकार है—निर्जराका स्वरूप जिस प्रकार है उस प्रकार कहते है । निर्जरा किसके निमित्त (किसके लिए) है ? "तु तत् एव प्राग्बद्ध दग्धु" [**तु**] सवरपूर्वक [**तत्**] जो ज्ञानावरणादि कर्म [**एव**] निश्चयसे [**प्राग्बद्धं**] सम्यक्त्वके नही होने पर मिथ्यात्व, राग, द्वेष परिणामसे बँधा था उसको [**दग्धुं**] जलानेके लिए । कुछ विशेप—"सवर स्थित" संवर अग्रेसर हुआ है जिसकी ऐसी है निर्जरा । भावार्थ इस प्रकार है—सवरपूर्वक जो निर्जरा सो निर्जरा, क्योकि जो सवरके बिना होती है सब जीवोको उदय देकर कर्मकी निर्जरा सो निर्जरा नही है । कैसा है सवर ? "रागाद्यास्रवरोधत निजधुरा धृत्वा आगामि समस्त एव कर्म भरत दूरात् निरुन्धन्" [**रागाद्यास्रवरोधतः**] रागादि आस्रवभावोके निरोधसे [**निजधुरां**] अपने एक सवररूप पक्षको [**धृत्वा**] धरता हुआ [**आगामि**] अखण्ड धाराप्रवाहरूप आस्रवित होनेवाले [**समस्तं एव कर्म**] नाना प्रकारके ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय इत्यादि अनेक प्रकारके पुद्गलकर्मको [**भरतः**] अपने बडप्पनसे [**दूरात् निरुन्धन्**] पासमे आने नही देता है । सवरपूर्वक निर्जरा कहने पर जो कुछ कार्य हुआ सो कहते है—"यत ज्ञानज्योति अपावृत्त रागादिभि न मूर्च्छति" [**यतः**] जिस निर्जरा द्वारा [**ज्ञानज्योतिः**] जीवका शुद्ध

स्वरूप [अपावृत्तं] निरावरण होता हुआ [रागादिभिः] अशुद्ध परिणामोंसे [न मूर्च्छति] अपने स्वरूपको छोडकर रागादिरूप नही होता ॥१-१३३॥

(अनुष्टुप्)

तज्ज्ञानस्यैव सामर्थ्यं विरागस्यैव वा किल ।
यत्कोऽपि कर्मभिः कर्म भुञ्जानोऽपि न बध्यते ॥२-१३४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तत् सामर्थ्य किल ज्ञानस्य एव वा विरागस्य एव" [तत्सामर्थ्यं] ऐसी सामर्थ्य [किल] निश्चयसे [ज्ञानस्य एव] शुद्ध स्वरूपके अनुभवकी है, [वा विरागस्य एव] अथवा रागादि अशुद्धपना छूटा है, उसकी है। वह सामर्थ्य कौन ? "यत् कोऽपि कर्म भुञ्जानोऽपि कर्मभि न बध्यते" [यत्] जो सामर्थ्य ऐसी है कि [कोऽपि] कोई सम्यग्दृष्टि जीव [कर्मभुञ्जानोऽपि] पूर्व ही बाँधा है ज्ञानावरणादि कर्म उसके उदयसे हुई है शरीर, मन, वचन, इन्द्रिय, सुख, दु खरूप नानाप्रकारकी सामग्री, उसको यद्यपि भोगता है तथापि [कर्मभिः] ज्ञानावरणादिसे [न बध्यते] नही बँधता है। जिस प्रकार कोई वैद्य प्रत्यक्षरूपसे विषको खाता है तो भी नही मरता है और गुण जानता है, इससे अनेक यत्न जानता है, उससे विषकी प्राणघातक शक्ति दूर कर दी है। वही विष अन्य जीव खावे तो तत्काल मरे, उससे वैद्य नही मरता। ऐसी जानपनेकी सामर्थ्य है। अथवा कोई शूद्र जीव मदिरा पीता है। परन्तु परिणामोमे कुछ दुश्चिन्ता है, मदिरा पीनेमे रुचि नही है, ऐसा शूद्रजीव मतवाला नही होता। जैसा था वैसा ही रहता है। मद्य तो ऐसा है जो अन्य कोई पीता है तो तत्काल मतवाला होता है। सो जो कोई मतवाला नही होता ऐसा अरुचि परिणामका गुण जानो। उसी प्रकार कोई सम्यग्दृष्टि जीव नाना प्रकारकी सामग्रीको भोगता है, सुख-दुखको जानता है, परन्तु ज्ञानमे शुद्धस्वरूप आत्माको अनुभवता है, उससे ऐसा अनुभवता है जो ऐसी सामग्री कर्मका स्वरूप है, जीवको दुखमय है, जीवका स्वरूप नही, उपाधि है ऐसा जानता है। उस जीवको ज्ञानावरणादि कर्मका बन्ध नही होता है। सामग्री तो ऐसी है जो मिथ्यादृष्टिके भोगनेमात्र कर्मबन्ध होता है। जो जीवको कर्मबन्ध नही होता, वह जानपनाकी सामर्थ्य है ऐसा जानना। अथवा सम्यग्दृष्टि जीव नानाप्रकारके कर्मके उदयफल भोगता है, परन्तु अभ्यंतर शुद्धस्वरूपको अनुभवता है, इसलिए कर्मके उदयफलमे रति नही उपजती, उपाधि जानता है, दुख जानता है, इसलिए अत्यन्त रूखा है। ऐसे जीवके कर्मका बन्ध नही होता

है, वह रूखे परिणामोकी सामर्थ्य है ऐसा जानो। इसलिए ऐसा अर्थ ठहराया जो सम्यग्दृष्टि जीवके शरीर, इन्द्रिय आदि विषयोका भोग निर्जराके लेखेमे है, निर्जरा होती है। क्योकि आगामी कर्म तो नही बँधता है, पिछला उदयफल देकर मूलसे निर्जर जाता है, इसलिए सम्यग्दृष्टिका भोग निर्जरा है ॥२-१३४॥

(रथोद्धता)

नाश्नुते विषयसेवनेऽपि यत् स्वं फलं विषयसेवनस्य ना।
ज्ञानवैभवविरागताबलात्सेवकोऽपि तदसावसेवकः ॥३-१३५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तत् असौ सेवक अपि असेवक" [तत्] तिस कारणसे [असौ] सम्यग्दृष्टि जीव [सेवकः अपि] कर्मके उदयसे हुआ है जो शरीर पञ्चेन्द्रिय विषय सामग्री, उसको भोगता है तथापि [असेवकः] नही भोगता है। किस कारण? "यत् ना विषयसेवनेऽपि विषयसेवनस्य स्व फल न अश्नुते" [यत्] जिस कारणसे [ना] सम्यग्दृष्टि जीव [विषयसेवनेऽपि] पचेन्द्रियसम्बन्धी विषयोको सेवता है तथापि [विषयसेवनस्य स्वं फलं] पचेन्द्रिय भोगका फल है ज्ञानावरणादि कर्मका बन्ध, उसको [न अश्नुते] नही पाता है। ऐसा भी किस कारणसे? "ज्ञानवैभवविरागताबलात्" [ज्ञानवैभव] शुद्धस्वरूपका अनुभव, उसकी महिमा, उसके कारण अथवा [विरागताबलात्] कर्मके उदयसे है विषयका सुख, जीवका स्वरूप नही है, इसलिए विषयसुखमे रति नही उत्पन्न होती है, उदासभाव है, इस कारण कर्मबन्ध नही होता है। भावार्थ इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि जो भोग भोगता है सो निर्जराके निमित्त है ॥३-१३५॥

(मन्दाक्रान्ता)

सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः
स्वं वस्तुत्वं कलयितुमयं स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या।
यस्माज्ज्ञात्वा व्यतिकरमिदं तत्त्वतः स्वं परं च
स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात्सर्वतो रागयोगात् ।४-१३६।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"सम्यग्दृष्टे नियत ज्ञानवैराग्यशक्ति भवति" [सम्यग्दृष्टेः] द्रव्यरूपसे मिथ्यात्वकर्म उपशमा है, भावरूपसे शुद्ध सम्यक्त्वभावरूप परिणमा है जो जीव, उसके [ज्ञान] शुद्धस्वरूपका अनुभवरूप जानपना, [वैराग्य]

जितने परद्रव्य द्रव्यकर्मरूप, भावकर्मरूप, नोकर्मरूप ज्ञेयरूप हैं उन समस्त पर द्रव्योका सर्व प्रकार त्याग [शक्तिः] ऐसी दो शक्तियाँ [नियतं भवति] अवश्य होती है–सर्वथा होती हैं। दोनों शक्तियाँ जिस प्रकार होती हैं उस प्रकार कहते हैं—"यस्मात् अयं स्वस्मिन् आस्ते परात् सर्वत. रागयोगात् विरमति" [यस्मात्] जिस कारण [अयं] सम्यग्दृष्टि [स्वस्मिन् आस्ते] सहज ही शुद्धस्वरूपमें अनुभवरूप होता है तथा [परात् रागयोगात्] पुद्गल द्रव्यकी उपाधिसे है जितनी रागादि अशुद्धपरिणति उससे [सर्वतः विरमति] सर्व प्रकार रहित होता है। भावार्थ इस प्रकार है—ऐसा लक्षण सम्यग्दृष्टि जीवके अवश्य होता है। ऐसा लक्षण होने पर अवश्य वैराग्य गुण है। क्या करके ऐसा होता है? "स्व परं च इमं व्यतिकरं तत्त्वत· ज्ञात्वा" [स्वं] शुद्धचैतन्यमात्र मेरा स्वरूप है, [परं] द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मका विस्तार पराया—पुद्गल द्रव्यका है, [इमं व्यतिकरं] ऐसा विवरण [तत्त्वतः ज्ञात्वा] कहनेके लिए नही है, वस्तुस्वरूप ऐसा ही है ऐसा अनुभवरूप जानता है सम्यग्दृष्टि जीव, इसलिए ज्ञानशक्ति है। आगे इतना करता है सम्यग्दृष्टि जीव सो किसके लिए? उत्तर इस प्रकार है–"स्वं वस्तुत्वं कलयितुं" [स्वं वस्तुत्वं] अपना शुद्धपना, उसके [कलयितुं] निरन्तर अभ्यास अर्थात् वस्तुकी प्राप्तिके निमित्त। उस वस्तुकी प्राप्ति किससे होती है? "स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या" अपने शुद्ध स्वरूपका लाभ परद्रव्यका सर्वथा त्याग ऐसेकारणसे ॥४-१३६॥

(मदाक्रान्ता)

सम्यग्दृष्टिः स्वयमयमहं जातु बंधो न मे स्या-
दित्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोऽप्याचरन्तु ।
आलम्बन्तां समितिपरतां ते यतोऽद्यापि पापा
आत्मानात्मावगमविरहात्सन्ति सम्यक्त्वरिक्ताः ॥५-१३७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—इस वार ऐसा कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीवके विषय भोगते हुए कर्मका बन्ध नही है, सो कारण ऐसा कि सम्यग्दृष्टिका परिणाम अति ही रूखा है, इसलिये भोग ऐसा लगता है मानों कोई रोगका उपसर्ग होता है। इसलिए कर्मका बन्ध नही है, ऐसा ही है। जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव पचेन्द्रियोके विषयके सुखको भोगते है वे परिणामोसे चिकने है, मिथ्यात्व भावका ऐसा ही परिणाम है, सहारा किसका है। सो वे जीव ऐसा मानते हैं कि हम भी सम्यग्दृष्टि हैं, हमारे भी विषय सुख भोगते हुए कर्मका बन्ध नही है। सो वे जीव धोखेमे पडे है, उनको कर्मका

वन्ध अवश्य है। इसलिए वे जीव मिथ्यादृष्टि अवश्य है। मिथ्यात्वभावके बिना कर्मकी सामग्रीमे प्रीति नही उपजती है, ऐसा कहते है—"ते रागिण अद्यापि पापा" [ते] मिथ्यादृष्टि जीवराशि [रागिण] शरीर पचेन्द्रियके भोगसुखमें अवश्यकर रजक है। [अद्यापि] करोड उपाय जो करे अनन्त कालतक तथापि [पापाः] पापमय है। ज्ञानावरणादि कर्मबन्धको करते है, महानिन्द्य है। किस कारणसे ऐसे है? "यत सम्यक्त्वरिक्ताः सन्ति" [यतः] जिस कारणसे विषयसुखरजक है जितनी जीवराशि वे, [सम्यक्त्वरिक्ताः सन्ति] शुद्धात्मस्वरूपके अनुभवसे शून्य है। किस कारणसे? "आत्मानात्मावगमविरहात्" [आत्मा] शुद्धचैतन्य वस्तु, [अनात्मा] द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म, उनका [अवगम] हेयोपादेयरूप भिन्नपनेरूप जानपना, उसका [विरहात्] शून्यपना होनेसे। भावार्थ इस प्रकार है—मिथ्यादृष्टि जीवके शुद्ध वस्तुके अनुभवकी शक्ति नही होती ऐसा नियम है, इसलिए मिथ्यादृष्टि जीव कर्मके उदयको आपरूप जानकर अनुभवता है, पर्यायमात्रमे अत्यन्त रत है। इस कारण मिथ्यादृष्टि सर्वथा रागी है। रागी होनेसे कर्मबन्ध कर्ता है। कैसा है मिथ्यादृष्टि जीव? "अय अह स्वयं सम्यग्दृष्टि जातु मे वन्ध न स्यात्" [अयं अहं] यह जो हू मैं, [स्वयं सम्यग्दृष्टिः] स्वय सम्यग्दृष्टि हू, इस कारण [जातु] त्रिकाल ही [मे वन्धः न स्यात्] अनेक प्रकारका विषयसुख भोगते हुए भी हमे तो कर्मका वन्ध नही है। "इति आचरन्तु" ऐसे जीव ऐसा मानते है तो मानो तथापि उनके कर्मबन्ध है। और कैसे है? "उत्तानोत्पुलकवदना." [उत्तान] ऊचा कर [उत्पुलक] फुलाया है [वदनाः] गालमुख जिन्होने, ऐसे है। "अपि" अथवा कैसे है? 'समितिपरता आलम्बन्ता" [समिति] मौनपना अथवा थोडा बोलना अथवा अपनेको हीना करके बोलना, इनका [परतां] समानरूप सावधानपना उसको [आलम्बन्तां] अवलम्बन करते है अर्थात् सर्वथा प्रकार इसरूप प्रकृतिका स्वभाव है जिनका, ऐसे है। तथापि रागी होनेसे मिथ्यादृष्टि है, कर्मका वन्ध करते है। भावार्थ इस प्रकार है—जो कोई जीव पर्यायमात्रमे रत होते हुए प्रगट मिथ्यादृष्टि है उनकी प्रकृतिका स्वभाव है कि हम सम्यग्दृष्टि, हमे कर्मका वन्ध नही ऐसा मुखसे गरजते है, कितने ही प्रकृतिके स्वभावके कारण मौन-सा रहते है, कितने थोडा बोलते है। सो ऐसे होकर रहते है सो यह समस्त प्रकृतिका स्वभावभेद है। इसमे परमार्थ तो कुछ नही। जितने काल तक जीव पर्यायमे

आपापन अनुभवता है उतने कालतक मिथ्यादृष्टि है, रागी है, कर्मका बन्ध करता है ॥ ५-१३७ ॥

(मन्दाक्रान्ता)

आसंसारात्प्रतिपदममी रागिणो नित्यमत्ताः
सुप्ता यस्मिन्नपदमपदं तद्विबुध्यध्वमन्धाः ।
एतैतेतः पदमिदमिदं यत्र चैतन्यधातुः
शुद्धः शुद्धः स्वरसभरतः स्थायिभावत्वमेति ॥६-१३८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"भो अन्धा:" [भो] सम्बोधन वचन, [अन्धाः] शुद्ध स्वरूपके अनुभवसे शून्य है जितनी जीवराशि । "तत् अपदं अपदं विबुध्यध्व" [तत्] कर्मके उदयसे है जो चार गतिरूप पर्याय तथा रागादि अशुद्ध परिणाम तथा इन्द्रियविपयजनित सुख दु ख इत्यादि अनेक है [अपदं अपदं] जितना कुछ है—कर्म संयोगकी उपाधि है, दो वार कहने पर सर्वथा जीवका स्वरूप नही है, [विबुध्यध्वं] ऐसा अवश्य कर जानो । कैसा है मायाजाल ? "यस्मिन् अमी रागिण आसंसारात् सुप्ता." [यस्मिन्] जिसमे—कर्मका उदयजनित अशुद्ध पर्याय मे [अमी रागिणः] प्रत्यक्षरूपसे विद्यमान है जो पर्यायमात्रमे राग करनेवाले जीव वे [आसंसारात् सुप्ताः] अनादिकालसे लेकर उसरूप अपनेको अनुभवते है । भावार्थ इस प्रकार है—अनादि-कालसे लेकर ऐसे स्वादको सर्व मिथ्यादृष्टि जीव आस्वादते है कि मै देव हू, मनुष्य हूं, सुखी हूं, दु खी हू, ऐसा पर्यायमात्रको आपा अनुभवते है, इसलिए सर्व जीवराशि जैसा अनुभवती है सो सर्व झूठा है, जीवका तो स्वरूप नही है । कैसी है सर्व जीवराशि ? "प्रतिपदं नित्यमत्ता" [प्रतिपदं] जैसी पर्याय ली उसीरूप [नित्यमत्ताः] ऐसे मतवाले हुए कि कोई काल कोई उपाय करनेपर मतवालापन उतरता नही । शुद्ध चैतन्यस्वरूप जैसा है वैसा दिखलाते हैं—"इत. एत एत" पर्यायमात्र अवधारा है आपा, ऐसे मार्ग मत जाओ, मत जाओ, क्योकि [वह] तेरा मार्ग नही है, नही है । इस मार्ग पर आओ, अरे ! आओ, क्योकि "इदं पद इद पद" तेरा मार्ग यहाँ है, यहाँ है । "यत्र चैतन्यधातु." [यत्र] जिसमे [चैतन्यधातुः] चेतनामात्र वस्तुका स्वरूप है । कैसा है ? "शुद्ध शुद्ध" सर्वथा प्रकार सर्व उपाधिसे रहित है । दो वार कहकर अत्यत गाढ किया है । और कैसा है ? "स्थायिभावत्व एति" अविनश्वरभावको पाता है । किस कारणसे ? "स्वरस-

भरत" [स्वरस] चेतनास्वरूप उसके [भरतः] भारसे अर्थात् कहनामात्र नही है, सत्यस्वरूप वस्तु है, इसलिये नित्य शाश्वत है। भावार्थ इस प्रकार है—जिसको-पर्यायको मिथ्यादृष्टि जीव आपा कर जानता है वे तो सर्व विनाशीक है, इसलिए जीवका स्वरूप नही है। चेतनामात्र अविनाशी है, इसलिए जीवका स्वरूप है ॥६-१३८॥

(अनुष्टुप्)

एकमेव हि तत्स्वाद्यं विपदामपदं पदम्।
अपदान्येव भासन्ते पदान्यन्यानि यत्पुरः ॥७-१३६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तत्पद स्वाद्य" [तत्] शुद्ध चैतन्यमात्र वस्तुरूप [पदं] मोक्षके कारणका [स्वाद्यं] निरन्तर अनुभव करना। कैसा है ? "हि एक एव" [हि] निश्चयसे [एकं एव] समस्त भेद विकल्पसे रहित निर्विकल्प वस्तुमात्र है। और कैसा है ? "विपदा अपद" [विपदां] चतुर्गति ससारसम्बन्धी नाना प्रकारके दु खोंका [अपदं] अभावलक्षण है। भावार्थ इस प्रकार है—आत्मा सुखस्वरूप है। साता-असाताकर्मके उदयके सयोग होते है जो सुख दु ख सो जीवका स्वरूप नही है, कर्मकी उपाधि हैं। और कैसा है ? "यत्पुर अन्यानि पदानि अपदानि एव भासन्ते" [यत्पुरः] जिस शुद्ध स्वरूपका अनुभवरूप आस्वाद आने पर [अन्यानि पदानि] चारगतिकी पर्याय, राग, द्वेष, मोह, सुख, दु खरूप इत्यादि जितने अवस्थाभेद है वे [अपदानि एव भासन्ते] जीवका स्वरूप नही है, उपाधिरूप है, विनश्वर है, दु खरूप है, ऐसा स्वाद स्वानुभवप्रत्यक्षरूपसे आता है। भावार्थ इस प्रकार है—शुद्धचिद्रूप उपादेय, अन्य समस्त हेय ॥७-१३६॥

(शार्दूलविक्रीडित)

एकज्ञायकभावनिर्भरमहास्वादं समासादयन्
स्वादं द्वन्द्वमयं विधातुमसहः स्वां वस्तुवृत्तिं विदन्।
आत्मात्मानुभवानुभावविवशो भ्रश्यद्विशेषोदयं
सामान्यं कलयन् किलैष सकलं ज्ञानं नयत्येकताम् ।८-१४०।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एष आत्मा सकल ज्ञान एकता नयति" [एष आत्मा] वस्तुरूप विद्यमान चेतन द्रव्य [सकलं ज्ञानं] जितनी पर्यापरूप परिणमा है ज्ञान—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन.पर्ययज्ञान, केवलज्ञान इत्यादि अनेक विकल्परूप

परिणमा है ज्ञान—उसको [एकतां] निर्विकल्परूप [नयति] अनुभवता है। भावार्थ इस प्रकार है—जिस प्रकार उष्णतामात्र अग्नि है, इसलिए दाह्यवस्तुको जलाती हुई दाह्यके आकार परिणमती है, इसलिए लोगोंको ऐसी बुद्धि उपजती है कि काष्ठकी अग्नि, छानाकी अग्नि, तृणकी अग्नि। सो ये समस्त विकल्प झूठे हैं। अग्निके स्वरूपका विचार करने पर उष्णतामात्र अग्नि है, एकरूप है। काष्ठ, छाना, तृण अग्निका स्वरूप नहीं है उसी प्रकार ज्ञान चेतनाप्रकाशमात्र है, समस्त ज्ञेयवस्तुको जाननेका स्वभाव है, इसलिए समस्त ज्ञेयवस्तुको जानता है, जानता हुआ ज्ञेयाकार परिणमता है। इससे ज्ञानी जीवको ऐसी बुद्धि उपजती है कि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान ऐसे भेदविकल्प सब झूठे हैं। ज्ञेयकी उपाधिसे मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल ऐसे विकल्प उपजे हैं। कारण कि ज्ञेयवस्तु नाना प्रकार है। जैसे ही ज्ञेयका ज्ञायक होता है वैसा ही नाम पाता है, वस्तुस्वरूपका विचार करने पर ज्ञानमात्र है। नाम धरना सब झूठा है। ऐसा अनुभव शुद्ध स्वरूपका अनुभव है। "किल" निश्चयसे ऐसा ही है। कैसा है अनुभवशीली आत्मा? "एकज्ञायकभावनिर्भरमहास्वादं समासादयन्" [एक] निर्विकल्प ऐसा जो [ज्ञायकभाव] चेतनद्रव्य, उसमें [निर्भर] अत्यन्त मग्नपना, उससे हुआ है [महास्वादं] अनाकुललक्षण सौख्य, उसको [समासादयन्] आस्वादता हुआ। और कैसा है? "द्वन्द्वमयं स्वादं विधातुं असहः" [द्वन्द्वमयं] कर्मके संयोगसे हुआ है विकल्परूप आकुलतारूप [स्वादं] अज्ञानीजन सुख करके मानते हैं परन्तु दुःखरूप है ऐसा जो इन्द्रिय विषयजनित सुख उसको [विधातुं] अंगीकार करनेके लिए [असहः] असमर्थ है। भावार्थ इस प्रकार है—विषय कषायको दुःखरूप जानते हैं। और कैसा है? "स्वां वस्तुवृत्तिं विदन्" [स्वां] अपना द्रव्यसम्बन्धी [वस्तुवृत्तिं] आत्माका शुद्धस्वरूप, उससे [विदन्] तद्रूप परिणमता हुआ। और कैसा है? "आत्मात्मानुभवानुभावविवशः" [आत्मा] चेतनद्रव्य उसका [आत्मानुभव] आस्वाद उसकी [अनुभाव] महिमा उसके द्वारा [विवशः] गोचर है। और कैसा है? "विशेषोदयं भ्रस्यत्" [विशेष] ज्ञानपर्याय उसके द्वारा [उदयं] नाना प्रकार उनको [भ्रस्यत्] मेटता हुआ। और कैसा है? "सामान्यं कलयन्" [सामान्यं] निर्भेद सत्तामात्र वस्तुको [कलयन्] अनुभव करता हुआ ॥८-१४०॥

(शार्दूलविक्रीडित)

अच्छाच्छाः स्वयमुच्छलन्ति यदिमाः संवेदनव्यक्तयो
निष्पीताखिलभावमण्डलरसप्राग्भारमत्ता इव ।
यस्याभिन्नरसः स एष भगवानेकोऽप्यनेकीभवन्
वल्गत्युत्कलिकाभिरद्भुतनिधिश्चैतन्यरत्नाकरः ॥६-१४१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"स एष चैतन्यरत्नाकर" [स एषः] जिसका स्वरूप कहा है तथा कहेगे ऐसा [**चैतन्यरत्नाकरः**] जीव द्रव्यरूपी महासमुद्र । भावार्थ इस प्रकार है—जीवद्रव्य समुद्रकी उपमा देकर कहा गया है सो इतना कहने पर द्रव्यार्थिक नयसे एक है, पर्यायार्थिकनयसे अनेक है । जिसप्रकार समुद्र एक है, तरगावलिसे अनेक है । "उत्कलिकाभि" समुद्रके पक्षमे तरगावलि, जीवके पक्षमे एक ज्ञानगुणके मतिज्ञान, श्रुतज्ञान इत्यादि अनेक भेद उनके द्वारा "वलगति" अपने बलसे अनादि कालसे परिणाम रहा है । कैसा है ? "अभिन्नरस" जितनी पर्याय है उनसे भिन्न सत्ता नही है, एक ही सत्त्व है । और कैसा है ? "भगवान्" ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य इत्यादि अनेक गुणोसे विराजमान है । और कैसा है ? "एक अपि अनेकीभवन्" [**एकः अपि**] सत्तास्वरूपसे एक है तथापि [**अनेकीभवन्**] अशभेद करनेपर अनेक है । और कैसा है ? "अद्भुतनिधि" [**अद्भुत**] अनन्त काल तक चारो गतियोमे फिरते हुए जैसा सुख कही नही पाया ऐसे सुखका [**निधिः**] निधान है । और कैसा है ? "यस्य इमा सवेदनव्यक्तय स्वय उच्छलन्ति" [**यस्य**] जिस द्रव्यके [**इमाः**] प्रत्यक्षरूपसे विद्यमान [**सवेदन**] ज्ञान, उसके [**व्यक्तयः**] मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान, केवलज्ञान इत्यादि अनेक पर्यायरूप अशभेद [**स्वयं**] द्रव्यका सहज ऐसा ही है उस कारण [**उच्छलन्ति**] अवश्य प्रगट होते हैं । भावार्थ इस प्रकार है—कोई आशका करेगा कि ज्ञान तो ज्ञानमात्र है, ऐसे जो मतिज्ञान आदि पाँच भेद वे क्यो है ? समाधान इस प्रकार है—जो ज्ञानकी पर्याय है, विरुद्ध तो कुछ नही । वस्तुका ऐसा ही सहज है । पर्यायमात्र विचारने पर मति आदि पाँच भेद विद्यमान है, वस्तुमात्र अनुभवनेपर ज्ञान-मात्र है । विकल्प जितने है उतने समस्त झूठे है, क्योकि विकल्प कोई वस्तु नही है, वस्तु तो ज्ञानमात्र है । कैसी है सवेदन व्यक्ति ? "अच्छाच्छा" निर्मलसे भी निर्मल है । भावार्थ इस प्रकार है—कोई ऐसा मानेगा कि जितनी ज्ञानकी पर्याय है वे समस्त

अशुद्धरूप हैं सो ऐसा तो नहीं, कारण कि जिस प्रकार ज्ञान शुद्ध है उसी प्रकार ज्ञान-की पर्याय वस्तुका स्वरूप है, इसलिए शुद्धस्वरूप है। परन्तु एक विशेष—पर्यायमात्रका अवधारण करनेपर विकल्प उत्पन्न होता है, अनुभव निर्विकल्प है, इसलिए वस्तुमात्र अनुभवनेपर समस्त पर्याय भी ज्ञानमात्र है, इसलिए ज्ञानमात्र अनुभव योग्य है। और कैसी है संवेदनव्यक्ति ? "निःपीताखिलभावमण्डलरसप्राग्भारमत्ताः इव" [**निःपीत**] निगला है [**अखिल**] समस्त [**भाव**] जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश ऐसे समस्त द्रव्य उनका [**मण्डल**] अतीत, अनागत, वर्तमान अनन्त पर्याय ऐसा है [**रस**] रसायनभूत दिव्य औषधि उसका [**प्राग्भार**] समूह उसके द्वारा [**मत्ता इव**] मग्न हुई है ऐसी है। भावार्थ इस प्रकार है—कोई परम रसायनभूत दिव्य औषधि पीता है तो सर्वांग तरंगावलिसी उपजती है उसी प्रकार समस्त द्रव्योंके जाननेमें समर्थ है ज्ञान, इसलिए सर्वांग आनन्दतरंगावलिसे गर्भित है ॥९-१४१॥

(शार्दूलविक्रीडित)

क्लिश्यन्तां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभिः
क्लिश्यन्तां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरम् ।
साक्षान्मोक्ष इदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं
ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमन्ते न हि ।१०-१४२।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"परे इदं ज्ञानं ज्ञानगुणं विना प्राप्तुं कथं अपि न हि क्षमन्ते" [**परे**] शुद्धस्वरूप अनुभवसे भ्रष्ट हैं जो जीव वे [**इदं ज्ञानं**] पूर्व ही कहा है समस्त भेदविकल्पसे रहित ज्ञानमात्र वस्तु उसको [**ज्ञानगुणं विना**] शुद्धस्वरूप अनुभव-शक्तिके विना [**प्राप्तुं**] प्राप्त करनेको [**कथं अपि**] हजार उपाय किये जाँय तो भी [**न हि क्षमन्ते**] निश्चयसे समर्थ नहीं होते हैं। कैसा है ज्ञानपद ? "साक्षात् मोक्षः" प्रत्यक्षतया सर्वथा प्रकार मोक्षस्वरूप है। और कैसा है ? "निरामयपदं" जितने उपद्रव क्लेश हैं उन सबसे रहित है। और कैसा है ? "स्वयं संवेद्यमानं" [**स्वयं**] आपके द्वारा [**संवेद्यमानं**] आस्वाद करने योग्य है। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानगुण ज्ञानगुणके द्वारा अनुभवयोग्य है। कारणान्तरके द्वारा ज्ञान गुण ग्राह्य नहीं। कैसी है मिथ्यादृष्टि जीवराशि ? "कर्मभिः क्लिश्यन्तां" विशुद्ध शुभोपयोगरूप परिणाम, जैनोक्त सूत्रका अध्ययन, जीवादिद्रव्योंके स्वरूपका बारबार स्मरण, पञ्चपरमेष्ठीकी भक्ति इत्यादि हैं

जो अनेक क्रियाभेद उनके द्वारा [क्लिश्यन्तां] बहुत आक्षेप [घटाटोप] करते है तो करो तथापि शुद्ध स्वरूपकी प्राप्ति होगी सो तो शुद्ध ज्ञान द्वारा होगी । कैसी है करतूति ? "स्वय एव दुष्करतरैं" [स्वयं एव] सहजपने [दुष्करतरैः] कष्टसाध्य है । भावार्थ इस प्रकार है कि जितनी क्रिया है वह सब दु खात्मक है। शुद्धस्वरूप अनुभवकी नाई सुखस्वरूप नही है। और कैसी है ? "मोक्षोन्मुखै" [मोक्ष] सकलकर्मक्षय उसकी [उन्मुखैः] परम्परा–आगे मोक्षका कारण होगी ऐसा भ्रम उत्पन्न होता है सो झूठा है। 'च" और कैसे है मिथ्यादृष्टि जीव ? "महाव्रततपोभारेण चिर भग्ना क्लिश्यन्ता" [महाव्रत] हिंसा, अनृत, स्तेय, अब्रह्म, परिग्रहसे रहितपना [तपः] महा परीषहोका सहना उनका [भार] बहुत बोझ उसके द्वारा [चिरं] बहुत काल पर्यन्त [भग्नाः] मरके चूरा होते हुए [क्लिश्यन्तां] बहुत कष्ट करते हैं तो करो तथापि ऐसा करते हुए कर्मक्षय तो नही होता ॥१०-१४२॥

(द्रुतविलम्वित)

पदमिदं ननु कर्मदुरासदं
सहजबोधकलासुलभं किल ।
तत इदं निजबोधकलाबलात्
कलयितुं यततां सततं जगत् ॥११-१४३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तत ननु इद जगत् इद पद कलयितु सतत यतता" [ततः] तिस कारणसे [ननु] अहो [इदं जगत्] विद्यमान है जो त्रैलोक्यवर्ती जीवराशि वह [इदं पदं] निर्विकल्प शुद्ध ज्ञानमात्रवस्तु उसका [कलयितुं] निरन्तर अभ्यास करनेके निमित्त [सततं] अखण्ड धाराप्रवाहरूप [यततां] यत्न करे । किस कारणके द्वारा "निजबोधकलाबलात्" [निजबोध] शुद्धज्ञान उसका [कला] प्रत्यक्ष अनुभव उसका [बलात्] समर्थपना उससे । क्योकि "किल" निश्चयसे ज्ञानपद "कर्मदुरासद" [कर्म] जितनी क्रिया है उससे [दुरासदं] अप्राप्य है और ? "सहजबोधकलासुलभ" [सहजबोध] शुद्धज्ञान उसका [कला] निरन्तर अनुभव उसके द्वारा [सुलभं] सहज ही प्राप्त होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि शुभ अशुभरूप है जितनी क्रिया उनका ममत्व छोडकर एक शुद्ध स्वरूप-अनुभव कारण है ॥११-१४३॥

(उपजाति)

अचिन्त्यशक्तिः स्वयमेव देव
श्चिन्मात्रचिन्तामणिरेष यस्मात् ।
सर्वार्थसिद्धात्मतया विधत्ते
ज्ञानी किमन्यस्य परिग्रहेण ॥ १२-१४४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ज्ञानी (ज्ञान) विधत्ते" [**ज्ञानी**] सम्यग्दृष्टि जीव [**ज्ञानं**] निर्विकल्प चिद्रूप वस्तु उसको [**विधत्ते**] निरन्तर अनुभवता है। क्या जानकर ? "सर्वार्थसिद्धात्मतया" [**सर्वार्थसिद्ध**] चतुर्गतिसंसारसम्बन्धी दु खका विनाश, अतीन्द्रिय सुखकी प्राप्ति [**आत्मतया**] ऐसा कार्य सिद्ध होता है जिससे ऐसा है शुद्ध ज्ञानपद । "अन्यस्य परिग्रहेण कि" [**अन्यस्य**] शुद्धस्वरूप अनुभव उससे बाह्य हैं जितने विकल्प । विवरण—शुभ-अशुभ क्रियारूप अथवा रागादि विकल्परूप अथवा द्रव्योके भेद विचाररूप ऐसे है जो अनेक विकल्प उनका [**परिग्रहेण**] सावधानरूपसे प्रतिपालन अथवा आचरण अथवा स्मरण उसके द्वारा [**किं**] कौन कार्यसिद्धि, अपि तु कोई कार्यसिद्धि नही । ऐसा किस कारणसे ? "यस्मात् एष स्वय चिन्मात्र चिन्तामणि एव" [**यस्मात्**] जिस कारणसे [**एषः**] शुद्ध जीववस्तु [**स्वयं**] आपमे [**चिन्मात्र-चिन्तामणिः**] शुद्ध ज्ञानमात्र ऐसा अनुभव चिन्तामणिरत्न है। [**एव**] इस बातको निश्चय जानना, धोखा कुछ नही है । भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार किसी पुण्यवान् जीवके हाथमे चिन्तामणिरत्न होता है, उससे सब मनोरथ पूरा होता है, वह जीव लोहा, ताबा, रूपा ऐसी धातुका सग्रह करता नही उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीवके पास शुद्ध-स्वरूप-अनुभव ऐसा चिन्तामणि रत्न है, उसके द्वारा सकल कर्मक्षय होता है। परमात्म-पदकी प्राप्ति होती है। अतीन्द्रिय सुखकी प्राप्ति होती है। वह सम्यग्दृष्टि जीव शुभ-अशुभरूप अनेक क्रियाविकल्पका सग्रह करता नही, कारण कि इनसे कार्यसिद्धि नही होती । और कैसा है ? "अचिन्त्यशक्ति" वचनगोचर नही है महिमा जिसकी ऐसा है ? और कैसा है ? "देव" परम-पूज्य है ॥१२-१४४॥

(वसन्ततिलका)

इत्थं परिग्रहमपास्य समस्तमेव
सामान्यतः स्वपरयोरविवेकहेतुम् ।

अज्ञानमुज्झितुमना अधुना विशेषाद्
भूयस्तमेव परिहर्त्तुमय प्रवृत्तः ।।१३-१४५।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अधुना अय भूय प्रवृत्त" [अधुना] यहा से आरम्भ कर [अयं] ग्रन्थका कर्ता [भूयः प्रवृत्तः] कुछ विशेष कहनेका उद्यम करता है। कैसा है ग्रन्थका कर्ता ? "अज्ञान उज्झितुमना" [अज्ञानं] जीवका कर्मका एकत्वबुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव वह [उज्झितुमना] जैसे छूटे वैसा है अभिप्राय जिसका ऐसा है। क्या कहना चाहता है ? "त एव विशेपात् परिहतु" [तं एव] जितना पर द्रव्यरूप परिग्रह है उसको [विशेपात् परिहतुं] भिन्न-भिन्न नामोके विवरण सहित छोडनेके लिए अथवा छुडानेके लिए। यहाँ तक कहा सो क्या कहा ? "इत्थ समस्त एव परिग्रह सामान्यतः अपास्य" [इत्थं] यहाँ तक जो कुछ कहा सो ऐसा कहा [समस्तं एव परिग्रहं] जितनी पुद्गल कर्मकी उपाधिरूप सामग्री उसको [सामान्यतः अपास्य] जो कुछ परद्रव्य सामग्री है सो त्याज्य है ऐसा कहकर परद्रव्यका त्याग कहा। अब विशेषरूप कहते है। विशेषार्थ इस प्रकार है—जितना परद्रव्य उतना त्याज्य है ऐसा कहा। अब क्रोध परद्रव्य है, इसलिए त्याज्य है। मान परद्रव्य है, इसलिए त्याज्य है इत्यादि। भोजन परद्रव्य है, इसलिए त्याज्य है। पानी पीना पर द्रव्य है, इसलिए त्याज्य है। कैसा है पर द्रव्य परिग्रह ? "स्वपरयो अविवेकहेतु" [स्व] शुद्धचिद्रूपमात्र वस्तु [परयोः] द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म उनके [अविवेक] एकत्वरूप सस्कार उसका [हेतुं] कारण है। भावार्थ इस प्रकार है कि मिथ्यादृष्टि जीवकी जीव कर्ममे एकत्वबुद्धि है, इसलिए मिथ्यादृष्टिके पर द्रव्यका परिग्रह घटित होता है। सम्यग्दृष्टि जीवके भेदबुद्धि है, इसलिए परद्रव्यका परिग्रह घटित नही होता। ऐसा अर्थ यहा से लेकर कहा जायगा ।।१३-१४५।।

(स्वागता)

पूर्वबद्धनिजकर्मविपाकात्
ज्ञानिनो यदि भवत्युपभोगः ।
तद्भवत्वथ च रागवियोगात्
नूनमेति न परिग्रहभावम् ।।१४-१४६।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"यदि ज्ञानिन· उपभोगः भवति तत् भवतु" [**यदि**] जो कदाचित् [**ज्ञानिनः**] सम्यग्दृष्टि जीवके [**उपभोगः**] शरीर आदि सम्पूर्ण भोग-सामग्री [**भवति**] होती है—सम्यग्दृष्टि जीव भोगता है [**तत्**] तो [**भवतु**] सामग्री होवे। सामग्रीका भोग भी होवे, "नून परिग्रहभाव न एति" [**नूनं**] निश्चयसे [**परिग्रहभावं**] विषय–सामग्रीकी स्वीकारता ऐसे ग्रभिप्रायको [**न एति**] नही प्राप्त होता है। किस कारणसे ? "अथ च रागवियोगात्" [**अथ च**] वहा से लेकर सम्यग्दृष्टि हुआ, [**रागवियोगात्**] वहा से लेकर विषयसामग्रीमे राग, द्वेष, मोहसे रहित हुग्रा, इस कारणसे। कोई प्रश्न करता है कि ऐसे विरागीके—सम्यग्दृष्टि जीवके विपयसामग्री क्यो होती है ? उत्तर इस प्रकार है—"पूर्वबद्धनिजकर्मविपाकात्" [**पूर्वबद्ध**] सम्यक्त्व उत्पन्न होनेके पहले मिथ्यादृष्टि जीव था, रागी था, वहाँ रागभावके द्वारा बाँधा था जो [**निजकर्म**] अपने प्रदेशोमे ज्ञानावरणादिरूप कार्मणवर्गणा उसके [**विपाकात्**] उदयसे। भावार्थ इस प्रकार है कि राग द्वेष मोह परिणामके मिटने पर द्रव्यरूप बाह्य सामग्री का भोग बन्धका कारण नही है, निर्जराका कारण है, इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव अनेक प्रकारकी विषयसामग्री भोगता है परन्तु रजक परिणाम नही है, इसलिए बन्ध नही है, पूर्वमे बाँधा था जो कर्म उसकी निर्जरा है ॥१४-१४६॥

(स्वागता)

वेद्यवेदकविभावचलत्वाद्
वेद्यते न खलु कांक्षितमेव।
तेन कांक्षति न किञ्चन विद्वान्
सर्वतोऽप्यतिविरक्तिमुपैति ॥१५-१४७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तेन विद्वान् किश्चन न काक्षति" [**तेन**] तिस कारण से [**विद्वान्**] सम्यग्दृष्टि जीव [**किञ्चन**] कर्मका उदय करता है नाना प्रकारकी सामग्री उसमेसे कोई सामग्री [**न कांक्षति**] कर्मकी सामग्रीमे कोई सामग्री जीवको सुखका कारण ऐसा नही मानता है, सर्व सामग्री दु खका कारण ऐसा मानता है। ग्रौर कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "सर्वत ग्रतिविर्रक्ति उपैति" [**सर्वतः**] जितनी कर्मजनित सामग्री है उससे मन, वचन, काय त्रिशुद्धिके द्वारा [**अतिविरक्ति**] सर्वथा त्यागरूप [**उपैति**] परिणमता है। किस कारणसे ऐसा है ? "यत खलु काक्षित न वेद्यते एव" [**यत·**]

जिस कारणसे [खलु] निश्चयसे [कांक्षितं] जो कुछ चिन्तवन किया है वह [न वेद्यते] नही प्राप्त होता है। [एव] ऐसा ही है। किस कारणसे ? "वेद्यवेदकविभावचलत्वात्" [वेद्य] वाछी (इच्छी) जाती है जो वस्तुसामग्री, [वेदक] वाछारूप जीवका अशुद्ध-परिणाम, ऐसे हैं [विभाव] दोनो अशुद्ध विनश्वर कर्मजनित, इस कारणसे [चलत्वात्] क्षण प्रति क्षण प्रति औरसा होते है। कोई अन्य चिन्ता जाता है, कुछ अन्य होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि अशुद्ध रागादि परिणाम तथा विषयसामग्री दोनों समय समय प्रति विनश्वर है, इसलिए जीवका स्वरूप नही। इस कारण सम्यग्दृष्टिके ऐसे भावोका सर्वथा त्याग है। इसलिए सम्यग्दृष्टिको वन्ध नही है, निर्जरा है ॥ १५-१४७ ॥

(स्वागता)

ज्ञानिनो न हि परिग्रहभावं
कर्म रागरसरिक्ततयैति ।
रंगयुक्तिरकषायितवस्त्रे
स्वीकृतैव हि बहिर्लुठतीह ॥१६-१४८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"कर्म ज्ञानिन परिग्रहभाव न हि एति" [कर्म] जितनी विपयसामग्री भोगरूप क्रिया है वह [ज्ञानिनः] सम्यग्दृष्टि जीवके [परिग्रहभावं] ममतारूप स्वीकारपनेको [न हि एति] निश्चयसे नही प्राप्त होती है। किस कारणसे ? "रागरसरिक्ततया" [राग] कर्मकी सामग्रीको आपा जानकर रजक परिणाम ऐसा जो [रस] वेग, उससे [रिक्ततया] रीता है, ऐसा भाव होनेसे। दृष्टान्त कहते हैं—"हि इह अकपायितवस्त्रे रगयुक्ति वहि लुठति एव" [हि] जैसे [इह] सव लोकमे प्रगट है कि [अकषायित] नही लगा है हरडा फिटकरी लोद जिसको ऐसे [वस्त्रे] कपडामे [रंगयुक्तिः] मजीठके रगका सयोग किया जाता है तथापि [वहिः लुठति] कपड़ासे नही लगता है, वाहर वाहर फिरता है उस प्रकार। भावार्थ ऐसा है कि सम्यग्दृष्टि जीवके पचेन्द्रिय विपयसामग्री है, भोगता भी है। परन्तु अन्तरग राग द्वेष मोहभाव नही है, इस कारण कर्मका बन्ध नही है, निर्जरा है। कैसी है रगयुक्ति ? "स्वीकृता" कपडा-रग इकट्ठा किया है ॥१६-१४८॥

(स्वागता)

ज्ञानवान् स्वरसतोऽपि यतः स्यात्
सर्वरागरसवर्जनशीलः ।
लिप्यते सकलकर्मभिरेषः
कर्ममध्यपतितो पि ततो न ।।१७-१४९।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"यत ज्ञानवान् स्वरसत अपि सर्वरागरसवर्जनशील: स्यात्" [**यतः**] जिस कारणसे [**ज्ञानवान्**] शुद्धस्वरूप अनुभवशीली है जो जीव वह [**स्वरसतः**] विभाव परिणमन मिटा है, इस कारण शुद्धतारूप द्रव्य परिणमा है, इसलिए [**सर्वराग**] जितना राग द्वेष मोहपरिणामरूप [**रस**] अनादिका संस्कार, उससे [**वर्जनशीलः स्यात्**] रहित है स्वभाव जिसका ऐसा है । "तत एप: कर्मगध्य-पतित अपि सकलकर्मभि: न लिप्यते" [**ततः**] तिस कारणसे [**एषः**] सम्यग्दृष्टि जीव [**कर्म**] कर्मके उदयजनित अनेक प्रकारकी भोगसामग्री उसमे [**मध्यपतितः अपि**] पचेन्द्रिय भोगसामग्री भोगता है, सुख दु खको प्राप्त होता है तथापि [**सकलकर्मभिः**] आठो प्रकारके हैं जो ज्ञानावरणादि कर्म, उनके द्वारा [**न लिप्यते**] नही बाँधा जाता है । भावार्थ इस प्रकार है कि अन्तरंग चिकनापन नही है, इससे बन्ध नही होता है, निर्जरा होती है ।। १७-१४९ ।।

(शार्दूलविक्रीडित)

यादृक् तादृगिहास्ति तस्य वशतो यस्य स्वभावो हि यः
कर्तुं नैष कथञ्चनापि हि परैरन्यादृशः शक्यते ।
अज्ञानं न कदाचनापि हि भवेज्ज्ञानं भवत्सन्ततं
ज्ञानिन् भुंक्ष्व परापराधजनितो नास्तीह बन्धस्तव ।१८-१५०।

खण्डान्वय सहित अर्थ—यहा कोई प्रश्न करता है कि सम्यग्दृष्टि जीव परिणामसे शुद्ध है तथापि पचेन्द्रिय विषय भोगता है सो विषयको भोगते हुए कर्मका बन्ध है कि नही है ? समाधान इस प्रकार है कि कर्मका बन्ध नही है । "ज्ञानिन् भुंक्ष्व" [**ज्ञानिन्**] भो सम्यग्दृष्टि जीव ! [**भुंक्ष्व**] कर्मके उदयसे प्राप्त हुई है जो भोगसामग्री उसको भोगते हो तो भोगो "तथापि तव बन्ध नास्ति" [**तथापि**] तो भी [**तव**] तेरे [**बन्धः**] ज्ञानावरणादि कर्मका आगमन [**नास्ति**] नही है । कैसा बन्ध नही

है ? "परापराधजनित" [पर] भोगसामग्री, उसका [अपराध] भोगनेमे आना, उससे [जनितः] उत्पन्न हुआ । भावार्थ इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि जीवको विषयसामग्री भोगते हुए वन्ध नही है, निर्जरा है । कारण कि सम्यग्दृष्टि जीव सर्वथा अवश्यकर परिणामोसे शुद्ध है । ऐसा ही वस्तुका स्वरूप है । परिणामोकी शुद्धता रहते हुए बाह्य भोगसामग्रीके द्वारा वन्ध किया नही जाता । ऐसा वस्तुका स्वरूप है । यहाँ कोई आशका करता है कि सम्यग्दृष्टि जीव भोग भोगता है सो भोग भोगते हुए रागरूप अशुद्ध परिणाम होता होगा सो उस रागपरिणामके द्वारा वन्ध होता होगा सो ऐसा तो नही । कारण कि वस्तुका स्वरूप ऐसा है जो शुद्ध ज्ञान होनेपर भोगसामग्रीको भोगते हुए सामग्रीके द्वारा अशुद्धरूप किया नही जाता । कितनी ही भोगसामग्री भोगो तथापि शुद्धज्ञान अपने स्वरूप–शुद्ध ज्ञानस्वरूप रहता है । वस्तुका ऐसा सहज है । ऐसा कहते है—'ज्ञान कदाचनापि अज्ञानं न भवेत्" [ज्ञानं] शुद्ध स्वभावरूप परिणामा है आत्मद्रव्य, वह [कदाचन अपि] अनेक प्रकार भोगसामग्रीको भोगता हुआ अतीत, अनागत, वर्तमान कालमे [अज्ञानं] विभाव अशुद्धरागादिरूप [न भवेत्] नही होता । कैसा है ज्ञान ? "सन्तत भवत्" शाश्वत शुद्धत्वरूप जीवद्रव्य परिणामा है, मायाजालके समान क्षरण विनश्वर नही है । आगे दृष्टान्तके द्वारा वस्तुका स्वरूप साधते है—"हि यस्य वशत य यादृक् स्वभाव तस्य तादृक् इह अस्ति" [हि] जिस कारणसे [यस्य] जिस किसी वस्तुका [यः यादृक् स्वभावः] जो स्वभाव जैसा स्वभाव है वह [वशतः] अनादि-निधन है [तस्य] उस वस्तुका [तादृक् इह अस्ति] वैसा ही है । जिस प्रकार शखका श्वेत स्वभाव है, श्वेत प्रगट है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टिका शुद्ध परिणाम होता हुआ शुद्ध है । "एप परैं कथञ्चन अपि अन्यादृश कर्तुं न शक्यते" [एपः] वस्तुका स्वभाव [परैः] अन्य वस्तुके किये [कथञ्चन अपि] किसी प्रकार [अन्यादृशः] दूसरेरूप [कर्तुं] करनेको [न शक्यते] नही समर्थ है । भावार्थ इस प्रकार है कि स्वभावसे श्वेत शख है सो शख काली मिट्टी खाता है, पीली मिट्टी खाता है, नाना वर्ण मिट्टी खाता है । ऐसी मिट्टी खाता हुआ शख उस मिट्टीके रगका नही होता है, अपने श्वेतरूप रहता है । वस्तुका ऐसा ही सहज है । उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव स्वभावसे राग द्वेप मोहसे रहित शुद्ध परिणामरूप है, वह जीव नाना प्रकार भोगसामग्री भोगता है तथापि अपने शुद्ध परिणामरूप परिणमता है । सामग्रीके रहते हुए अशुद्धरूप परिणमाया जाता नही ऐसा वस्तुका स्वभाव है, इसलिए सम्यग्दृष्टिके कर्मका वन्ध नही है, निर्जरा है ॥१८-१५०॥

(शार्दूलविक्रीडित)

ज्ञानिन् कर्म न जातु कर्तुमुचितं किंचित्तथाप्युच्यते
भुंक्षे हन्त न जातु मे यदि परं दुर्भुक्त एवासि भोः ।
बन्धः स्यादुपभोगतो यदि न तत्किं कामचारोऽस्ति ते
ज्ञानं सन्वस बन्धमेष्यपरथा स्वस्यापराधाद्ध्रुवम् ।।१६-१५१।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ज्ञानिन् जातु कर्म कर्तुं न उचित" [ज्ञानिन्] हे सम्यग्दृष्टि जीव ! [जातु] किसी प्रकार कभी भी [कर्म] ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलपिण्ड [कर्तुं] बाधनेको [न उचितं] योग्य नही है । भावार्थ इस प्रकार है कि सम्यग्दृष्टि जीवके कर्मका बन्ध नही है । "तथापि किञ्चित् उच्यते" [तथापि] तो भी [किञ्चित् उच्यते] कुछ विशेष है वह कहते है—"हन्त यदि मे पर न जातु भुंक्षे भो दुर्भुक्तो एव असि" [हन्त] कडक वचनके द्वारा कहते है । [यदि] जो ऐसा जानकर भोगसामग्रीको भोगता है कि [मे] मेरे [परं न जातु] कर्मका बन्ध नही है । ऐसा जानकर [भुंक्षे] पचेन्द्रियविषय भोगता है तो [भोः] अहो जीव ! [दुर्भुक्तः एव असि] ऐसा जानकर भोगोका भोगना अच्छा नही । कारण कि वस्तुस्वरूप इस प्रकार है—"यदि उपभोगत बन्ध न स्यात् तत् ते किं कामचारः अस्ति" [यदि] जो ऐसा है कि [उपभोगतः] भोग सामग्रीको भोगते हुए [बन्धः न स्यात्] ज्ञानावरणादि कर्मका बन्ध नही है [तत्] तो [ते] अहो सम्यग्दृष्टि जीव ! तेरे [कामचारः] स्वेच्छा आचरण [किं अस्ति] क्या ऐसा है अपि तु ऐसा तो नही है । भावार्थ इस प्रकार है कि सम्यग्दृष्टि जीवके कर्मका वन्ध नही है । कारण कि सम्यग्दृष्टि जीव राग द्वेष मोहसे रहित है । वही सम्यग्दृष्टि जीव, यदि सम्यक्त्व छूटे मिथ्यात्वरूप परिणमे तो, ज्ञानावरणादि कर्मबन्धको अवश्य करे, क्योकि मिथ्यादृष्टि होता हुआ राग द्वेष मोहरूप परिणमता है—ऐसा कहते है "ज्ञान सन् वस" सम्यग्दृष्टि होता हुआ जितने काल प्रवर्तता है उतने काल वन्ध नही है "अपरथा स्वस्य अपराधात् बन्ध ध्रुव एषि" [अपरथा] मिथ्यादृष्टि होता हुआ [स्वस्य अपराधात्] अपने ही दोपसे—रागादि अशुद्धरूप परिणमनके कारण [वन्ध ध्रुवं एषि] ज्ञानावरणादि कर्मबन्धको तू ही अवश्य करता है ॥ १६-१५१ ॥

(शार्दूलविक्रीडित)

कर्तारं स्वफलेन यत्किल बलात्कर्मैव नो योजयेत्
कुर्वाणः फललिप्सुरेव हि फलं प्राप्नोति यत्कर्मणः।
ज्ञानं संस्तदपास्तरागरचनो नो बध्यते कर्मणा
कुर्वाणोऽपि हि कर्म तत्फलपरित्यागैकशीलो मुनिः।२०-१५२।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तत् मुनि कर्मणा नो बध्यते" [तत्] तिस कारणसे [मुनिः] शुद्धस्वरूप अनुभव विराजमान सम्यग्दृष्टि जीव [कर्मणा] ज्ञानावरणादि कर्मसे [नो बध्यते] नही बँधता है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "हि कर्म कुर्वाण अपि" [हि] निश्चयसे [कर्म] कर्मजनित विपयसामग्री भोगरूप क्रियाको [कुर्वाणः अपि] करता है—यद्यपि भोगता है तो भी "तत्फलपरित्यागैकशील" [तत्फल] कर्मजनित सामग्रीमे आत्मबुद्धि जानकर रजक परिणामका [परित्याग] सर्वथा प्रकार स्वीकार छूट गया ऐसा है [एक] सुखरूप [शीलः] स्वभाव जिसका, ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि सम्यग्दृष्टि जीवके विभावरूप मिथ्यात्व परिणाम मिट गया है, उसके मिटनेसे अनाकुलत्वलक्षण अतीन्द्रिय सुख अनुभवगोचर हुआ है। और कैसा है ? "ज्ञान सन् तदपास्तरागरचन" ज्ञानमय होते हुए दूर किया है रागभाव जिसमेसे ऐसा है। इस कारण कर्मजनित है जो चार गतिकी पर्याय तथा पचेन्द्रियोके भोग वे समस्त आकुलतालक्षण दु खरूप है। सम्यग्दृष्टि जीव ऐसा ही अनुभव करता है। इस कारण जितना कुछ साता-असातारूप कर्मका उदय, उससे जो कुछ इष्ट विपयरूप अथवा अनिष्ट विषयरूप सामग्री सो सम्यग्दृष्टिके सर्व अनिष्टरूप है। इसलिए जिस प्रकार किसी जीवके अशुभ कर्मके उदय रोग, शोक, दारिद्र आदि होता है, उसे जीव छोडनेको वहुत ही करता है, परन्तु अशुभ कर्मके उदय नही छूटता है, इसलिए भोगना ही पडे। उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीवके, पूर्वमे अज्ञान परिणामके द्वारा वाधा है जो सातारूप असातारूप कर्म उसके उदय अनेक प्रकार विपयसामग्री होती है, उसे सम्यग्दृष्टि जीव दु खरूप अनुभवता है, छोडनेको वहुत ही करता है। परन्तु जव तक क्षपकश्रेणी चढे तव तक छूटना अशक्य है, इसलिए परवश हुआ भोगता है। हृदयमे अत्यन्त विरक्त है, इसलिए अरजक है, इसलिए भोग सामग्रीको भोगते हुए कर्मका वन्ध नही है, निर्जरा है। यहाँ दृष्टान्त कहते हैं—"यत् किल कर्म कर्तार स्वफलेन वलात् योजयेत्" [यत्] जिस

कारणसे ऐसा है। [**किल**] ऐसा ही है, सन्देह नही कि [**कर्म**] राजाकी सेवा आदिसे लेकर जितनी कर्मभूमिसम्बन्धी क्रिया [**कर्तारं**] क्रियामें रजक होकर-तन्मय होकर करता है जो कोई पुरुष उसको, [**स्वफलेन**] जिस प्रकार राजाकी सेवा करते हुए द्रव्यकी प्राप्ति, भूमिकी प्राप्ति, जैसे खेती करते हुए अन्नकी प्राप्ति—[**बलात् योजयेत्**] अवश्यकर कर्ता पुरुषका क्रियाके फलके साथ सयोग होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जो क्रियाको नही करता उसको क्रियाके फलकी प्राप्ति नही होती। उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीवको बन्ध नही होता, निर्जरा होती है। कारण कि सम्यग्दृष्टि जीव भोगसामग्री क्रियाका कर्ता नही है, इसलिए क्रियाका फल नही है कर्मका बन्ध, वह तो सम्यग्दृष्टिके नही है। दृष्टातसे दृढ करते है—'यत् कुर्वाण फललिप्सु ना एव हि कर्मण फल प्राप्नोति" [**यत्**] जिस कारणसे पूर्वोक्त नाना प्रकारकी क्रिया [**कुर्वाणः**] कोई करता हुआ [**फललिप्सुः**] फलकी अभिलाषा करके क्रियाको करता है ऐसा [**ना**] कोई पुरुष [**कर्मणः फलं**] क्रियाके फलको [**प्राप्नोति**] प्राप्त होता है। भावार्थ इस प्रकार है—जो कोई पुरुष क्रिया करता है, निरभिलाष होकर करता है उसको तो क्रियाका फल नही है। २०-१५२।

(शार्दूलविक्रीडित)

त्यक्तं येन फलं स कर्म कुरुते नेति प्रतीमो वयं
किंत्वस्यापि कुतोऽपि किंचिदपि तत्कर्मावशेनापतेत् ।
तस्मिन्नापतिते त्वकम्पपरमज्ञानस्वभावे स्थितो
ज्ञानी किं कुरुतेऽथ किं न कुरुते कर्मेति जानाति कः ।२१-१५३।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"येन फल त्यक्त स कर्म कुरुते इति वय न प्रतीम." [**येन**] जिस सम्यग्दृष्टि जीवने [**फलं त्यक्तं**] कर्मके उदयसे है जो भोगसामग्री उसका [**फलं**] अभिलाप [**त्यक्तं**] सर्वथा ममत्व छोड दिया है [**सः**] वह सम्यग्दृष्टि जीव [**कर्म कुरुते**] ज्ञानावरणादि कर्मको करता है [**इति वयं न प्रतीमः**] ऐसी तो हम प्रतीति नही करते। भावार्थ इस प्रकार है कि जो कर्मके उदयके प्रति उदासीन है उसे कर्मका बन्ध नही है, निर्जरा है। "किन्तु" कुछ विशेष—"अस्य अपि" इस सम्यग्दृष्टिके भी "अवशेन कुत अपि किञ्चित् अपि कर्म आपतेत्" [**अवशेन**] विना ही अभिलाष किये वलात्कार ही [**कुतः अपि किञ्चित् अपि कर्म**] पहले ही बाँधा था जो ज्ञानावरणादि

कर्म, उसके उदयसे हुई है जो पचेन्द्रियविपयभोगक्रिया वह [आपतेत्] प्राप्त होती है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार किसीको रोग, शोक, दारिद्र विना ही वाछाके होता है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीवके जो कोई क्रिया होती है सो विना ही वाछाके होती है। "तस्मिन् आपतिते" अनिच्छक है सम्यग्दृष्टि पुरुप, उसको वलात्कार होती है भोगक्रिया, उसके होते हुए "ज्ञानी किं कुरुते" [ज्ञानी] सम्यग्दृष्टि जीव [किं कुरुते] अनिच्छक होकर कर्मके उदयमे क्रिया करता है तो क्रियाका कर्ता हुआ क्या ? "अथ न कुरुते" सर्वथा क्रियाका कर्ता सम्यग्दृष्टि जीव नही है। किसका कर्ता नही है ? "कर्म इति" भोगक्रियाका। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "जानाति क" ज्ञायकस्वरूपमात्र है। तथा कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "अकम्पपरमज्ञानस्वभावे स्थित" निश्चल परम ज्ञान-स्वभावमे स्थित है ॥२१-१५३॥

(शार्दूलविक्रीडित)

सम्यग्दृष्टय एव साहसमिदं कर्तुं क्षमन्ते परं
यद्वज्रेऽपि पतत्यमी भयचलत्त्रैलोक्यमुक्ताध्वनि।
सर्वामेव निसर्गनिर्भयतया शंकां विहाय स्वयं
जानन्तः स्वमवध्यबोधवपुषं बोधाच्च्यवन्ते न हि।२२-१५४।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"सम्यग्दृष्टय एव इदं साहस कर्तुं क्षमन्ते" [सम्यग्दृष्टयः] स्वभावगुणरूप परिणामी है जो जीवराशि वह [एव] निश्चयसे [इदं साहसं] ऐसा धीरपना [कर्तुं] करनेके लिए [क्षमन्ते] समर्थ होती है। कैसा है साहस ? "परं" सवसे उत्कृष्ट है। कौन साहस ? "यत् वज्रे पतति अपि अमी बोधात् न हि च्यवन्ते" [यत्] जो साहस ऐसा है कि [वज्रे पतति अपि] महान् वज्रके गिरने पर भी [अमी] सम्यग्दृष्टि जीवराशि [बोधात्] शुद्धस्वरूपके अनुभवसे [न हि च्यवन्ते] सहज गुणसे स्खलित नही होती है। भावार्थ इस प्रकार है—कोई अज्ञानी ऐसा मानेगा कि सम्यग्दृष्टि जीवके साताकर्मके उदय अनेक प्रकार इष्ट भोगसामग्री होती है, असाता-कर्मके उदय अनेक प्रकार रोग, शोक, दारिद्र, परीषह, उपसर्ग इत्यादि अनिष्ट सामग्री होती है, उसको भोगते हुए शुद्धस्वरूप अनुभवसे चूकता होगा। उसका समाधान इस प्रकार है कि अनुभवसे नही चूकता है, जैसा अनुभव है वैसा ही रहता है, वस्तुका ऐसा ही स्वरूप है। कैसा है वज्र ? "भयचलत्त्रैलोक्यमुक्ताध्वनि" [भय] वज्रके गिरने

पर उसके त्राससे [चलत्] चलायमान ऐसी जो [त्रैलोक्य] सर्व ससारी जीवराशि, उसके द्वारा [मुक्त] छोड़ी गई है [अध्वनि] अपनी अपनी क्रिया जिसके गिरने पर, ऐसा है वज्र। भावार्थ इस प्रकार है—ऐसा है उपसर्ग परीषह जिनके होनेपर मिथ्यादृष्टि-को ज्ञानकी सुध नही रहती है। कैसे हैं सम्यग्दृष्टि जीव ? "स्वं जानन्त" [स्वं] शुद्ध चिद्रूपको [जानन्तः] प्रत्यक्षरूपसे अनुभवते हैं। कैसा है स्व ? "अवध्यबोधवपुषं" [अवध्य] शाश्वत जो [बोध] ज्ञानगुण, वह है [वपुषं] शरीर जिसका, ऐसा है। क्या करके (अनुभव करता है ?) "सर्वां एव शका विहाय" [सर्वां एव] सात प्रकारके [शंकां] भयको [विहाय] छोडकर। जिस प्रकार भय छूटता है उस प्रकार कहते हैं—"निसर्गनिर्भयतया" [निसर्ग] स्वभावसे [निर्भयतया] भयसे रहितपना होनेसे। भावार्थ इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि जीवोका निर्भय स्वभाव है, इस कारण सहज ही अनेक प्रकारके परीषह–उपसर्गका भय नही है। इसलिये सम्यग्दृष्टि जीवको कर्मका वन्ध नही है, निर्जरा है। कैसे है निर्भयपना ? "स्वयं" ऐसा सहज है ॥२२-१५४॥

(शार्दूलविक्रीडित)

लोकः शाश्वत एक एष सकलव्यक्तो विविक्तात्मन-
श्चिल्लोकं स्वयमेव केवलमयं यल्लोकयत्येककः ।
लोकोऽयं न तवापरस्तदपरस्तस्यास्ति तद्भीः कुतो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ।२३-१५५।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"स सहजं ज्ञान स्वयं सतत सदा विन्दति" [सः] सम्यग्दृष्टि जीव [सहजं] स्वभाव ही से [ज्ञानं] शुद्ध चैतन्यवस्तुको [विन्दति] अनुभवता है—आस्वादता है। कैसे अनुभवता है ? [स्वयं] अपनेमे आपको अनुभवता है। किस काल ? [सततं] निरन्तररूपसे [सदा] अतीत, अनागत, वर्तमानमे अनुभवता है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "नि शक:" सात भयोंसे रहित है। कैसा होनेसे ? "तस्य तद्भी. कुतः अस्ति" [तस्य] उस सम्यग्दृष्टिके [तद्भीः] इहलोकभय, परलोकभय [कुतः अस्ति] कहाँ से होवे ? अपि तु नही होता। जैसा विचार करते हुए भय नही होता वैसा कहते हैं—"तव अय लोकः तदपर अपर: न" [तव] भो जीव ! तेरा [अयं लोकः] विद्यमान है जो चिद्रूपमात्र वह लोक है। [तदपरः] उससे अन्य जो कुछ है इहलोक, परलोक। विवरण—इहलोक अर्थात्

वर्तमान पर्याय, उसमे ऐसी चिन्ता कि पर्याय पर्यन्त सामग्री रहेगी कि नही रहेगी। परलोक अर्थात् यहाँ से मर कर अच्छी गतिमे जावेगे कि नही जावेगे ऐसी चिन्ता। ऐसा जो [अपरः] इहलोक, परलोक पर्यायरूप [न] जीवका स्वरूप नही है। "यत् एष अय लोक केवल चिल्लोक स्वय एव लोकयति" [यत्] जिस कारणसे [एषः अयं लोकः] अस्तिरूप है जो चैतन्यलोक वह [केवलं] निर्विकल्प है। [चिल्लोकं स्वयं एव लोकयति] ज्ञानस्वरूप आत्माको स्वय ही देखता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जो जीवका स्वरूप ज्ञानमात्र सो तो ज्ञानमात्र ही है। कैसा है चैतन्यलोक ? "शाश्वत" अविनाशी है। और कैसा है ? "एकक" एक वस्तु है। और कैसा है ? "सकलव्यक्त" [सकल] त्रिकालमे [व्यक्तः] प्रगट है। किसको प्रगट है ? "विविक्तात्मन" [विविक्त] भिन्न है [आत्मनः] आत्मस्वरूप जिसको ऐसा है जो भेदज्ञानी पुरुष, उसे ॥२३-१५५॥

(शार्दूलविक्रीडित)

एषैकैव हि वेदना यदचलं ज्ञानं स्वयं वेद्यते
निर्भेदोदितवेद्यवेदकबलादेकं सदानाकुलैः।
नैवान्यागतवेदनैव हि भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ।२४-१५६।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"स स्वय सतत सदा ज्ञान विन्दति" [सः] सम्यग्दृष्टि जीव [स्वयं] अपने आप [सततं] निरन्तररूपसे [सदा] त्रिकालमे [ज्ञानं] जीवके शुद्धस्वरूपको [विन्दति] अनुभवता है—आस्वादता है। कैसा है ज्ञान ? "सहज" स्वभावसे ही उत्पन्न है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "नि शक" सात भयोसे मुक्त है। "ज्ञानिन तद्भी कुत" [ज्ञानिनः] सम्यग्दृष्टि जीवको [तद्भीः] वेदनाका भय [कुतः] कहाँ से होवे ? अपितु नही होता है। कारण कि "सदा अनाकुलै" सर्वदा भेदज्ञानसे विराजमान है जो पुरुष वे पुरुष "स्वय वेद्यते" स्वय ऐसा अनुभव करते है कि "यत् अचल ज्ञान एषा एका एव वेदना" [यत्] जिस कारणसे [अचलं ज्ञानं] शाश्वत है जो ज्ञान [एषा] यही [एका वेदना] जीवको एक वेदना है। [एव] निश्चयसे। "अन्यागतवेदना एव न भवेत्" [अन्या] इसे छोडकर जो अन्य [आगतवेदना एव] कर्मके उदयसे हुई है सुखरूप अथवा दु खरूप वेदना [न भवेत्] जीवको है ही नही। ज्ञान कैसा है ? "एक" शाश्वत

है—एकरूप है। किस कारणसे एकरूप है ? "निर्भेदोदितवेद्यवेदकवलात्" [निर्भेदोदित] अभेदरूपसे [वेद्यवेदक] जो वेदता है वही वेदा जाता है ऐसा जो [वलात्] समर्थपना, उसके कारण। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवका स्वरूप ज्ञान है, वह एकरूप है। जो साता-असाता कर्मके उदयसे सुख-दु.खरूप वेदना होती है वह जीवका स्वरूप नही है, इसलिए सम्यग्दृष्टि जीवको रोग उत्पन्न होनेका भय नही होता ॥ २४-१५६ ॥

(शार्दूलविक्रीडित)

यत्सन्नाशमुपैति तन्न नियतं व्यक्तेति वस्तुस्थिति-
र्ज्ञानं सत्स्वयमेव तत्किल ततस्त्रातं किमस्यापरैः ।
अस्यात्राणमतो न किंचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ।२५-१५७।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"स ज्ञान सदा विन्दति" [सः] सम्यग्दृष्टि जीव [ज्ञानं] शुद्धस्वरूप [सदा] तीनो कालोमे [विन्दति] अनुभवता है—आस्वादता है। कैसा है ज्ञान ? "सतत" निरन्तर वर्तमान है। और कैसा है ज्ञान ? "स्वयं" अनादिनिधन है। और कैसा है ? "सहजं" विना कारण द्रव्यरूप है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "नि.शक." कोई मेरा रक्षक है कि नही है ऐसे भयसे रहित है। किस कारणसे "ज्ञानिनः तद्भी. कुत." [ज्ञानिनः] सम्यग्दृष्टि जीवके [तद्भीः] 'मेरा रक्षक कोई है कि नही है ऐसा भय' [कुतः] कहाँ से होवे ? अपि तु नही होता है। "अतः अस्य किञ्चन अत्राणं न भवेत्" [अतः] इस कारणसे [अस्य] जीव वस्तुके [अत्राणं] अरक्षकपना [किञ्चन] परमाणुमात्र भी [न भवेत्] नही है। किस कारणसे नही है ? "यत् सत् तत् नाशं न उपैति" [यत् सत्] जो कुछ सत्तास्वरूप वस्तु है [तत् नाशं न उपैति] वह तो विनाशको नही प्राप्त होती है। "इति नियतं वस्तुस्थिति व्यक्ता" [इति] इस कारणसे [नियतं] अवश्य ही [वस्तुस्थितिः] वस्तुका अविनश्वरपना [व्यक्ता] प्रगट है। "किल तत् ज्ञानं स्वय एव सत् तत. अस्य अपरै कि त्रात" [किल] निश्चयसे [तत् ज्ञानं] ऐसा है जीवका शुद्धस्वरूप वह, [स्वयं एव सत्] सहज ही सत्तास्वरूप है। [ततः] तिस कारणसे [अस्य] जीवके स्वरूपकी [अपरैः] किसी द्रव्यांतरके द्वारा [किं त्रातं] क्या रक्षा की जायगी। भावार्थ इस प्रकार है कि सब जीवोंको ऐसा

भय उत्पन्न होता है कि 'मेरा रक्षक कोई है कि नही,' सो ऐसा भय सम्यग्दृष्टि जीवको नही होता। कारण कि वह ऐसा अनुभव करता है कि शुद्धजीवस्वरूप सहज ही शाश्वत है। इसकी कोई क्या रक्षा करेगा ॥२५-१५७॥

(शार्दूलविक्रीडित)

स्वं रूपं किल वस्तुनोऽस्ति परमा गुप्तिः स्वरूपे न यत्
शक्तः कोऽपि परः प्रवेष्टुमकृतं ज्ञानं स्वरूपं च नुः।
अस्यागुप्तिरतो न काचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥२६-१५८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"स ज्ञान सदा विन्दति" [**सः**] सम्यग्दृष्टि जीव [**ज्ञानं**] शुद्ध चैतन्यवस्तुको [**सदा विन्दति**] निरन्तर अनुभवता है—आस्वादता है। कैसा है ज्ञान ? "स्वय" अनादि सिद्ध है। और कैसा है ? "सहज" शुद्ध वस्तुस्वरूप है। और कैसा है ? "सतत' अखण्ड धाराप्रवाहरूप है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "नि शक" वस्तुको जतनसे रखा जाय, नही तो कोई चुरा लेगा ऐसा जो अगुप्तिभय उससे रहित है। "अत अस्य काचन अगुप्ति एव न भवेत् ज्ञानिन तद्भी. कुत" [**अतः**] इस कारणसे [**अस्य**] शुद्ध जीवके [**काचन अगुप्तिः**] किसी प्रकारका अगुप्तिपना [**न भवेत्**] नही है, [**ज्ञानिनः**] सम्यग्दृष्टि जीवके [**तद्भीः**] 'मेरा कुछ कोई छीन न लेवे' ऐसा अगुप्तिभय [**कुतः**] कहाँ से होवे ? अपितु नही होता। किस कारणसे ? "किल वस्तुन. स्वरूप परमा गुप्ति अस्ति" [**किल**] निश्चयसे [**वस्तुनः**] जो कोई द्रव्य है उसका [**स्वरूपं**] जो कुछ निज लक्षण है वह [**परमा गुप्तिः अस्ति**] सर्वथा प्रकार गुप्त है। किस कारणसे ? "यत् स्वरूपे क अपि पर प्रवेष्टु न शक्त" [**यत्**] जिस कारण-से [**स्वरूपे**] वस्तुके सत्त्वमे [**कः अपि परः**] कोई अन्य द्रव्य अन्य द्रव्यमे [**प्रवेष्टुं**] संक्रमणको [**न शक्तः**] समर्थ नही है। "नु ज्ञान स्वरूप च" [**नुः**] आत्मद्रव्यका [**ज्ञानं स्वरूपं**] चैतन्य स्वरूप है। [**च**] वही ज्ञानस्वरूप कैसा है ? "अकृत" किसीने किया नही, कोई हर सकता नही। भावार्थ इस प्रकार है कि सब जीवोको ऐसा भय होता है कि 'मेरा कुछ कोई चुरा लेगा, छीन लेगा', सो ऐसा भय सम्यग्दृष्टिको नही होता, जिस कारणसे सम्यग्दृष्टि ऐसा अनुभव करता है कि 'मेरा तो शुद्ध चैतन्यस्वरूप

है, उसको तो कोई चुरा सकता नही, छीन सकता नही, वस्तुका स्वरूप अनादि-निधन है' ॥२६-१५८॥

(शार्दूलविक्रीडित)

प्राणोच्छेदमुदाहरन्ति मरणं प्राणाः किलास्यात्मनो
ज्ञानं तत्स्वयमेव शाश्वततया नोच्छिद्यते जातुचित् ।
तस्यातो मरणं न किञ्चन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञान सदा विन्दति ।२७-१५९।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"स ज्ञान सदा विन्दति" [**सः**] सम्यग्दृष्टि जीव [**ज्ञानं**] शुद्धचैतन्य वस्तुको [**सदा**] निरन्तर [**विन्दति**] आस्वादता है। कैसा है ज्ञान ? "स्वय" अनादिसिद्ध है। और कैसा है ? "सतत" अखण्ड धाराप्रवाहरूप है। और कैसा है ? "सहज" बिना कारण सहज ही निष्पन्न है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "नि·शङ्क·" मरण-शकाके दोषसे रहित है। क्या विचारता हुआ नि·शक है ? "अत· तस्य मरणं किञ्चन न भवेत् ज्ञानिन तद्भी· कुत" [**अतः**] इस कारणसे [**तस्य**] आत्मद्रव्यके [**मरणं**] प्राणवियोग [**किञ्चन**] सूक्ष्ममात्र [**न भवेत्**] नही होता, तिस कारण [**ज्ञानिनः**] सम्यग्दृष्टिके [**तद्भीः**] मरणका भय [**कुतः**] कहाँ से होवे ? अपि तु नही होता। जिस कारणसे "प्राणोच्छेद मरण उदाहरन्ति" [**प्राणोच्छेदं**] इन्द्रिय, बल, उच्छ्वास, आयु—ऐसे हैं जो प्राण, उनका विनाश ऐसा जो [**मरणं**] मरण कहनेमें आता है [**उदाहरन्ति**] अरिहन्तदेव ऐसा कहते है। "किल आत्मन· ज्ञान प्राणा" [**किल**] निश्चयसे [**आत्मनः**] जीव द्रव्यका [**ज्ञानं प्राणाः**] शुद्धचैतन्यमात्र प्राण है। "तत् जातुचित् न उच्छिद्यते" [**तत्**] शुद्धज्ञान [**जातुचित्**] किसी कालमे [**न उच्छिद्यते**] नही विनशता है। किस कारणसे ? "स्वयं एव शाश्वततया" [**स्वयं एव**] बिना ही जतन [**शाश्वततया**] अविनश्वर है तिस कारणसे। भावार्थ इस प्रकार है कि सभी मिथ्यादृष्टि जीवोको मरणका भय होता है। सम्यग्दृष्टि जीव ऐसा अनुभवता है कि 'मेरा शुद्ध चैतन्यमात्र स्वरूप है सो तो विनशता नही, प्राण नष्ट होते है सो तो मेरा स्वरूप है ही नही, पुद्गलका स्वरूप है। इसलिए मेरा मरण होवे तो डरो, मैं किसलिये डरो, मेरा स्वरूप शाश्वत है' ॥२७-१५९॥

(शार्दूलविक्रीडित)

एकं ज्ञानमनाद्यनन्तमचलं सिद्धं किलैतत्स्वतो
यावत्तावदिदं सदैव हि भवेन्नात्र द्वितीयोदयः ।

तन्नाकस्मिकमत्र किञ्चन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहज ज्ञानं सदा विन्दति ।२८-१६०।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"स ज्ञान सदा विन्दति" [सः] सम्यग्दृष्टि जीव [ज्ञानं] शुद्धचैतन्य वस्तुको [सदा] त्रिकाल [विन्दति] आस्वादता है। कैसा है ज्ञान ? "स्वय" सहज ही से उपजा है। और कैसा है ? "सतत" अखण्ड धाराप्रवाहरूप है। और कैसा है ? "सहज" विना उपाय ऐसी ही वस्तु है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "नि शङ्क" आकस्मिक भयसे रहित है। आकस्मिक अर्थात् अनचिन्ता तत्काल ही अनिष्टका उत्पन्न होना। क्या विचारता है सम्यग्दृष्टि जीव ? "अत्र तत् आकस्मिक किञ्चन न भवेत् ज्ञानिन तद्भी कुत." [अत्र] शुद्धचैतन्य वस्तुमे [तत्] कहा है लक्षण जिसका ऐसा [आकस्मिकं] क्षणमात्रमे अन्य वस्तुसे अन्य वस्तुपना [किञ्चन न भवेत्] ऐसा कुछ है ही नही, तिस कारण [ज्ञानिनः] सम्यग्दृष्टि जीवके [तद्भीः] आकस्मिकपनाका भय [कुतः] कहाँ से होवे ? अपि तु नही होता। किस कारणसे ? "एतत् ज्ञान स्वत यावत्" [एतत् ज्ञानं] शुद्ध जीव वस्तु [स्वतः यावत्] आप सहज जैसी है जितनी है "इद तावत् सदा एव भवेत्" [इदं] शुद्ध वस्तुमात्र [तावत्] वैसी है उतनी है। [सदा] अतीत, अनागत, वर्तमान कालमे [एव भवेत्] निश्चयसे ऐसी ही है। "अत्र द्वितीयोदय न" [अत्र] शुद्ध वस्तुमे [द्वितीयोदयः] औरसा स्वरूप [न] नही होता है। कैसा है ज्ञान ? "एक" समस्त विकल्पोसे रहित है। और कैसा है ? "अनाद्यनन्त" नही है आदि, नही है अन्त जिसका ऐसा है। और कैसा है ? "अचल" अपने स्वरूपसे नही विचलित होता। और कैसा है ? "सिद्ध" निष्पन्न है ॥२८–१६०॥

(मन्दाक्रान्ता)

टंकोत्कीर्णस्वरसनिचितज्ञानसर्वस्वभाजः
सम्यग्दृष्टेर्यदिह सकलं घ्नन्ति लक्ष्माणि कर्म ।
तत्तस्यास्मिन्पुनरपि मनाक्कर्मणो नास्ति बन्धः
पूर्वोपात्तं तदनुभवतो निश्चितं निर्जरैव ॥२९-१६१।

खण्डान्वय सहित अर्थ—'यत् इह सम्यग्दृष्टे लक्ष्माणि सकल कर्म घ्नन्ति" [यत्] जिस कारणसे [इह] विद्यमान [सम्यग्दृष्टेः] शुद्धस्वरूप परिणामा है जो

जीव, उसके [लक्ष्माणि] नि शकित, नि काक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितीकरण, वात्सल्य, प्रभावना-अगरूप गुण [सकलं कर्म] ज्ञानावरणादि आठ प्रकार पुद्गल द्रव्यके परिणामनको [घ्नन्ति] हनन करते है, भावार्थ इस प्रकार है कि सम्यग्दृष्टि जीवके जितने कोई गुण है वे शुद्ध परिणामनरूप है, इससे कर्मकी निर्जरा है, "तत् तस्य अस्मिन् कर्मण मनाक् बन्ध पुन अपि नास्ति" [तत्] तिस कारण [तस्य] सम्यग्दृष्टि जीवके [अस्मिन्] शुद्ध परिणामके होनेपर [कर्मणः] ज्ञानावरणादि कर्मोका [मनाक् बन्धः] सूक्ष्ममात्र भी बन्ध [पुनः अपि नास्ति] कभी नही। "तत् पूर्वोपात्त अनुभवत निश्चित निर्जरा एव" [तत्] ज्ञानावरणादि कर्म– [पूर्वोपात्तं] सम्यक्त्व उत्पन्न होनेके पहले अज्ञान राग परिणामसे वाधा था जो कर्म– उसके उदयको [अनुभवतः] जो भोगता है ऐसे सम्यग्दृष्टि जीवके [निश्चितं] निश्चयसे [निर्जरा एव] ज्ञानावरणादि कर्मका गलना है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "टङ्कोत्कीर्णस्वरसनिचितज्ञानसर्वस्वभाज." [टङ्कोत्कीर्ण] शाश्वत जो [स्वरस] स्व-परग्राहकशक्ति उससे [निचित] परिपूर्ण ऐसा [ज्ञान] प्रकाशगुण, वही है [सर्वस्व] आदि मूल जिसका ऐसा जो जीवद्रव्य, उसका [भाज] अनुभव करनेमे समर्थ है। ऐसा है सम्यग्दृष्टि जीव, सो उसके नूतन कर्मका बन्ध नही है, पूर्वबद्ध कर्मकी निर्जरा है ॥ २९-१६१ ॥

(मन्दाक्रान्ता)

रुन्धन् बन्धं नवमिति निजैः सगंतोऽष्टाभिरंगैः
प्राग्बद्धं तु क्षयमुपनयन्निर्जरोज्जृम्भणेन ।
सम्यग्दृष्टिः स्वयमतिरसादादिमध्यान्तमुक्तं
ज्ञानं भूत्वा नटति गगनाभोगरंगं विगाह्य ॥३०-१६२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"सम्यग्दृष्टि· ज्ञान भूत्वा नटति" [सम्यग्दृष्टिः] शुद्ध स्वभावरूप होकर परिणत हुआ जीव [ज्ञानं भूत्वा] शुद्ध ज्ञानस्वरूप होकर [नटति] अपने शुद्ध स्वरूपरूप परिणमता है। कैसा है शुद्ध ज्ञान ? आदिमध्यान्तमुक्त" अतीत, अनागत, वर्तमानकालगोचर शाश्वत है। क्या करके ? "गगनाभोगरङ्ग विगाह्य" [गगन] जीवका शुद्ध स्वरूप है [आभोगरङ्ग] अखाड़ेकी नाचनेकी भूमि, उसको [विगाह्य] अनुभवगोचर करके, ऐसा है ज्ञानमात्र वस्तु। किस कारणसे ? "स्वय अतिरसात्" अनाकुलत्वलक्षण अतीन्द्रिय जो सुख उसे प्राप्त होनेसे। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ?

"नव वन्ध रुन्धन्" [नवं] धाराप्रवाहरूप परिणमा है जो ज्ञानावरणादिरूप पुद्गलपिण्ड ऐसा जो [वन्धं] जीवके प्रदेशोंसे एक क्षेत्रावगाहरूप, उसको [रुन्धन्] मेटता हुआ, क्योंकि "निजै अष्टाभि अङ्गै सङ्गत" [निजैः अष्टाभिः] अपने ही निःशंकित, निःकांक्षित इत्यादिरूप कहे जो आठ [अङ्गैः] सम्यक्त्वके सहारेके गुण, उनसे [सङ्गतः] भावरूप परिणमा है, ऐसा है । और कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "तु प्राग्वद्ध कर्म क्षय उपनयन्" [तु] दूसरा कार्य ऐसा भी होता है कि [प्राग्वद्धं] पूर्वमे वाधा है जो ज्ञानावरणादि [कर्म] पुद्गलपिण्ड, उसका [क्षयं] मूलसे सत्तानाश [उपनयन्] करता हुआ । किसके द्वारा ? "निर्जरोज्जृम्भणेन" [निर्जरा] शुद्ध परिणामके [उज्जृम्भणेन] प्रगटपनाके द्वारा ॥३०-१६२॥



[८]

बन्ध-अधिकार

(शार्दूलविक्रीडित)

रागोद्गारमहारसेन सकलं कृत्वा प्रमत्तं जगत्
क्रीडन्तं रसभावनिर्भरमहानाट्येन बन्धं धुनत् ।
आनंदामृतनित्यभोजि सहजावस्थां स्फुटन्नाटयद्-
धीरोदारमनाकुलं निरुपधि ज्ञानं समुन्मज्जति ॥१-१६३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ज्ञान समुन्मज्जति" [ज्ञानं] शुद्ध जीव [समुन्मज्जति] प्रगट होता है । भावार्थ—यहाँ से लेकर जीवका शुद्धस्वरूप कहते हैं । कैसा है शुद्ध-ज्ञान ? "आनन्दामृतनित्यभोजि" [आनन्द] अतीन्द्रिय सुख, ऐसा है [अमृत] अपूर्व लब्धि, उसका [नित्यभोजि] निरन्तर आस्वादनशील है । और कैसा है ? "स्फुट सहजावस्था नाटयत्" [स्फुटं] प्रगटरूपसे [सहजावस्थां] अपने शुद्ध स्वरूपको [नाटयत्] प्रगट करता है । और कैसा है ? "धीरोदार" [धीर] अविनश्वर सत्तारूप है । [उदारं] धाराप्रवाहरूप परिणमनस्वभाव है । और कैसा है ? "अनाकुल" सब दुःखसे रहित है । और कैसा है ? "निरुपधि" समस्त कर्मकी उपाधिसे रहित है । क्या करता हुआ ज्ञान प्रगट होता है ? "बन्धं धुनत्" [बन्धं] ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलपिण्डका परिणमन, उसको [धुनत्] मेटता हुआ । कैसा है बन्ध ? "क्रीडन्त" प्रगटरूपसे गर्जता है । किसके द्वारा क्रीडा करता है ? 'रसभावनिर्भरमहानाट्येन" [रसभाव] समस्त जीवराशिको अपने वशकर उत्पन्न हुआ जो अहङ्कारलक्षण गर्व, उससे [निर्भर] भरा हुआ जो [महानाट्येन] अनन्त कालसे लेकर अखाडेका सम्प्रदाय, उसके द्वारा । क्या करके ऐसा है बन्ध ? "सकल जगत् प्रमत्त कृत्वा" [सकलं जगत्] सर्व संसारी जीवराशिको [प्रमत्तं कृत्वा] जीवके शुद्धस्वरूपसे भ्रष्ट कर । किसके द्वारा ? "रागोद्गारमहारसेन" [राग] राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणतिका [उद्गार] अति

ही आधिक्यपना, ऐसी जो [महारसेन] मोहरूप मदिरा, उसके द्वारा। भावार्थ इस प्रकार है—जिस प्रकार किसी जीवको मदिरा पिलाकर विकल किया जाता है, सर्वस्व छीन लिया जाता है, पदसे भ्रष्ट कर दिया जाता है, उसी प्रकार अनादिकालसे लेकर सर्व जीवराशि राग-द्वेप-मोहरूप अशुद्ध परिणामसे मतवाली हुई है, इससे ज्ञानावरणादि कर्मका वन्ध होता है। ऐसे वन्धको शुद्ध ज्ञानका अनुभव मेटनशील है, इसलिए शुद्ध ज्ञान उपादेय है ॥१-१६३॥

(पृथ्वी)

न कर्मबहुलं जगन्न चलनात्मकं कर्म वा
न नैककरणानि वा न चिदचिद्वधो बन्धकृत् ।
यदैक्यमुपयोगभूः समुपयाति रागादिभिः
स एव किल केवलं भवति बन्धहेतुर्नृणाम् ॥२-१६४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—प्रथम ही वन्धका स्वरूप कहते हैं—"यत् उपयोगभू रागादिभि ऐक्य समुपयाति स एव केवल किल नृणा वन्धहेतु भवति" [यत्] जो [उपयोग] चेतनागुणरूप [भूः] मूल वस्तु [रागादिभिः] राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणामके साथ [ऐक्यं] मिश्रितपनेरूपसे [समुपयाति] परिणमती है, [सः एव] एतावन्मात्र [केवलं] अन्य सहाय विना [किल] निश्चयसे [नृणां] जितनी ससारी जीवराशि है उसके [वन्धहेतुः भवति] ज्ञानावरणादि कर्मबन्धका कारण होता है। यहाँ कोई प्रश्न करता है कि वन्धका कारण इतना ही है कि और भी कुछ वन्धका कारण है ? समाधान इस प्रकार है कि वन्धका कारण इतना ही है, और तो कुछ नही है, ऐसा कहते है—"कर्मवहुल जगत् न वन्वकृत् वा चलनात्मक कर्म न बन्धकृत् वा अनेककरणानि न वन्धकृत् वा चिदचिद्वध न वन्धकृत्" [कर्म] ज्ञानावरणादि कर्मरूप वाँधनेको योग्य हैं जो कार्मणवर्गणा, उनसे [वहुल] घृतघटके समान भरा है ऐसा जो [जगत्] तीनसौ तेतालीस राजुप्रमाण लोकाकाशप्रदेश [न वन्धकृत्] वह भी वधका कर्ता नही है। समाधान इस प्रकार है कि जो रागादि अशुद्ध परिणामोंके विना कार्मण वर्गणामात्रसे वध होता तो जो मुक्त जीव है उनके भी वन्ध होता। भावार्थ इस प्रकार है कि जो रागादि अशुद्ध परिणाम हैं तो ज्ञानावरणादि कर्मका वन्ध है, तो फिर कार्मण वर्गणाका सहारा कुछ नही है, जो रागादि अशुद्ध भाव नही है तो कर्मका

बन्ध नही है, तो फिर कार्मणवर्गणाका सहारा कुछ नही है। [चलनात्मकं कर्म] मन-वचन-काययोग [न बन्धकृत्] वह भी बन्धका कर्ता नही है। भावार्थ इस प्रकार है कि जो मन-वचन-काययोग वन्धका कर्ता होता तो तेरहवे गुणस्थानमे मन-वचन-काययोग है सो उनके द्वारा भी कर्मका बन्ध होता, इस कारण जो रागादि अशुद्ध भाव है तो कर्मका वन्ध है, तो फिर मन-वचन-काययोगोका सहारा कुछ नही है; रागादि अशुद्ध भाव नही है तो कर्मका वन्ध नही है, तो फिर मन-वचन-काययोगका सहारा कुछ नही है। [अनेककरणानि] पाँच इन्द्रियाँ—स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, छठा मन [न बन्धकृत्] ये भी बन्धके कर्ता नही है। समाधान इस प्रकार है कि सम्यग्दृष्टि जीवके पांच इन्द्रिया है, मन भी है, उनके द्वारा पुद्गलद्रव्यके गुणका ज्ञायक भी है। जो पाच इन्द्रिय और मनमात्रसे कर्मका बन्ध होता तो सम्यग्दृष्टि जीवको भी वन्ध सिद्ध होता। भावार्थ इस प्रकार है कि जो रागादि अशुद्ध भाव है तो कर्मका वन्ध है, तो फिर पाच इन्द्रिय और छठे मनका सहारा कुछ नही है, जो रागादि अशुद्ध भाव नही है तो कर्मका बन्ध नही है, तो फिर पाच इन्द्रिय और छठे मनका सहारा कुछ नही है। [चित्] जीवके सम्वन्ध सहित एकेन्द्रियादि शरीर, [अचित्] जीवके सम्वन्ध रहित पाषाण,-लोह, माटी उनका [वधः] मूलसे विनाश अथवा वाधा-पीड़ा [न वन्धकृत्] वह भी बन्धका कर्ता नही है। समाधान इस प्रकार है कि जो कोई महामुनीश्वर भावलिंगी मार्ग चलता है, दैवसयोग सूक्ष्म जीवोको बाधा होती है, सो जो जीवघातमात्रसे वन्ध होता तो मुनीश्वरके कर्मवन्ध होता। भावार्थ इस प्रकार है कि—जो रागादि अशुद्ध परिणाम है तो कर्मका बन्ध है, तो फिर जीवघातका सहारा कुछ नही है, जो रागादि अशुद्ध भाव नही है तो कर्मका बन्ध नही है, तो फिर जीवघातका सहारा कुछ नही है ॥ २-१६४ ॥

(शार्दूलविक्रीडित)

लोकः कर्म ततोऽस्तु सोऽस्तु च परिस्पन्दात्मकं कर्म तत्
तान्यस्मिन्करणानि सन्तु चिदचिद्व्यापादनं चास्तु तत् ।
रागादीनुपयोगभूमिमनयन् ज्ञानं भवन्केवलं
बन्धं नैव कुतोऽप्युपैत्ययमहो सम्यग्दृगात्मा ध्रुवम् ॥३-१६५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अहो अय सम्यग्दृगात्मा कुत अपि ध्रुव एव वन्ध न उपैति" [अहो] भो भव्यजीव ! [अयं सम्यग्दृगात्मा] यह शुद्ध स्वरूपका अनुभवनशील सम्यग्दृष्टि जीव [कुतः अपि] भोग सामग्रीको भोगते हुए अथवा बिना भोगते हुए [ध्रुवं] अवश्यकर [एव] निश्चयसे [वन्धं न उपैति] ज्ञानावरणादि कर्मबन्धको नही करता है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "रागादीन् उपयोगभूमिं अनयन्" [रागादीन्] अशुद्धरूप विभावपरिणामोको [उपयोगभूमिं] चेतनामात्र गुणके प्रति [अनयन्] न परिणमाता हुआ। "केवल ज्ञान भवेत्" मात्र ज्ञानस्वरूप रहता है। भावार्थ इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि जीवको वाह्य आभ्यन्तर सामग्री जैसी थी वैसी ही है, परन्तु रागादि अशुद्धरूप विभाव परिणति नही है, इसलिए ज्ञानावरणादि कर्मका वन्ध नही है। "तत लोक कर्म अस्तु च तत् परिस्पन्दात्मक कर्म अस्तु अस्मिन् तानि करणानि सन्तु च तत् चिदचिद्व्यापादन अस्तु" [ततः] तिस कारणसे [लोकः कर्म अस्तु] कार्मण वर्गणासे भरा है जो समस्त लोकाकाश सो तो जैसा है वैसा ही रहो, [च] और [तत् परिस्पन्दात्मकं कर्म अस्तु] ऐसा है जो आत्मप्रदेशकम्परूप मन-वचन-कायरूप तीन योग वे भी जैसा है वैसा ही रहो तथापि कर्मका बन्ध नही। क्या होने पर ? [तस्मिन्] राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्धपरिणामके चले जानेपर [तानि करणानि सन्तु] वे भी पाँच इन्द्रियाँ तथा मन सो जैसे है वैसे ही रहो [च] और [तत् चिदचिद्व्यापादनं अस्तु] पूर्वोक्त चेतन अचेतनका घात जैसा होता था वैसा ही रहो तथापि शुद्धपरिणामके होनेपर कर्मका वन्ध नही है ॥३-१६५॥

(पृथ्वी)

तथापि न निरर्गलं चरितुमिष्यते ज्ञानिनां
तदायतनमेव सा किल निरर्गला व्यापृतिः।
अकामकृतकर्म तन्मतमकारणं ज्ञानिनां
द्वयं न हि विरुध्यते किमु करोति जानाति च ॥४-१६६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तथापि ज्ञानिना निरर्गल चरितु न इष्यते" [तथापि] यद्यपि कार्मणवर्गणा, मन-वचन-काययोग, पाच इन्द्रिया, मन, जीवका घात इत्यादि वाह्य सामग्री कर्मवन्धका कारण नही है। कर्मबन्धका कारण रागादि अशुद्धपना है। वस्तुका स्वरूप ऐसा ही है। तो भी [ज्ञानिनां] शुद्धस्वरूपके अनुभवशील हैं जो

सम्यग्दृष्टि जीव उनकी [**निरर्गलं चरितुं**] 'प्रमादी होकर विषय भोगका सेवन किया तो किया ही, जीवोका घात हुआ तो हुआ ही, मन वचन काय जैसे प्रवर्ते वैसे प्रवर्तो ही'—ऐसी निरंकुश वृत्ति [**न इष्यते**] जानकर करते हुए कर्मका बन्ध नही है ऐसा तो गराधरदेव नही मानते है। किस कारणसे नही मानते है ? कारण कि "सा निर्गला व्यापृत्ति किल तदायतन एव" [**सा**] पूर्वोक्त [**निरर्गला व्यापृत्तिः**] बुद्धि-पूर्वक–जानकर अन्तरगमे रुचिकर विषय-कषायोमे निरकुशरूपसे आचरण [**किल**] निश्चयसे [**तदायतनं एव**] अवश्य कर मिथ्यात्व-राग-द्वेषरूप अशुद्ध भावोको लिए हुए है, इससे कर्मबन्धका कारण है। भावार्थ इस प्रकार है कि ऐसी युक्तिका भाव मिथ्यादृष्टि जीवके होता है सो मिथ्यादृष्टि कर्मबन्ध का कर्ता प्रगट ही है, कारण कि "ज्ञानिना तत् अकामकृत कर्म अकारण मत" [**ज्ञानिनां**] सम्यग्दृष्टि जीवोके [**तत्**] जो कुछ पूर्वबद्ध कर्मके उदयसे है वह समस्त [**अकामकृतकर्म**] अवांछित क्रियारूप है, इसलिए [**अकारणं मतं**] कर्मबन्धका कारण नही है—ऐसा गराधरदेवने माना है और ऐसा ही है। कोई कहेगा कि—"करोति जानाति च" [**करोति**] कर्मके उदयसे होती है जो भोगसामग्री सो होती हुई अन्तरग रुचिपूर्वक सुहाती है ऐसा भी है [**जानाति च**] तथा शुद्ध स्वरूपको अनुभवता है, समस्त कर्मजनित सामग्रीको हेयरूप जानता है ऐसा भी है। ऐसा कोई कहता है सो झूठा है, कारण कि "द्वयं किमु न हि विरुद्धचते" [**द्वयं**] ज्ञाता भी वाछक भी ऐसी दो क्रिया [**किमु न हि विरुद्धचते**] विरुद्ध नही क्या ? अपि तु सर्वथा विरुद्ध है ।।४-१६६।।

(वसन्ततिलका)

जानाति यः स न करोति करोति यस्तु
जानात्ययं न खलु तत्किल कर्मरागः ।
रागं त्वबोधमयमध्यवसायमाहु-
र्मिथ्यादृशः स नियतं स च बन्धहेतुः ।।५-१६७।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"य जानाति स न करोति" [**यः**] जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव [**जानाति**] शुद्ध स्वरूपको अनुभवता है [**सः**] वह सम्यग्दृष्टि जीव [**न करोति**] कर्मकी उदय सामग्रीमे अभिलाषा नही करता, "तु य. करोति अय न जानाति" [**तु**] और [**यः**] जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव [**करोति**] कर्मकी विचित्र

सामग्रीको आप जानकर अभिलाषा करता है [**अयं**] वह मिथ्यादृष्टि जीव [**न जानाति**] शुद्ध स्वरूप जीवको नही जानता है । भावार्थ इस प्रकार है कि मिथ्यादृष्टि जीवको जीवके स्वरूपका जानपना नही घटित होता । "खलु" ऐसा वस्तुका निश्चय है । ऐसा कहा जो मिथ्यादृष्टि कर्ता है, वहा करना सो क्या ? "तत् कर्म किल राग" [**तत् कर्म**] कर्मके उदय सामग्रीका करना वह [**किल**] वास्तवमे [**रागः**] कर्म सामग्रीमे अभिलाषा-रूप चिकना परिणाम है । कोई मानेगा कि कर्मसामग्रीमे अभिलाषा हुई तो क्या, न हुई तो क्या ? सो ऐसा तो नही है, अभिलाषामात्र पूरा मिथ्यात्व परिणाम है ऐसा कहते हैं—"तु राग अवोधमय अध्यवसायं आहु" [**तु**] वह वस्तु ऐसी है कि [**रागं अवोधमयं अध्यवसायं**] परद्रव्यसामग्रीमे है जो अभिलाषा वह नि केवल मिथ्यात्वरूप परिणाम है ऐसा [**आहुः**] गणधरदेवने कहा है । "स नियत मिथ्यादृश भवेत्" [**सः**] कर्मकी सामग्रीमें राग [**नियतं**] अवश्यकर [**मिथ्यादृशः भवेत्**] मिथ्यादृष्टि जीवके होता है, सम्यग्दृष्टि जीवके निश्चयसे नही होता । "स च वन्धहेतु" वह राग-परिणाम कर्मवन्धका कारण है । इसलिए भावार्थ ऐसा है कि मिथ्यादृष्टि जीव कर्म-वन्ध करता है, सम्यग्दृष्टि जीव नही करता ।।५-१६७।।

(वसन्ततिलका)

सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय-
कर्मोदयान्मरणजीवितदुःखसौख्यम् ।
अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य
कुर्यात्पुमान् मरणजीवितदुःखसौख्यम् ।।६-१६८।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इह एतत् अज्ञान" [**इह**] मिथ्यात्व परिणामका एक अग दिखलाते हैं—[**एतत् अज्ञानं**] ऐसा भाव मिथ्यात्वमय है । "तु यत् पर पुमान् परस्य मरणजीवितदु खसौख्य कुर्यात्" [**तु**] वह कैसा भाव ? [**यत्**] वह भाव ऐसा कि [**परः पुमान्**] कोई पुरुष [**परस्य**] अन्य पुरुषके [**मरणजीवितदुःखसौख्यं**] मरण—प्राणघात, जीवित—प्राणरक्षा, दु ख—अनिष्टसयोग, सौख्य—इष्टप्राप्ति ऐसे कार्यको [**कुर्यात्**] करता है । भावार्थ इस प्रकार है—अज्ञानी मनुष्योमे ऐसी कहावत है कि 'इस जीवने इस जीवको मारा, इस जीवने इस जीवको जिलाया, इस जीवने इस जीवको सुखी किया, इस जीवने इस जीवको दुखी किया', ऐसी कहावत है सो ऐसी ही प्रतीति जिस जीवको

होवे वह जीव मिथ्यादृष्टि है ऐसा निःसन्देह जानियेगा, धोखा कुछ नही। क्यों जानना कि मिथ्यादृष्टि है? कारण कि "मरणजीवितदुःखसौख्य सर्व सदा एव नियत स्वकीयकर्मोदयात् भवति" [**मरण**] प्राणघात [**जीवित**] प्राणरक्षा [**दुःखसौख्यं**] इष्ट-अनिष्ट-संयोग यह जो [**सर्वं**] सब जीवराशिको होता है वह सब [**सदा एव**] सर्वकाल [**नियतं**] निश्चयसे [**स्वकीयकर्मोदयात् भवति**] जिस जीवने अपने विशुद्ध अथवा सक्लेशरूप परिणामके द्वारा पहले ही बाँधा है जो आयु कर्म अथवा साताकर्म अथवा असाताकर्म, उस कर्मके उदयसे उस जीवको मरण अथवा जीवन अथवा दुःख अथवा सुख होता है ऐसा निश्चय है, इस बातमे धोखा कुछ नही है। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई जीव किसी जीवको मारनेके लिए समर्थ नही है, जिलानेके लिए समर्थ नही है, सुखी दुःखी करनेके लिए समर्थ नही है ॥६-१६८॥

(वसन्ततिलका)

अज्ञानमेतदधिगम्य परात्परस्य
पश्यन्ति ये मरणजीवितदुःखसौख्यम्।
कर्माण्यहंकृतिरसेन चिकीर्षवस्ते
मिथ्यादृशो नियतमात्महनो भवन्ति ॥७-१६९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ये परात् परस्य मरणजीवितदुःखसौख्यं पश्यन्ति" [**ये**] जो कोई अज्ञानी जीवराशि [**परात्**] अन्य जीवसे [**परस्य**] अन्य जीवका [**मरणजीवितदुःखसौख्यं**] मरना, जीना, दुःख, सुख [**पश्यन्ति**] मानती है; क्या करके? "एतत् अज्ञान अधिगम्य" [**एतत् अज्ञानं**] मिथ्यात्वरूप अशुद्ध परिणामको—ऐसे अशुद्धपनेको [**अधिगम्य**] पाकर, "ते नियत मिथ्यादृश भवन्ति" [**ते**] जो जीवराशि ऐसा मानती है वह [**नियतं**] निश्चयसे [**मिथ्यादृशः भवन्ति**] सर्वप्रकार मिथ्यादृष्टि राशि है। कैसे हैं वे मिथ्यादृष्टि? "अहकृतिरसेन कर्माणि चिकीर्षव." [**अहंकृति**] 'मैं देव, मैं मनुष्य, मैं तिर्यञ्च, मैं नारक, मैं दुःखी, मैं सुखी' ऐसी कर्मजनित-पर्यायमे है आत्मबुद्धिरूप जो [**रस**] मग्नपना उसके द्वारा [**कर्माणि**] कर्मके उदयसे जितनी क्रिया होती है उसे [**चिकीर्षवः**] 'मैं करता हूँ, मैंने किया है, ऐसा करूँगा' ऐसे अज्ञानको लिए हुए मानते हैं। और कैसे है? "आत्महन." अपनेको घातनशील है ॥७-१६९॥

(अनुष्टुप्)

मिथ्यादृष्टेः स एवास्य बन्धहेतुर्विपर्ययात् ।
य एवाध्यवसायोऽयमज्ञानात्माऽस्य दृश्यते ।।८-१७०।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अस्य मिथ्यादृष्टे सः एव बन्धहेतु भवति" [**अस्य मिथ्यादृष्टेः**] इस मिथ्यादृष्टि जीवके, [**सः एव**] मिथ्यात्वरूप है जो ऐसा परिणाम कि 'इस जीवने इस जीवको मारा, इस जीवने इस जीवको जिलाया'–ऐसा भाव [**बन्धहेतुः भवति**] ज्ञानावरणादि कर्मबन्धका कारण होता है। किस कारणसे ? "विपर्ययात्" कारण कि ऐसा परिणाम मिथ्यात्वरूप है। "य एव अय अध्यवसाय" इसको मारूँ, इसको जिलाऊँ" ऐसा जो मिथ्यात्वरूप परिणाम जिसके होता है "अस्य अज्ञानात्मा दृश्यते" [**अस्य**] ऐसे जीवका [**अज्ञानात्मा**] मिथ्यात्वमय स्वरूप [**दृश्यते**] देखनेमे आता है ।।८-१७०।।

(अनुष्टुप्)

अनेनाध्यवसायेन निष्फलेन विमोहितः ।
तत्किञ्चनापि नैवास्ति नात्मात्मानं करोति यत् ।।९-१७१।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"आत्मा आत्मान यत् न करोति तत् किञ्चन अपि न एव अस्ति" [**आत्मा**] मिथ्यादृष्टि जीव [**आत्मानं**] अपनेको [**यत् न करोति**] जिसरूप नही आस्वादता [**तत् किञ्चन**] ऐसी पर्याय, ऐसा विकल्प [**न एव अस्ति**] त्रैलोक्यमे है ही नही। भावार्थ इस प्रकार है कि मिथ्यादृष्टि जीव जैसी पर्याय धारण करता है, जैसे भावरूप परिणमता है, उस सबको आपस्वरूप जान अनुभवता है। इसलिए कर्मके स्वरूपको जीवके स्वरूपसे भिन्न कर नही जानता है, एकरूप अनुभव करता है। "अनेन अध्यवसायेन" 'इसको मारूँ, इसको जिलाऊँ, इसे मैंने मारा, इसे मैंने जिलाया, इसे मैंने सुखी किया, इसे मैंने दुखी किया'—ऐसे परिणामसे "विमोहित" गहल (पागल) हुआ है। कैसा है परिणाम ? "नि फलेन" झूठा है। भावार्थ इस प्रकार है कि यद्यपि मारनेकी कहता है, जिलानेकी कहता है, तथापि जीवोका मरना जीना अपने कर्मके उदयके हाथ है, इसके परिणामोके अधीन नही है। यह अपने अज्ञानपनाको लिए हुए अनेक झूठे विकल्प करता है ।।९-१७१।।

(इन्द्रवज्रा)

विश्वाद्विभक्तोऽपि हि यत्प्रभावा-
दात्मानमात्मा विदधाति विश्वम् ।
मोहैककन्दोऽध्यवसाय एष
नास्तीह येषां यतयस्त एव ॥१०-१७२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ते एव यतय." वे ही यतीश्वर हैं "येपां इह एष अध्यवसाय नास्ति" [**येषां**] जिनको [**इह**] सूक्ष्मरूप वा स्थूलरूप [**एष अध्यवसायः**] 'इसको मारूँ, इसको जिलाऊँ" ऐसा मिथ्यात्वरूप परिणाम [**नास्ति**] नही है। कैसा है परिणाम ? "मोहैककन्द:" [**मोह**] मिथ्यात्वका [**एककन्दः**] मूल कारण है। "यत्प्रभावात्" जिस मिथ्यात्वपरिणामके कारण "आत्मा आत्मानं विश्व विदधाति" [**आत्मा**] जीवद्रव्य [**आत्मानं**] आपको [**विश्वं**] 'मैं देव, मैं मनुष्य, मैं क्रोधी, मै मानी, मैं सुखी, मैं दु खी' इत्यादि नानारूप [**विदधाति**] अनुभवता है। कैसा है आत्मा ? "विश्वात् विभक्त अपि" कर्मके उदयसे हुई समस्त पर्यायोसे भिन्न है, ऐसा है यद्यपि। भावार्थ इस प्रकार है कि मिथ्यादृष्टि जीव पर्यायमे रत है, इसलिए पर्यायको आपरूप अनुभवता है। ऐसे मिथ्यात्वभावके छूटने पर ज्ञानी भी साँचा, आचरण भी साँचा ॥१०-१७२॥

(शार्दूलविक्रीडित)

सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनै-
स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः ।
सम्यङ्निश्चयमेकमेव तदमी निष्कंपमाक्रम्य किं
शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नन्ति सन्तो धृतिम् ॥११-१७३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अमी सन्त निजे महिम्नि धृतिं किं न बध्नन्ति" [**अमी सन्तः**] सम्यग्दृष्टि जीवराशि [**निजे महिम्नि**] अपने शुद्ध चिद्रूप स्वरूपमे [**धृतिं**] स्थिरतारूप सुखको [**किं न बध्नन्ति**] क्यो न करे ? अपि तु सर्वथा करे। कैसी है निजमहिमा ? 'शुद्धज्ञानघने" [**शुद्ध**] रागादिरहित ऐसे [**ज्ञान**] चेतनागुणका [**घने**] समूह है। क्या करके ? "तत् सम्यक् निश्चयं आक्रम्य" [**तत्**] तिस कारणसे [**सम्यक् निश्चयं**] निर्विकल्प वस्तुमात्रको [**आक्रम्य**] जैसी है वैसी अनुभवगोचर

कर। कैसा है निश्चय ? "एक एव" [एकं] निर्विकल्प वस्तुमात्र है, [एव] निश्चयसे। और कैसा है ? "नि कम्प" सर्व उपाधिसे रहित है। "यत् सर्वत्र अध्यवसान अखिल एव त्याज्य" [यत्] जिस कारणसे [सर्वत्र अध्यवसानं] 'मैं मारूँ, मैं जिलाऊँ, मैं दु खी करूँ, मैं सुखी करूँ, मैं देव, मैं मनुष्य' इत्यादि है जो मिथ्यात्वरूप असख्यात लोकमात्र परिणाम [अखिलं एव त्याज्यं] वे समस्त परिणाम हेय है। कैसा है परिणाम ? "जिनै उक्त" परमेश्वर केवलज्ञान विराजमान, उन्होंने ऐसा कहा है। "तत्" मिथ्यात्व-भावका हुआ है त्याग, उसको "मन्ये" मैं ऐसा मानता हूँ कि "निखिल अपि व्यवहार. त्याजित एव" [निखिलः अपि] जितना है सत्यरूप अथवा असत्यरूप [व्यवहारः] शुद्ध स्वरूपमात्रसे विपरीत जितने मन वचन कायके विकल्प वे सव [त्याजितः] सर्व प्रकार छूटे हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि पूर्वोक्त मिथ्या भाव जिसके छूट गया उसके समस्त व्यवहार छूट गया। कारण कि मिथ्यात्वके भाव तथा व्यवहारके भाव एकवस्तु है। कैसा है व्यवहार ? "अन्याश्रय." [अन्य] विपरीतपना वही है [आश्रयः] अवलम्वन जिसका, ऐसा है ॥११-१७३॥

(उपजाति)

रागादयो बन्धनिदानमुक्ता-
स्ते शुद्धचिन्मात्रमहोऽतिरिक्ताः।
आत्मा परो वा किमु तन्निमित्त-
मिति प्रणुन्नाः पुनरेवमाहुः ॥१२-१७४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"पुन एव आहु" [पुनः] शुद्ध वस्तुस्वरूपका निरूपण किया तथापि पुन [एवं आहुः] ऐसा कहते है ग्रन्थके कर्ता श्री कुन्दकुन्दाचार्य। कैसा है ? "इति प्रणुन्ना" ऐसा प्रश्नरूप नम्र होकर पूछा है। कैसा प्रश्नरूप ? "ते रागादय. वन्धनिदान उक्ता" अहो स्वामिन् ! [ते रागादयः] अशुद्ध चेतनारूप है राग द्वेष मोह इत्यादि असख्यात लोकमात्र विभावपरिणाम, वे [बन्धनिदानं उक्ताः] ज्ञानावरणादि कर्मवन्धके कारण है ऐसा कहा, सुना, जाना, माना। कैसे है वे भाव ? "शुद्धचिन्मात्र-महोऽतिरिक्ता" [शुद्धचिन्मात्र] शुद्ध ज्ञानचेतनामात्र है जो [महः] ज्योतिस्वरूप जीववस्तु, उससे [अतिरिक्ताः] वाहर है। अव एक प्रश्न मैं करता हूँ कि "तन्निमित्त आत्मा वा पर" [तन्निमित्तं] उन राग द्वेष मोहरूप अशुद्ध परिणामोका कारण कौन

है ? [आत्मा] जीवद्रव्य कारण है [वा] कि [परः] मोह कर्मरूप परिणमा है जो पुद्गल द्रव्यका पिण्ड वह कारण है ? ऐसा पूछने पर आचार्य उत्तर कहते हैं ॥१२-१७४॥

(उपजाति)

न जातु रागादिनिमित्तभाव-
मात्मात्मनो याति यथार्ककांतः ।
तस्मिन्निमित्तं परसंग एव
वस्तुस्वभावोऽयमुदेति तावत् ॥१३-१७५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तावत् अयं वस्तुस्वभाव. उदेति" [तावत्] प्रश्न किया था उसका उत्तर इस प्रकार—[अयं वस्तुस्वभावः] यह वस्तुका स्वरूप [उदेति] सर्व काल प्रगट है । कैसा है वस्तुका स्वभाव ? "जातु आत्मा आत्मनः रागादिनिमित्त-भावं न याति" [जातु] किसी कालमें [आत्मा] जीवद्रव्य [आत्मनः रागादिनिमित्त-भावं] आपसम्बन्धी हैं जो राग द्वेष मोहरूप अशुद्ध परिणाम उनके कारणपनारूप [न याति] नहीं परिणमता है । भावार्थ इस प्रकार है कि द्रव्यके परिणामका कारण दो प्रकारका है—एक उपादानकारण है, एक निमित्तकारण है । उपादानकारण द्रव्यके अन्तर्गर्भित है अपने परिणाम पर्यायरूप परिणमनशक्ति, वह तो जिस द्रव्यकी, उसी द्रव्यमें होती है ऐसा निश्चय है । निमित्त कारण—जिस द्रव्यका संयोग प्राप्त होनेसे अन्य द्रव्य अपनी पर्यायरूप परिणमता है; वह तो जिस द्रव्यकी उस द्रव्यमें होती है, अन्य द्रव्यगोचर नहीं होती ऐसा निश्चय है । जैसे मिट्टी घट पर्यायरूप परिणमती है, उसका उपादानकारण है मिट्टीमें घटरूप परिणमनशक्ति, निमित्तकारण है बाह्यरूप कुम्हार, चक्र, दण्ड इत्यादि, वैसे ही जीवद्रव्य अशुद्ध परिणाम—मोह राग द्वेषरूप परिणमता है, उसका उपादानकारण है जीवद्रव्यमें अन्तर्गर्भित विभावरूप अशुद्धपरिणमनशक्ति, "तस्मिन् निमित्त" निमित्तकारण है "परसङ्गः एव" दर्शनमोह चारित्रमोहकर्मरूप बँधा जो जीवके प्रदेशोंमें एक क्षेत्रावगाहरूप पुद्गलद्रव्यका पिण्ड, उसका उदय । यद्यपि मोह कर्मरूप पुद्गलपिण्डका उदय अपने द्रव्यके साथ व्याप्य-व्यापकरूप है, जीवद्रव्यके साथ व्याप्य-व्यापकरूप नहीं है, तथापि मोहकर्मका उदय होनेपर जीवद्रव्य अपने विभाव-परिणामरूप परिणमता है—ऐसा ही वस्तुका स्वभाव है, सहारा किसका । यहाँ दृष्टांत

है—"यथा अर्ककान्त" जैसे स्फटिकमरिण लाल, पीली, काली इत्यादि अनेक छविरूप परिणमती है, उसका उपादान कारण है स्फटिकमरिणके अन्तर्गभित नाना वर्णरूप परिणमनशक्ति, निमित्त कारण है वाह्य नाना वर्णरूप पूरीका संयोग ॥१३-१७५॥

(अनुष्टुप्)

इति वस्तुस्वभावं स्वं
ज्ञानी जानाति तेन सः ।
रागादीन्नात्मनः कुर्यान्
नातो भवति कारकः ॥१४-१७६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ज्ञानी इति वस्तुस्वभाव स्व जानाति" [ज्ञानी] सम्यग्दृष्टि जीव [इति] पूर्वोक्त प्रकार [वस्तुस्वभावं] द्रव्यका स्वरूप ऐसा जो [स्वं] अपना शुद्ध चैतन्य, उसको [जानाति] आस्वादरूप अनुभवता है, "तेन स रागादीन् आत्मन. न कुर्यात्" [तेन] तिस कारणसे [सः] सम्यग्दृष्टि जीव [रागादीन्] राग द्वेष मोहरूप अशुद्ध परिणाम [आत्मनः] जीव द्रव्यके स्वरूप है ऐसा [न कुर्यात्] नही अनुभवता है, कर्मके उदयकी उपाधि है ऐसा अनुभवता है। "अत कारक. न भवति" [अतः] इस कारणसे [कारकः] रागादि अशुद्ध परिणामोका कर्ता [न भवति] नही होता। भावार्थ इस प्रकार है कि सम्यग्दृष्टि जीवके रागादि अशुद्ध परिणामो-का स्वामित्वपना नही है, इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव कर्ता नही है ॥१४-१७६॥

(अनुष्टुप्)

इति वस्तुस्वभावं स्वं नाज्ञानी वेत्ति तेन सः ।
रागादीनात्मनः कुर्यादतो भवति कारकः ॥१५-१७७॥*

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अज्ञानी इति वस्तुस्वभावं स्वं न वेत्ति' [अज्ञानी] मिथ्यादृष्टि जीव [इति] पूर्वोक्त प्रकार [वस्तुस्वभावं] द्रव्यका स्वरूप ऐसा जो [स्वं] अपना शुद्ध चैतन्य, उसको [न वेत्ति] आस्वादरूप नही अनुभवता है, "तेन स. रागादीन्

* पण्डित श्री राजमलजीकी टीकामे यह श्लोक एव उसका अर्थ छूट गया है। श्लोक न० १७६ के आधारसे इस श्लोकका 'खण्डान्वय सहित अर्थ' वनाकर यहाँ दिया है।

आत्मन. कुर्यात्" [तेन] तिस कारणसे [सः] मिथ्यादृष्टि जीव [रागादीन्] राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणाम [आत्मनः] जीव द्रव्यके स्वरूप है ऐसा [कुर्यात्] अनुभवता है, कर्मके उदयकी उपाधि है ऐसा नही अनुभवता है, "अत कारकः भवति" [अतः] इस कारणसे [कारकः] रागादि अशुद्ध परिणामो का कर्ता [भवति] होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि मिथ्यादृष्टि जीवके रागादि अशुद्धपरिणामोका स्वामित्वपना है, इसलिए मिथ्यादृष्टि जीव कर्ता है ॥१५-१७७॥

(शार्दूलविक्रीडित)

इत्यालोच्य विवेच्य तत्किल परद्रव्यं समग्रं बलात्
तन्मूलां बहुभावसन्ततिमिमामुद्धर्तुकामः समम् ।
आत्मानं समुपैति निर्भरवहत्पूर्णैकसंविद्युतं
येनोन्मूलितबन्ध एष भगवानात्मात्मनि स्फूर्जति ॥१६-१७८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एषः आत्मा आत्मान समुपैति येन आत्मनि स्फूर्जति" [एषः आत्मा] प्रत्यक्ष है जो जीव द्रव्य वह [आत्मानं समुपैति] अनादि कालसे स्वरूपसे भ्रष्ट हुआ था तथापि इस अनुक्रमसे अपने स्वरूपको प्राप्त हुआ, [येन] जिस स्वरूपकी प्राप्तिके कारण [आत्मनि स्फूर्जति] पर द्रव्यसे सम्बन्ध छूट गया, आपसे सम्बन्ध रहा। कैसा है ? "उन्मूलितवन्ध." [उन्मूलित] मूल सत्तासे दूर किया है [वन्धः] ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलद्रव्यका पिण्ड जिसने, ऐसा है। और कैसा है ? "भगवान्" ज्ञानस्वरूप है। कैसा करके अनुभवता है ? "निर्भरवहत्पूर्णैकसंविद्युत" [निर्भर] अनन्त शक्तिके पुञ्जरूपसे [वहत्] निरन्तर परिणमता है ऐसा जो [पूर्ण] स्वरससे भरा हुआ [एकसंवित्] विशुद्ध ज्ञान, उससे [युतं] मिला हुआ है, ऐसे शुद्ध-स्वरूपको अनुभवता है। और कैसा है आत्मा ? "इमां वहुभावसन्तति सम उद्धर्तुकाम." [इमां] कहा है स्वरूप जिसका ऐसा है [वहुभाव] राग द्वेष मोह आदि अनेक प्रकार के अशुद्ध परिणाम, उनकी [सन्ततिं] परम्परा, उसको [समं] एक ही कालमें [उद्धर्तुकामः] उखाड कर दूर करनेका है अभिप्राय जिसका, ऐसा है। कैसी है भावसन्तति ? "तन्मूलां" पर द्रव्यका स्वामित्वपना है मूलकारण जिसका ऐसी है। क्या करके ? "किल वलात् तत् समग्र परद्रव्यं इति आलोच्य विवेच्य" [किल] निश्चयसे [वलात्] ज्ञानके वलकर [तत्] द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मरूप [समग्रं परद्रव्यं]

ऐसी है जितनी पुद्गलद्रव्यकी विचित्र परिणति, उसको [इति आलोच्य] पूर्वोक्त प्रकारसे विचारकर [विवेच्य] शुद्ध ज्ञानस्वरूपसे भिन्न किया है। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्धस्वरूप उपादेय है, अन्य समस्त पर द्रव्य हेय है ॥१६-१७८॥

(मन्दाक्रान्ता)

रागादीनामुदयमदयं दारयत्कारणानां
कार्यं बन्धं विविधमधुना सद्य एव प्रणुद्य ।
ज्ञानज्योतिः क्षपिततिमिरं साधु सन्नद्धमेतत्
तद्वद्यद्वत्प्रसरमपरः कोऽपि नास्यावृणोति ॥१७-१७९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एतत् ज्ञानज्योति तद्वत् सन्नद्ध" [एतत् ज्ञानज्योतिः] स्वानुभवगोचर शुद्ध चैतन्यवस्तु [तद्वत् सन्नद्धं] अपने बलपराक्रमके साथ ऐसी प्रगट हुई कि "यद्वत् अस्य प्रसर अपर क. अपि न आवृणोति" [यद्वत्] जैसे [अस्य प्रसरं] शुद्ध ज्ञानका लोक अलोकसम्बन्धी सकल ज्ञेयको जाननेका ऐसा प्रसार जिसको [अपरः कः अपि] अन्य कोई दूसरा द्रव्य [न आवृणोति] नही रोक सकता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवका स्वभाव केवलज्ञान केवलदर्शन है, वह ज्ञानावरणादि कर्मबन्धके द्वारा आच्छादित है। ऐसा आवरण शुद्ध परिणामसे मिटता है, वस्तु स्वरूप प्रगट होता है। ऐसा शुद्धस्वरूप जीवको उपादेय है। कैसी है ज्ञानज्योति ? "क्षपिततिमिर" [क्षपित] विनाश किया है [तिमिरं] ज्ञानावरण दर्शनावरणकर्म जिसने, ऐसी है। और कैसी है ? "साधु" सर्व उपद्रवोसे रहित है। और कैसी है ? "कारणाना रागादीना उदय दारयत्" [कारणानां] कर्मबन्धके कारण ऐसे जो [रागादीनां] राग द्वेष मोहरूप अशुद्ध परिणाम, उनके [उदयं] प्रगटपनेको [दारयत्] मूलसे ही उखाडती हुई। कैसे उखाडती है ? "अदय" निर्दयपनेके समान। और क्या करके ऐसी होती है ? "कार्यं बन्ध अधुना सद्य एव प्रणुद्य" [कार्यं] रागादि अशुद्ध परिणामोके होने पर होता है ऐसे [बन्धं] धाराप्रवाहरूप होनेवाले पुद्गलकर्मके बन्धको [सद्यः एव] जिस कालमे रागादि मिट गये उसी कालमे [प्रणुद्य] मेट करके। कैसा है बन्ध ? "विविध" ज्ञानावरण दर्शनावरण इत्यादि असख्यात लोकमात्र है। कोई वितर्क करेगा कि ऐसा तो द्रव्यरूप विद्यमान ही था ? समाधान इस प्रकार है कि [अधुना] द्रव्यरूप यद्यपि विद्यमान ही था तथापि प्रगटरूप, बन्धको दूर करने पर हुआ ॥१७-१७९॥

[६]

मोक्ष-अधिकार

(शिखरिणी)

द्विधाकृत्य प्रज्ञाक्रकचदलनाद्बन्धपुरुषौ
नयन्मोक्षं साक्षात्पुरुषमुपलम्भैकनियतम् ।
इदानीमुन्मज्जत्सहजपरमानन्दसरसं
परं पूर्णं ज्ञानं कृतसकलकृत्यं विजयते ।।१-१८०।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इदानी पूर्णं ज्ञानं विजयते" [इदानीं] यहाँ से लेकर [पूर्णं ज्ञानं] समस्त आवरणका विनाश होने पर होता है जो शुद्ध वस्तुका प्रकाश वह [विजयते] आगामी अनन्त काल पर्यन्त उसीरूप रहता है, अन्यथा नही होता। कैसा है शुद्धज्ञान ? "कृतसकलकृत्य" [कृत] किया है [सकलकृत्यं] करनेयोग्य समस्त कर्मका विनाश जिसने, ऐसा है। और कैसा है ? "उन्मज्जत्सहजपरमानन्दसरस" [उन्मज्जत्] अनादि कालसे गया था सो प्रगट हुआ है ऐसा जो [सहजपरमानन्द] द्रव्यके स्वभावरूपसे परिणमनेवाला अनाकुलत्वलक्षण अतीन्द्रिय सुख, उससे [सरसं] सयुक्त है। भावार्थ इस प्रकार है कि मोक्षका फल अतीन्द्रिय सुख है। क्या करता हुआ ज्ञान प्रगट होता है ? "पुरुष साक्षात् मोक्ष नयत्" [पुरुषं] जीव द्रव्यको [साक्षात् मोक्षं] सकल कर्मका विनाश होने पर शुद्धत्व अवस्थाके प्रगटपनेरूप [नयत्] परिणमाता हुआ। भावार्थ इस प्रकार है कि यहाँ से आरम्भकर सकल कर्मक्षयलक्षण मोक्षके स्वरूपका निरूपण किया जाता है। और कैसा है ? "परं" उत्कृष्ट है। और कैसा है ? "उपलम्भैकनियत" एक निश्चय स्वभावको प्राप्त है। क्या करता हुआ आत्मा मुक्त होता है ? "बन्ध-पुरुषौ द्विधाकृत्य" [बन्ध] द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मरूप उपाधि और [पुरुषौ] शुद्ध जीवद्रव्य इनको, [द्विधाकृत्य] 'सर्व वन्ध हेय, शुद्ध जीव उपादेय' ऐसी भेदज्ञानरूप प्रतीति उत्पन्न कराकर। ऐसी प्रतीति जिस प्रकार उत्पन्न होती है

उस प्रकार कहते हैं—"प्रज्ञाक्रकचदलनात्" [प्रज्ञा] शुद्धज्ञानमात्र जीवद्रव्य और अशुद्ध रागादि उपाधि वन्ध—ऐसी भेदज्ञानरूपी बुद्धि, ऐसी जो [क्रकच] करौत, उसके द्वारा [दलनात्] निरन्तर अनुभवका अभ्यास करनेसे। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार करौतके वार बार चालू करनेसे पुद्‌गलवस्तु काष्ठ आदि दो खण्ड हो जाता है, उसी प्रकार भेदज्ञानके द्वारा जीव-पुद्‌गलको बार वार भिन्न भिन्न अनुभव करनेपर भिन्न भिन्न हो जाते हैं, इसलिए भेदज्ञान उपादेय है ॥१-१८०॥

(स्रग्धरा)

प्रज्ञाछेत्री शितेयं कथमपि निपुणैः पातिता सावधानैः
सूक्ष्मेऽन्तःसन्धिबन्धे निपतति रभसादात्मकर्मोभयस्य
आत्मानं मग्नमंतःस्थिरविशदलसद्धाम्नि चैतन्यपूरे
बन्धं चाज्ञानभावे नियमितमभितः कुर्वती भिन्नभिन्नौ ।२-१८१।

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य तथा कर्म पर्याय-रूप परिणत पुद्‌गलद्रव्यका पिण्ड, इन दोनोका एकबन्धपर्यायरूप सम्बन्ध अनादिसे चला आया है, सो ऐसा सम्बन्ध जब छूट जाय, जीवद्रव्य अपने शुद्ध स्वरूपरूप परिणवे, अनन्त चतुष्टयरूप परिणवे, तथा पुद्‌गलद्रव्य ज्ञानावरणादि कर्म पर्यायको छोडे—जीवके प्रदेशोसे सर्वथा अबन्धरूप होकर सम्बन्ध छूट जाय, जीव-पुद्‌गल दोनो भिन्नभिन्न हो जावें, उसका नाम मोक्ष कहनेमे आता है। उस भिन्नभिन्न होनेका कारण ऐसा जो मोह राग द्वेष इत्यादि विभावरूप अशुद्ध परिणतिके मिटने पर जीवका शुद्धत्वरूप परिणमन। उसका विवरण इस प्रकार है कि शुद्धत्वपरिणमन सर्वथा सकल कर्मोके क्षय करनेका कारण है। ऐसा शुद्धत्वपरिणमन सर्वथा द्रव्यका परिणमनरूप है, निर्विकल्परूप है, इसलिए वचनके द्वारा कहनेका समर्थपना नही है। इस कारण इस रूपमे कहते है कि जीवके शुद्ध स्वरूपके अनुभवरूप परिणमाता है ज्ञानगुण, सो मोक्षका कारण है। उसका समाधान ऐसा है कि शुद्ध स्वरूपके अनुभवरूप है जो ज्ञान वह, जीवके शुद्धत्व-परिणमनको सर्वथा लिए हुए है। जिसको शुद्धत्व परिणमन होता है उस जीवको शुद्ध-स्वरूपका अनुभव अवश्य होता है, धोखा नही, अन्यथा सर्वथा प्रकार अनुभव नही होता, इसलिए शुद्ध स्वरूपका अनुभव मोक्षका कारण है। यहाँ अनेक प्रकारके मिथ्यादृष्टि जीव नाना प्रकारके विकल्प करते है, सो उनका समाधान करते है। कोई कहते है कि जीवका

स्वरूप और बधका स्वरूप जान लेना मोक्षमार्ग है। कोई कहते है कि बन्धका स्वरूप जानकर ऐसा चिन्तवन करना कि 'बन्ध कब छूटेगा, कैसे छूटेगा' ऐसी चिन्ता मोक्षका कारण है। ऐसा कहते है सो वे जीव झूठे है—मिथ्यादृष्टि है। मोक्षका कारण जैसा है वैसा कहते हैं—"इय प्रज्ञाच्छेत्री आत्मकर्मोभयस्य अन्तःसन्धिबन्धे निपतति' [**इयं**] वस्तुस्वरूपसे प्रगट है जो [**प्रज्ञा**] आत्माके शुद्धस्वरूप अनुभवसमर्थपनेसे परिणमा हुआ जीवका ज्ञानगुण, वही है [**छेत्री**] छैनी। भावार्थ इस प्रकार है कि सामान्यतया जिस किसी वस्तुको छेदकर दो करते है सो छैनीके द्वारा छेदते हैं। यहा भी जीव-कर्म को छेदकर दो करना है, उनको दो रूपसे छेदनेके लिए स्वरूपअनुभवसमर्थ ज्ञानरूप छैनी है, और तो दूसरा कारण न हुआ, न होगा। ऐसी प्रज्ञाछैनी जिस प्रकार छेदकर दो करती है उस प्रकार कहते हैं—[**आत्मकर्मोभयस्य**] आत्मा—चेतनामात्र द्रव्य, कर्म-पुद्गलका पिण्ड अथवा मोह राग द्वेषरूप अशुद्ध परिणति, ऐसी है उभय—दो वस्तुए, उनको [**अन्तःसन्धि**] यद्यपि एक क्षेत्रावगाहरूप है, बन्धपर्यायरूप है, अशुद्धत्व विकाररूप परिणमा है तथापि परस्पर सन्धि है, नि:सन्धि नही हुआ है, दो द्रव्योका एक द्रव्यरूप नही हुआ है ऐसा है जो—[**बन्धे**] ज्ञानछैनीके पैठनेका स्थान, उसमे [**निपतति**] ज्ञानछैनी पैठती है, पैठी हुई छेदकर भिन्नभिन्न करती है। कैसी है प्रज्ञाछैनी ? "शिता" ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम होनेपर, मिथ्यात्व कर्मका नाश होनेपर शुद्धचैतन्य-स्वरूपमे अत्यन्त पैठन समर्थ है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार यद्यपि लोह-सारकी छैनी अति पैनी होती है तो भी सन्धिका विचार कर देने पर छेद कर दो कर देती है, उसी प्रकार यद्यपि सम्यग्दृष्टि जीवका ज्ञान अत्यन्त तीक्ष्ण है तथापि जीव-कर्म की है जो भीतरमे सन्धि, उसमें प्रवेश करने पर प्रथम तो बुद्धिगोचर छेदकर दो करता है, पश्चात् सकल कर्मका क्षय होनेसे साक्षात् छेदकर भिन्नभिन्न करता है। कैसा है जीव-कर्मका अन्तः सन्धिबन्ध ? "सूक्ष्मे" अति ही दुर्लक्ष्य सन्धिरूप है। उसका विवरण इस प्रकार है—कि जो द्रव्यकर्म है ज्ञानावरणादि पुद्गलका पिण्ड, वह यद्यपि एक क्षेत्रा-वगाहरूप है तथापि उसकी तो जीवसे भिन्नपनेकी प्रतीति, विचारने पर उत्पन्न होती है, कारण कि द्रव्यकर्म पुद्गल पिण्डरूप है, यद्यपि एक क्षेत्रावगाहरूप है तथापि भिन्न-भिन्न प्रदेश है, अचेतन है, बँधता है, खुलता है—ऐसा विचार करने पर भिन्नपनेकी प्रतीति उत्पन्न होती है। नोकर्म है जो शरीर-मन-वचन उससे भी उस प्रकारसे विचारने पर भेद-प्रतीति उपजती है। भावकर्म जो मोह राग द्वेषरूप अशुद्धचेतनारूप परिणाम,

वे अशुद्ध परिणाम वर्तमानमे जीवके साथ एक परिणमनरूप है, तथा अशुद्ध परिणामके साथ वर्तमान मे जीव व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है, इस कारण उन परिणामोका जीवसे भिन्नपनेका अनुभव कठिन है, तथापि सूक्ष्म सन्धिका भेद पाडने पर भिन्न प्रतीति होती है। उसका विचार ऐसा है कि जिस प्रकार स्फटिकमणि स्वरूपसे स्वच्छतामात्र वस्तु है, लाल पीली काली पुरीका सयोग प्राप्त होने से लाल पीली काली इसरूप स्फटिकमणि झलकती है, वर्तमानमे स्वरूपका विचार करने पर स्वच्छतामात्र भूमिका स्फटिकमणि वस्तु है। उसमे लाल पीला कालापन परसयोगकी उपाधि है, स्फटिक-मणिका स्वभावगुण नही है। उसी प्रकार जीवद्रव्यका स्वच्छ चेतनामात्र स्वभाव है। अनादि सन्तानरूप मोहकर्मके उदयसे मोह राग द्वेषरूप रजक अशुद्ध चेतनारूप परिणमता है, तथापि वर्तमानमे स्वरूपका विचार करने पर चेतना भूमिमात्र तो जीव-वस्तु है, उसमे मोह राग द्वेपरूप रजकपना कर्मके उदयकी उपाधि है, वस्तुका स्वभाव-गुण नही है। इस प्रकार विचार करने पर भेद-भिन्न प्रतीति उत्पन्न होती है, जो अनुभवगोचर है। कोई प्रश्न करता है कि कितने कालके भीतर प्रज्ञाछैनी गिरती है–भिन्नभिन्न करती है ? उत्तर इस प्रकार है—"रभसात्" अति सूक्ष्म काल–एक समयमे गिरती है, उसी काल भिन्नभिन्न करती है। कैसी है प्रज्ञाछैनी ? "निपुणै कथ अपि पातिता" [**निपुणैः**] आत्मानुभवमे प्रवीण है जो सम्यग्दृष्टि जीव उनके द्वारा [**कथं अपि**] संसारका निकटपना ऐसी काललब्धि प्राप्त होनेसे [**पातिता**] स्वरूपमे पैठानेसे पैठती है। भावार्थ इस प्रकार है कि भेदविज्ञान बुद्धिपूर्वक विकल्परूप है, ग्राह्य-ग्राहक-रूप है, शुद्धस्वरूपके समान निर्विकल्प नही है, इसलिए उपायरूप है। कैसे हैं सम्यग्दृष्टि जीव ? "सावधानै" जीवका स्वरूप और कर्मका स्वरूप उनके भिन्नभिन्न विचारमे जागरूक हैं, प्रमादी नही है। कैसी है प्रज्ञाछैनी ? "अभित भिन्नभिन्नौ कुर्वती" [**अभितः**] सर्वथा प्रकार [**भिन्नभिन्नौ कुर्वती**] जीवको और कर्मको जुदा जुदा करती है। जिस प्रकार भिन्नभिन्न करती है उस प्रकार कहते है—"चैतन्यपूरे आत्मान मग्न कुर्वती अज्ञानभावे वन्ध नियमित कुर्वती" [**चैतन्य**] स्वपरस्वरूपग्राहक ऐसा जो प्रकाशगुण उसके [**पूरे**] त्रिकालगोचर प्रवाहमे [**आत्मानं**] जीवद्रव्यको [**मग्नं कुर्वती**] एक वस्तुरुप–ऐसा साधती है, भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध चेतनामात्र जीवका स्वरूप है ऐसा अनुभवगोचर आता है, [**अज्ञानभावे**] रागादिपनामे [**नियमितं बन्धं कुर्वती**] नियमसे बन्धका स्वभाव है–ऐसा साधती है। भावार्थ इस प्रकार है कि रागादि अशुद्ध-

पना कर्मबन्धकी उपाधि है, जीवका स्वरूप नही है ऐसा अनुभवगोचर आता है। कैसा है चैतन्यपूर ? "अन्त.स्थिरविशदलसद्धाम्नि" [अन्तः] सर्व असख्यात प्रदेशोंमें एक-स्वरूप, [स्थिर] सर्व काल शाश्वत, [विशद] सर्व काल शुद्धस्वरूप और [लसत्] सर्व काल प्रत्यक्ष ऐसा [धाम्नि] केवलज्ञान केवलदर्शन तेजपुञ्ज है जिसका, ऐसा है ।।२-१८१।।

(शार्दूलविक्रीडित)

भित्त्वा सर्वमपि स्वलक्षणबलाद्भेत्तुं हि यच्छक्यते
चिन्मुद्रांकितनिर्विभागमहिमा शुद्धश्चिदेवास्म्यहम् ।
भिद्यन्ते यदि कारकाणि यदि वा धर्मा गुणा वा यदि
भिद्यन्तां न भिदास्ति काचन विभौ भावे विशुद्धे चिति ।३-१८२।

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि जिसके शुद्धस्वरूपका अनुभव होता है वह जीव ऐसा परिणामसंस्कार (वाला) होता है। "अहं शुद्धः चित् अस्मि एव" [अहं] मैं [शुद्धः चित् अस्मि] शुद्ध चैतन्यमात्र हूँ, [एव] निश्चयसे ऐसा ही हूँ। 'चिन्मुद्राङ्कितनिर्विभागमहिमा" [चिन्मुद्रा] चेतनागुण उसके द्वारा [अङ्कित] चिह्नित कर दी ऐसी है [निर्विभाग] भेदसे रहित [महिमा] बडाई जिसकी, ऐसा हूँ। ऐसा अनुभव जिस प्रकार होता है उस प्रकार कहते है—"सर्वं अपि भित्त्वा" [सर्वं] जितनी कर्मके उदयकी उपाधि है उसको—[भित्त्वा] अनादिकालसे आपा जानकर अनुभवता था सो परद्रव्य जानकर—स्वामित्व छोड दिया। कैसा है परद्रव्य ? "यत् तु भेत्तुं शक्यते" [यत्] जो कर्मरूप परद्रव्य-वस्तु [भेत्तुं शक्यते] जीवसे भिन्न करनेको शक्य है अर्थात् दूर किया जा सकता है। किस कारणसे ? "स्वलक्षणबलात्" [स्वलक्षण] जीवका लक्षण चेतन, कर्मका लक्षण अचेतन—ऐसा भेद उसके [बलात्] सहायसे। कैसा हूँ मैं ? "यदि कारकाणि वा धर्मा वा गुणा भिद्यन्ते भिद्यन्ता चिति भावे काचन भिदा न" [यदि] जो [कारकाणि] आत्मा आत्माको आत्माके द्वारा आत्मामे ऐसा भेद [वा] अथवा [धर्माः] उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप द्रव्य-गुण-पर्यायरूप भेदबुद्धि अथवा [गुणाः] ज्ञानगुण, दर्शनगुण, सुखगुण इत्यादि अनन्त गुणरूप भेदबुद्धि [भिद्यन्ते] जो ऐसा भेद वचनके द्वारा उपजाया हुआ उपजता है, [तदा भिद्यन्तां] तो वचनमात्र भेद होओ, परन्तु [चिति भावे] चैतन्यसत्तामें तो [काचन भिदा न]

कोई भेद नही है, निर्विकल्पमात्र चैतन्य वस्तुका सत्त्व है। कैसा है चैतन्यभाव ? "विभौ" अपने स्वरूपको व्यापनशील है। और कैसा है ? "विशुद्धे" सर्व कर्मकी उपाधि-से रहित है ॥३-१८२॥

(शार्दूलविक्रीडित)

अद्वैतापि हि चेतना जगति चेद् दृग्ज्ञप्तिरूपं त्यजेत्
तत्सामान्यविशेषरूपविरहात्साऽस्तित्वमेव त्यजेत् ।
तत्त्यागे जडता चितोऽपि भवति व्याप्यो विना व्यापका-
दात्मा चान्तमुपैति तेन नियतं दृग्ज्ञप्तिरूपास्तु चित् ॥४-१८३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तेन चित् नियत दृग्ज्ञप्तिरूपा अस्तु" [तेन] तिस कारणसे [चित्] चेतनामात्र सत्ता [नियतं] अवश्य कर [दृग्ज्ञप्तिरूपा अस्तु] दर्शन ऐसा नाम, ज्ञान ऐसा नाम दो नाम–सज्ञाके द्वारा उपदिष्ट होओ। भावार्थ इस प्रकार है कि एक सत्त्वरूप चेतना, उसके नाम दो—एक तो दर्शन ऐसा नाम, दूसरा ज्ञान ऐसा नाम। ऐसा भेद होता है तो होओ, विरुद्ध तो कुछ नही है ऐसे अर्थको दृढ करते है— "चेत् जगति चेतना अद्वैता अपि तत् दृग्ज्ञप्तिरूप त्यजेत्। सा अस्तित्व एव त्यजेत्" [चेत्] जो ऐसा है कि [जगति] त्रैलोक्यवर्ती जीवोमे प्रगट है [चेतना] स्वपरग्राहक शक्ति; कैसी है ? [अद्वैता अपि] एक प्रकाशरूप है, तथापि [दृग्ज्ञप्तिरूपं त्यजेत्] दर्शनरूप चेतना, ज्ञानरूप चेतना ऐसे दो नामोको छोडे, तो उसमे तीन दोष उत्पन्न होते है। प्रथम दोष—"सा अस्तित्व एव त्यजेत्" [सा] वह चेतना [अस्तित्वं एव त्यजेत्] अपने सत्त्वको अवश्य छोडे। भावार्थ इस प्रकार है कि चेतना सत्त्व नही है ऐसा भाव प्राप्त होगा। किस कारणसे ? "सामान्यविशेषरूपविरहात्" [सामान्य] सत्तामात्र [विशेष] पर्यायरूप, उनके [विरहात्] रहितपनाके कारण। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार समस्त जीवादि वस्तु सत्त्वरूप है, वही सत्त्व पर्यायरूप है, उसी प्रकार चेतना अनादिनिधन सत्तास्वरूप वस्तुमात्र निर्विकल्प है, इस कारण चेतनाका दर्शन ऐसा नाम कहा जाता है, कारण कि समस्त ज्ञेय वस्तुको ग्रहण करती है, जिस तिस ज्ञेयाकाररूप परिणमती है, ज्ञेयाकाररूप परिणमन चेतनाकी पर्याय है, तिसरूप परिणमती है, इसलिए चेतनाका ज्ञान ऐसा नाम है। ऐसी दो अवस्थाओको छोड दे तो चेतना वस्तु नही है ऐसी प्रतीति उत्पन्न हो जाय। यहाँ कोई आशका करेगा कि चेतना नही तो नही रहो, जीव द्रव्य तो विद्यमान है ? उत्तर इस प्रकार है कि चेतना मात्रके द्वारा

जीव द्रव्य साधा है। इस कारण उस चेतनाके सिद्ध हुए बिना जीव द्रव्य भी सिद्ध नहीं होगा, अथवा जो सिद्ध होगा तो वह पुद्गल द्रव्यके समान अचेतन सिद्ध होगा, चेतन नहीं सिद्ध होगा। इसी अर्थको कहते हैं, दूसरा दोष ऐसा—"तत्त्यागे चितः अपि जडता भवति" [**तत्त्यागे**] चेतनाका अभाव होनेपर [**चितः अपि**] जीव द्रव्यको भी [**जडता भवति**] पुद्गलद्रव्यके समान जीव द्रव्य भी अचेतन है ऐसी प्रतीति उत्पन्न होती है। 'च" तीसरा दोष ऐसा कि "व्यापकात् विना व्याप्यः आत्मा अन्त उपैति" [**व्यापकात् विना**] चेतन गुणका अभाव होनेपर [**व्याप्यः आत्मा**] चेतनागुणमात्र है जो जीव द्रव्य वह [**अन्तं उपैति**] मूलसे जीव द्रव्य नही है ऐसी प्रतीति भी उत्पन्न होती है। ऐसे तीन दोष मोटे दोष है। ऐसे दोषोसे जो कोई भय करता है उसे ऐसा मानना चाहिए कि चेतना दर्शन-ज्ञान ऐसे दो नाम–सज्ञा विराजमान है। ऐसा अनुभव सम्यक्त्व है ॥४-१८३॥

(इन्द्रवज्रा)

एकश्चितश्चिन्मय एव भावो
भावाः परे ये किल ते परेषाम्।
ग्राह्यस्ततश्चिन्मय एव भावो
भावाः परे सर्वत एव हेयाः ॥५-१८४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"चित चिन्मय भावः एव" [**चितः**] जीव द्रव्यका [**चिन्मयः**] चेतनामात्र ऐसा [**भावः**] स्वभाव है, [**एव**] निश्चयसे ऐसा ही है, अन्यथा नही है। कैसा है चेतनामात्र भाव ? "एक." निर्विकल्प है, निर्भेद है, सर्वथा शुद्ध है। "किल ये परे भावाः ते परेषा" [**किल**] निश्चयसे [**ये परे भावाः**] शुद्ध चैतन्यस्वरूपसे अनमिलते हैं जो द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मसम्बन्धी परिणाम वे [**परेषां**] समस्त पुद्गलकर्मके है, जीवके नही है। "तत चिन्मय. भाव ग्राह्य. एव परे भावा सर्वत. हेया एव" [**ततः**] तिस कारणसे [**चिन्मयः भावः**] शुद्ध चेतनामात्र है जो स्वभाव वह [**ग्राह्य एव**] जीवका स्वरूप है ऐसा अनुभव करना योग्य है, [**परे भावाः**] इससे अनमिलते है जो द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म स्वभाव वे [**सर्वतः हेयाः एव**] सर्वथा प्रकार जीवका स्वरूप नही है ऐसा अनुभव करना योग्य है। ऐसा अनुभव सम्यक्त्व है, सम्यक्त्वगुण मोक्षका कारण है ॥५-१८४॥

(शार्दूलविक्रीडित)

सिद्धान्तोऽयमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः सदैवास्म्यहम् ।
एते ये तु समुल्लसन्ति विविधा भावाः पृथग्लक्षणा-
स्तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि ।६-१८५।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"मोक्षार्थिभि. अय सिद्धान्त सेव्यता" [मोक्षार्थिभिः] सकल कर्मका क्षय होने पर होता है अतीन्द्रिय सुख, उसे उपादेयरूप अनुभवते है ऐसे है जो कोई जीव उनके द्वारा [अयं सिद्धान्तः] जैसा कहेगे वस्तुका स्वरूप उसका [सेव्यतां] निरन्तर अनुभव करो । कैसे हैं मोक्षार्थी जीव ? "उदात्तचित्तचरितै" [उदात्त] ससार शरीर भोगसे रहित है [चित्तचरितैः] मनका अभिप्राय जिनका, ऐसे है । कैसा है वह परमार्थ ? "अह शुद्धं चिन्मय ज्योति सदा एव अस्मि" [अहं] स्वसवेदन प्रत्यक्ष हूँ जो मैं जीवद्रव्य [शुद्धं चिन्मयं ज्योतिः] शुद्ध ज्ञानस्वरूप प्रकाश [सदा] सर्वकाल [एव] निश्चयसे [अस्मि] हूँ । "तु ये एते विविधा भावा ते अह नास्मि" [तु] एक विशेष है—[ये एते विविधा भावाः] शुद्ध चैतन्यस्वरूपसे अनमिलते हैं जो रागादि अशुद्धभाव, शरीर आदि सुख दु ख आदि नाना प्रकार अशुद्ध पर्याय, [ते अहं नास्मि] ये सब जीव-द्रव्यस्वरूप नही हैं । कैसे है अशुद्ध भाव ? "पृथग्लक्षणा" मेरे शुद्धचैतन्य स्वरूपसे नही मिलते है । किस कारणसे ? "यत अत्र ते समग्रा अपि मम परद्रव्य" [यतः] जिस कारणसे [अत्र] निजस्वरूपका अनुभव करनेपर, [ते समग्राः अपि] जितने है रागादि-अशुद्धविभावपर्याय वे [मम परद्रव्यं] मुझे परद्रव्यरूप हैं, कारण कि शुद्ध चैतन्यलक्षण-से मिलते हुए नही हैं, इसलिए समस्त विभावपरिणाम हेय हैं ।।६-१८५।।

(अनुष्टुप्)

परद्रव्यग्रहं कुर्वन् बध्येतैवापराधवान् ।
बध्येतानपराधो न स्वद्रव्ये संवृतो मुनिः ।।७-१८६।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अपराधवान् वध्येत एव" [अपराधवान्] शुद्ध चिद्रूप अनुभवस्वरूपसे भ्रष्ट है जो जीव वह [बध्येत] ज्ञानावरणादि कर्मोके द्वारा बाँधा जाता है । कैसा है ? "परद्रव्यग्रहं कुर्वन्" [परद्रव्य] शरीर मन वचन रागादि अशुद्धपरिणाम उनका [ग्रहं] आत्मबुद्धिरूप स्वामित्वको [कुर्वन्] करता हुआ । "अनपराध मुनि

न बध्येत" [अनपराधः] कर्मके उदयके भावको आत्माका जानकर नही अनुभवता है ऐसा है जो [मुनिः] परद्रव्यसे विरक्त सम्यग्दृष्टि जीव [न बध्येत] ज्ञानावरणादि कर्म-पिण्डके द्वारा नही बाँधा जाता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार कोई चोर परद्रव्यको चुराता है, गुनहगार होता है, गुनहगार होनेसे बाँधा जाता है उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव परद्रव्यरूप है जो द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म उनको आपा जान अनुभवता है, शुद्धस्वरूप अनुभवसे भ्रष्ट है, परमार्थबुद्धिसे विचार करनेपर गुनहगार है, ज्ञानावरणादि कर्मका बन्ध करता है। सम्यग्दृष्टि जीव ऐसे भावसे रहित है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "स्वद्रव्ये सवृत. अपने आत्मद्रव्यमें सवररूप है अर्थात् आत्मामे मग्न है।।७-१८६।

(मालिनी)

अनवरतमनन्तैर्बध्यते सापराधः
स्पृशति निरपराधो बन्धनं नैव जातु ।
नियतमयमशुद्धं स्वं भजन्सापराधो
भवति निरपराधः साधु शुद्धात्मसेवी ।।८-१८७।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"सापराध अनवरत अनन्तैः बध्यते" [सापराधः] परद्रव्यरूप है पुद्गलकर्म, उसको आपरूप जानता है ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव [अनवरतं] अखण्ड धाराप्रवाहरूप [अनन्तैः] गणनासे अतीत ज्ञानावरणादिरूप वँधी है पुद्गलवर्गणा उनके द्वारा [बध्यते] बाँधा जाता है। "निरपराध जातु बन्धनं न एव स्पृशति" [निरपराधः] शुद्धस्वरूपको अनुभवता है ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव [जातु] किसी भी कालमे [बन्धनं] पूर्वोक्त कर्मबन्धको [न स्पृशति] नही छूता है, [एव] निश्चयसे। आगे सापराध–निरपराधका लक्षण कहते है—"अयं अशुद्ध स्वं नियत भजन् सापराधः भवति" [अयं] मिथ्यादृष्टि जीव, [अशुद्धं] रागादि अशुद्ध परिणामरूप परिणमा है ऐसे [स्वं] आपसम्बन्धी जीवद्रव्यको [नियतं भजन्] ऐसा ही निरन्तर अनुभवता हुआ [सापराधः भवति] अपराध सहित होता है। "साधु शुद्धात्मसेवी निरपराध. भवति" [साधु] जैसा है वैसा [शुद्धात्म] सकल रागादि अशुद्धपनासे भिन्न शुद्धचिद्रूपमात्र ऐसे जीवद्रव्यके [सेवी] अनुभवसे विराजमान है जो सम्यग्दृष्टि जीव वह [निरपराधः] सर्व अपराधसे रहित है, इसलिए कर्मका बन्धक नही होता ।।८-१८७।।

अतो हताः प्रमादिनो गताः सुखासीनतां
प्रलीनं चापलमुन्मूलितमालंबनम् ।
आत्मन्येवालानितं च चित्त-
मासंपूर्णविज्ञानघनोपलब्धेः ॥६-१८८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अतः प्रमादिन हता" [अतः प्रमादिनः] शुद्ध स्वरूपकी प्राप्तिसे भ्रष्ट हैं जो जीव, वे [हताः] मोक्षमार्गके अधिकारी नही है, ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवोका धिक्कार किया है। कैसे हैं ? "सुखासीनता गता" कर्मके उदयसे प्राप्त जो भोगसामग्री उसमे सुखकी वाछा करते है। "चापल प्रलीन" [चापलं] रागादि अशुद्ध परिणामोंसे होती है सर्वप्रदेशोमे आकुलता [प्रलीनं] वह भी हेय की। "आलम्बन उन्मूलित" [आलम्बनं] बुद्धिपूर्वक ज्ञान करते हुए जितना पढना विचारना चिन्तवन करना स्मरण करना इत्यादि है वह [उन्मूलितं] मोक्षका कारण नही है ऐसा जानकर हेय ठहराया है। "आतमनि एव चित्त आलानित" [आत्मनि एव] शुद्धस्वरूपमे एकाग्र होकर [चित्तं आलानितं] मनको बाँधा है। ऐसा कार्य जिस प्रकार हुआ उस प्रकार कहते है—"आसम्पूर्णविज्ञानघनोपलब्धे" [आसम्पूर्णविज्ञान] निरावरण केवलज्ञान उसका [घन] समूह जो आत्मद्रव्य, उसकी [उपलब्धेः] प्रत्यक्ष प्राप्ति होनेसे ॥६-१८८॥

(वसन्ततिलका)

यत्र प्रतिक्रमणमेव विषं प्रणीतं
तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुतः स्यात् ।
तत्किं प्रमाद्यति जनः प्रपतन्नधोऽधः
किं नोर्ध्वमूर्ध्वमधिरोहति निष्प्रमादः ।१०-१८९।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तत् जन किं प्रमाद्यति" [तत्] तिस कारणसे [जनः] समस्त ससारी जीवराशि [किं प्रमाद्यति] क्यो प्रमाद करती है। भावार्थ इस प्रकार है कि—कृपासागर है सूत्रके कर्ता आचार्य, वे ऐसा कहते है कि नाना प्रकारके विकल्प करनेसे साध्यसिद्धि तो नही है। कैसा है नाना प्रकारके विकल्प करनेवाला जन ? "अध अध प्रपतन्" जैसे जैसे अधिक क्रिया करता है, अधिक अधिक विकल्प करता है, वैसे वैसे अनुभवसे भ्रष्टसे भ्रष्ट होता है। तिस कारणसे "जन ऊर्ध्वं ऊर्ध्व किं न अधिरोहति" [जनः] समस्त ससारी जीवराशि [ऊर्ध्व ऊर्ध्व] निर्विकल्पसे निर्विकल्प अनुभवरूप [किं न अधिरोहति] क्यो नही परिणमता है ? कैसा

है जन ? "नि प्रमाद." निर्विकल्प है। कैसा है निर्विकल्प अनुभव ? "यत्र प्रतिक्रमणं विषं एव प्रणीतं" [यत्र] जिसमें [प्रतिक्रमणं] पठन, पाठन, स्मरण, चिन्तवन, स्तुति, वन्दना इत्यादि अनेक क्रियारूप विकल्प [विषं एव प्रणीतं] विषके समान कहा है। "तत्र अप्रतिक्रमणं सुधा कुटः एव स्यात्" [तत्र] उस निर्विकल्प अनुभवमें [अप्रतिक्रमणं] न पढ़ना, न पढ़ाना न वंदना, न निन्दना ऐसा भाव [सुधा कुटः एव स्यात्] अमृतके निधानके समान है। भावार्थ ऐसा है कि निर्विकल्प अनुभव सुखरूप है, इसलिये उपादेय है; नाना प्रकारके विकल्प आकुलतारूप है, इसलिये हेय हैं ॥१०-१८९॥

(पृथ्वी)

प्रमादकलितः कथं भवति शुद्धभावोऽलसः
कषायभरगौरवादलसता प्रमादो यतः।
अतः स्वरसनिर्भरे नियमितः स्वभावे भवन्
मुनिः परमशुद्धतां व्रजति मुच्यते चाऽचिरात् ।११-१९०।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अलसः प्रमादकलितः शुद्धभाव. कथं भवति" [अलसः] अनुभवमे शिथिल है ऐसा जीव, और कैसा है ? [प्रमादकलितः] नाना प्रकारके विकल्पोसे सयुक्त है ऐसा जीव, [शुद्धभावः कथं भवति] शुद्धोपयोगी कैसे होता है ? अपि तु नही होता। "यतः अलसता प्रमादः कपायभरगौरवात्" [यतः] जिस कारणसे [अलसता] अनुभवमें शिथिलता [प्रमादः] नाना प्रकारका विकल्प है। किस कारणसे होता है ? [कषाय] रागादि अशुद्ध परिणतिके [भर] उदयके [गौरवात्] तीव्रपनासे होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जो जीव शिथिल है, विकल्प करता है वह जीव शुद्ध नही है; कारण कि शिथिलपना, विकल्पपना अशुद्धपनाका मूल है। "अत मुनिः परमशुद्धतां व्रजति च अचिरात् मुच्यते" [अतः] इस कारणसे [मुनिः] सम्यग्दृष्टि जीव [परमशुद्धतां व्रजति] शुद्धोपयोग परिणतिरूप परिणमता है [च] ऐसा होता हुआ [अचिराद् मुच्यते] उसी काल कर्मबन्धसे मुक्त होता है। कैसा है मुनि ? "स्वभावे नियमित. भवन्" [स्वभावे] शुद्ध स्वरूपमें [नियमितःभवन्] एकाग्ररूपसे मग्न होता हुआ। कैसा है स्वभाव ? "स्वरस-निर्भरे" [स्वरस] चेतनागुणसे [निर्भरे] परिपूर्ण है ॥११-१९०॥

(शार्दूलविक्रीडित)

त्यक्त्वाऽशुद्धिविधायि तत्किल परद्रव्यं समग्रं स्वयं
स्वद्रव्ये रतिमेति यः स नियतं सर्वापराधच्युतः।

बन्धध्वंसमुपेत्य नित्यमुदितः स्वज्योतिरच्छोच्छल-
च्चैतन्यामृतपूरपूर्णमहिमा शुद्धो भवन्मुच्यते ॥१२-१६१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"सः मुच्यते" [सः] सम्यग्दृष्टि जीव [मुच्यते] सकल कर्मोका क्षयकर अतीन्द्रिय सुखलक्षण मोक्षको प्राप्त होता है। कैसा है? "शुद्धो भवन्" राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणतिसे भिन्न होता हुआ। और कैसा है? "स्वज्योतिरच्छोच्छलच्चैतन्यामृतपूरपूर्णमहिमा" [स्वज्योतिः] द्रव्यके स्वभावगुणरूप [अच्छ] निर्मल, [उच्छलत्] धाराप्रवाहरूप परिणमनशील ऐसा जो [चैतन्य] चेतनागुण, उसरूप जो [अमृत] अतीन्द्रिय सुख, उसके [पूर] प्रवाहसे [पूर्ण] तन्मय है [महिमा] माहात्म्य जिसका, ऐसा है। और कैसा है? "नित्यमुदित" सर्व काल अतीन्द्रिय सुखस्वरूप है। और कैसा है? "नियत सर्वापराधच्युत" [नियतं] अवश्य कर [सर्वापराध] जितने सूक्ष्मस्थूलरूप राग द्वेष मोह परिणाम, उनसे [च्युतः] सर्व प्रकार रहित है। क्या करता हुआ ऐसा होता है? "बन्धध्वस उपेत्य" [बन्ध] ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्मकी बन्धरूप पर्यायके [ध्वंसं] सत्ताके नाशरूप [उपेत्य] अवस्थाको प्राप्त कर। और क्या करता हुआ ऐसा होता है? "तत् समग्र परद्रव्य स्वय त्यक्त्वा" द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मसामग्रीके मूलसे ममत्वको स्वय छोडकर। कैसा है। पर द्रव्य? "अशुद्धिविधायि" अशुद्ध परिणतिको बाह्यरूप निमित्त मात्र है। "किल" निश्चयसे। "य स्वद्रव्ये रति एति" [यः] जो सम्यग्दृष्टि जीव [स्वद्रव्ये] शुद्ध चैतन्यमे [रतिं एति] निर्विकल्प अनुभवसे उत्पन्न हुए सुखमे मग्नपनाको प्राप्त हुआ है। भावार्थ इस प्रकार है—सर्व अशुद्धपनाके मिटनेसे शुद्धपना होता है। उसके सहाराका है शुद्ध चिद्रूपका अनुभव, ऐसा मोक्षमार्ग है ॥१२-१६१॥

(मन्दाक्रान्ता)

बन्धच्छेदात्कलयदतुलं मोक्षमक्षय्यमेत-
न्नित्योद्योतस्फुटितसहजावस्थमेकान्तशुद्धम् ।
एकाकारस्वरसभरतोऽत्यन्तगम्भीरधीरं
पूर्णं ज्ञानं ज्वलितमचले स्वस्य लीनं महिम्नि ।१३-१६२।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एतत् पूर्णं ज्ञान ज्वलित" [एतत्] जिस प्रकार कहा है कि [पूर्णं ज्ञानं] समस्त कर्ममलकलकका विनाश होनेसे, जीव द्रव्य जैसा था

अनन्त गुण विराजमान, वैसा [ज्वलितं] प्रगट हुआ। कैसा प्रगट हुआ ? "मोक्षं कलयत्" [मोक्षं] जीवकी जो नि.कर्मरूप अवस्था, उस [कलयत्] अवस्थारूप परिणमता हुआ। कैसा है मोक्ष ? "अक्षय्य" आगामी अनन्त काल पर्यन्त अविनश्वर है, [अतुलं] उपमा रहित है। किस कारणसे ? "बन्धच्छेदात्" [बन्ध] ज्ञानावरणादि आठ कर्मके [छेदात्] मूल सत्तासे नाशद्वारा। कैसा है शुद्ध ज्ञान ? "नित्योद्योतस्फुटितसहजावस्थ" [नित्योद्योत] शाश्वत प्रकाशसे [स्फुटित] प्रगट हुआ है [सहजावस्थं] अनन्त गुण विराजमान शुद्ध जीव द्रव्य जिसको, ऐसा है। और कैसा है ? "एकान्तशुद्धं" सर्वथा प्रकार शुद्ध है। और कैसा है ? "अत्यन्तगम्भीरधीरं" [अत्यन्तगम्भीर] अनन्त गुण विराजमान ऐसा है, [धीरं] सर्व काल शाश्वत है। किस कारणसे ? "एकाकारस्वरसभरत." [एकाकार] एकरूप हुए [स्वरस] अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य्यके [भरतः] अतिशयके कारण। और कैसा है ? "स्वस्य अचले महिम्नि लीन" [स्वस्य अचले महिम्नि] अपने निष्कम्प प्रतापमें [लीनं] मग्नरूप है। भावार्थ इस प्रकार है कि सकलकर्मक्षयलक्षण मोक्षमें आत्मद्रव्य स्वाधीन है, अन्यत्र चतुर्गतिमे जीव पराधीन है। मोक्षका स्वरूप कहा ॥१३-१९२॥



[१०]

सर्वविशुद्धज्ञान-अधिकार

(मन्दाक्रान्ता)

नीत्वा सम्यक् प्रलयमखिलान् कर्तृभोक्त्रादिभावान्
दूरीभूतः प्रतिपदमयं बन्धमोक्षप्रक्लृप्तेः ।
शुद्धः शुद्धः स्वरसविसरापूर्णपुण्याचलार्चि-
ष्टंकोत्कीर्णप्रकटमहिमा स्फूर्जति ज्ञानपुञ्जः ॥१-१९३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अयं ज्ञानपुञ्जः स्फूर्जति" [अयं] यह विद्यमान [ज्ञानपुञ्जः] शुद्ध जीवद्रव्य [स्फूर्जति] प्रगट होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि यहाँ से लेकर जीवका जैसा शुद्ध स्वरूप है उसे कहते हैं। कैसा है ज्ञानपुञ्ज ? "टङ्कोत्कीर्ण-प्रकटमहिमा" [टंकोत्कीर्ण] सर्व काल एकरूप ऐसा है [प्रकट] स्वानुभवगोचर [महिमा] स्वभाव जिसका, ऐसा है। और कैसा है ? "स्वरसविसरापूर्णपुण्याचलार्चि" [स्वरस] शुद्ध ज्ञानचेतनाके [विसर] अनन्त अशभेदसे [आपूर्ण] सम्पूर्ण ऐसा है [पुण्य] निरावरण ज्योति रूप [अचल] निश्चल [अर्चिः] प्रकाशस्वरूप जिसका, ऐसा है। और कैसा है ? "शुद्ध शुद्ध" शुद्ध शुद्ध है, अर्थात् दो वार शुद्ध कहनेसे अति ही विशुद्ध है। और कैसा है ? "बन्धमोक्षप्रक्लृप्ते. प्रतिपद दूरीभूत" [बन्ध] ज्ञानावरणादि कर्मपिण्डसे सम्बन्धरूप एक क्षेत्रावगाह, [मोक्ष] सकलकर्मका नाश होनेपर जीवके स्वरूपका प्रगटपना, ऐसे—[प्रक्लृप्तेः] जो दो विकल्प, उनसे [प्रतिपदं] एकेन्द्रियसे लेकर पचेन्द्रिय पर्यायरूप जहाँ है वहाँ [दूरीभूतः] अति ही भिन्न है। भावार्थ इस प्रकार है कि एकेन्द्रियसे लेकर पचेन्द्रिय तक जीवद्रव्य जहाँ तहाँ, द्रव्यस्वरूपके विचारकी अपेक्षा बन्ध ऐसे मुक्त ऐसे विकल्पसे रहित है, द्रव्यका स्वरूप जैसा है वैसा ही है। क्या करता हुआ जीवद्रव्य ऐसा है ? "अखिलान् कर्तृभोक्त्रादिभावान् सम्यक् प्रलय नीत्वा" [अखिलान्] गणना करने पर अनन्त है ऐसे जो [कर्तृ] 'जीव कर्ता

है' ऐसा विकल्प [भोक्तृ] 'जीव भोक्ता है' ऐसा विकल्प, [आदि भावान्] इनसे लेकर अनन्त भेद उनका [सम्यक्] मूलसे [प्रलयं नीत्वा] विनाशकर। ऐसा कहते है ॥१-१९३॥

(अनुष्टुप्)

कर्तृत्वं न स्वभावोऽस्य चितो वेदयितृत्ववत् ।
अज्ञानादेव कर्तायं तदभावादकारकः ॥२-१९४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अस्य चितः कर्तृत्वं न स्वभावः" [अस्य चितः] चैतन्यमात्र स्वरूप जीवका [कर्तृत्वं] ज्ञानावरणादि कर्मको करे अथवा रागादि परिणामको करे ऐसा [न स्वभावः] सहजका गुण नही है; दृष्टान्त कहते है—"वेदयितृत्ववत्" जिस प्रकार जीव कर्मका भोक्ता भी नही है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य कर्मका भोक्ता हो तो कर्ता होवे, सो तो भोक्ता भी नहीं है, इससे कर्ता भी नही है। "अयं कर्ता अज्ञानात् एव" [अयं] यह जीव [कर्ता] रागादि-अशुद्ध परिणामको करता है ऐसा भी है सो किस कारणसे ? [अज्ञानात् एव] कर्मजनित भावमे आत्मबुद्धि ऐसा है जो मिथ्यात्वरूप विभावपरिणाम, उसके कारण जीव कर्ता है। भावार्थ इस प्रकार है कि—जीववस्तु रागादिविभावपरिणामका कर्ता है ऐसा जीवका स्वभावगुण नही है, परन्तु अशुद्धरूप विभावपरिणति है। "तदभावात् अकारक." [तदभावात्] मिथ्यात्व, राग-द्वेषरूप विभावपरिणति मिटती है सो उसके मिटनेसे [अकारकः] जीव सर्वथा अकर्ता होता है ॥२-१९४॥

(शिखरिणी)

अकर्ता जीवोऽयं स्थित इति विशुद्धः स्वरसतः
स्फुरच्चिज्ज्योतिर्भिश्छुरितभुवनाभोगभवनः ।
तथाप्यस्यासौ स्याद्यदिह किल बन्धः प्रकृतिभिः
स खल्वज्ञानस्य स्फुरति महिमा कोऽपि गहनः ।३-१९५।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अयं जीव· अकर्ता इति स्वरसत· स्थितः" [अयं जीवः] विद्यमान है जो चैतन्यद्रव्य वह [अकर्ता] ज्ञानावरणादिका अथवा रागादि-अशुद्ध-परिणामका कर्ता नही है [इति] ऐसा सहज [स्वरसतः स्थितः] स्वभावसे अनादि-निधन ऐसा ही है। कैसा है ? "विशुद्ध." द्रव्यकी अपेक्षा द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मसे

भिन्न है। "स्फुरच्चिज्ज्योतिर्भिच्छुरितभुवनाभोगभवन." [स्फुरत्] प्रकाशरूप ऐसे [चिज्ज्योतिर्भि] चेतनागुणके द्वारा [छुरित] प्रतिविम्बित है [भुवनाभोगभवनः] अनन्त द्रव्य अपनी अतीत अनागत वर्तमान समस्त पर्यायसहित जिसमे, ऐसा है। "तथापि किल इह अस्य प्रकृतिभि यत् असौ वन्ध स्यात्" [तथापि] शुद्ध है जीव द्रव्य तो भी [किल] निश्चयसे [इह] ससार अवस्थामे [अस्य] जीवको [प्रकृतिभिः] ज्ञानावरणादि कर्मरूप [यत् असौ वन्धः स्यात्] जो कुछ वन्ध होता है "स. खलु अज्ञानस्य क: अपि महिमा स्फुरति" [सः] जो वन्ध होता है वह [खलु] निश्चयसे [अज्ञानस्य कः अपि महिमा स्फुरति] मिथ्यात्वरूप विभावपरिणमनशक्तिका कोई ऐसा ही स्वभाव है। कैसा है ? "गहन" असाध्य है। भावार्थ इस प्रकार है—जीव द्रव्य ससार अवस्थामे विभावरूप मिथ्यात्व, राग-द्वेप-मोह परिणामरूप परिणमा है, इस कारण जैसा परिणमा है वैसे भावोका कर्ता होता है, अशुद्ध भावोका कर्ता होता है। अशुद्ध भावोके मिटनेपर जीवका स्वभाव अकर्ता है ॥३-१९५॥

(अनुष्टुप्)

भोक्तृत्वं न स्वभावोऽस्य स्मृतः कर्तृत्ववच्चितः ।
अज्ञानादेव भोक्तायं तदभावादवेदकः ॥४-१९६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अस्य चित भोक्तृत्व स्वभाव न स्मृत" [अस्यः चितः] चेतनद्रव्यका, [भोक्तृत्वं] ज्ञानावरणादि कर्मके फलका अथवा सुख-दु खरूप कर्मफलचेतनाका अथवा रागादि अशुद्धपरिणामरूप कर्मचेतनाका भोक्ता जीव है ऐसा [स्वभावः] जीव द्रव्यका सहज गुण, ऐसा तो [न स्मृतः] गणधरदेवने नही कहा है, जीवका भोक्ता स्वभाव नही है ऐसा कहा है, दृष्टान्त कहते है—"कर्तृत्ववत्" जिस प्रकार जीवद्रव्य कर्मका कर्ता भी नही है। "अय जीव भोक्ता" यही जीव द्रव्य अपने सुख-दु खरूप परिणामको भोगता है ऐसा भी है सो किस कारणसे ? "अज्ञानात् एव" अनादिसे कर्मका संयोग है, इसलिए मिथ्यात्व राग द्वेप अशुद्ध विभावरूप परिणमा है, इस कारण भोक्ता है। "तदभावात् अवेदक" मिथ्यात्वरूप विभावपरिणामका नाश होनेसे जीव द्रव्य साक्षात् अभोक्ता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार जीव द्रव्यका अनन्तचतुष्टय स्वरूप है उस प्रकार कर्मका कर्तापन–भोक्तापन स्वरूप नही है। कर्मकी उपाधिसे विभावरूप अशुद्धपरिणतिरूप विकार है, इसलिए विनाशीक है। उस

विभावपरिणतिके विनाश होनेपर जीव अकर्ता है, अभोक्ता है। आगे मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यकर्मका अथवा भावकर्मका कर्ता है, सम्यग्दृष्टि कर्ता नही है ऐसा कहते है ॥४-१९६॥

(शार्दूलविक्रीडित)

अज्ञानी प्रकृतिस्वभावनिरतो नित्यं भवेद्वेदको
ज्ञानी तु प्रकृतिस्वभावविरतो नो जातुचिद्वेदकः ।
इत्येवं नियमं निरूप्य निपुणैरज्ञानिता त्यज्यतां
शुद्धैकात्ममये महस्यचलितैरासेव्यतां ज्ञानिता ॥५-१९७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"निपुणै. अज्ञानिता त्यज्यता" [**निपुणैः**] सम्यग्दृष्टि जीवोको [**अज्ञानिता**] परद्रव्यमें आत्मबुद्धि ऐसी मिथ्यात्वपरिणति [**त्यज्यतां**] जिस प्रकार मिटे उस प्रकार सर्वथा मेटने योग्य है। कैसे है सम्यग्दृष्टि जीव? "महसि अचलितै" शुद्ध चिद्रूपके अनुभवमें अखण्ड धारारूप मग्न हैं। कैसा है शुद्ध चिद्रूपका अनुभव? "शुद्धैकात्ममये" [**शुद्ध**] समस्त उपाधिसे रहित ऐसा जो [**एकात्म**] अकेला जीवद्रव्य [**मये**] उसके स्वरूप है। और क्या करना है? "ज्ञानिता आसेव्यतां" शुद्ध वस्तुके अनुभवरूप सम्यक्त्वपरिणतिरूप सर्वकाल रहना उपादेय है। क्या जानकर ऐसा होवे? "इति एव नियम निरूप्य" [**इति**] जिस प्रकार कहते है— [**एवं नियमं**] ऐसे वस्तुस्वरूप परिणामनके निश्चयको [**निरूप्य**] अवधार करके। वह वस्तुका स्वरूप कैसा? "अज्ञानी नित्यं वेदक. भवेत्" [**अज्ञानी**] मिथ्यादृष्टि जीव [**नित्यं**] सर्वकाल [**वेदकः भवेत्**] द्रव्यकर्मका, भावकर्मका भोक्ता होता है ऐसा निश्चय है, मिथ्यात्वका परिणमन ऐसा ही है। कैसा है अज्ञानी? "प्रकृतिस्वभावनिरत:" [**प्रकृति**] ज्ञानावरणादि आठ कर्मके [**स्वभाव**] उदय होनेपर नाना प्रकार चतुर्गतिशरीर रागादिभाव, सुख-दुखपरिणति इत्यादिमे [**निरतः**] आपा जान एकत्वबुद्धिरूप परिणमा है। "तु ज्ञानी जातु वेदक नो भवेत्" [**तु**] मिथ्यात्वके मिटने पर ऐसा भी है कि [**ज्ञानी**] सम्यग्दृष्टि जीव [**जातु**] कदाचित् [**वेदकः नो भवेत्**] द्रव्यकर्मका, भावकर्मका भोक्ता नही होता, ऐसा वस्तुका स्वरूप है। कैसा है ज्ञानी? "प्रकृतिस्वभावविरत." [**प्रकृति**] कर्मके [**स्वभाव**] उदयके कार्यमे [**विरतः**] हेय जानकर छूट गया है स्वामित्वपना जिसका, ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवके सम्यक्त्व होनेपर अशुद्धपना मिटा है, इसलिए भोक्ता नही है ॥५-१९७॥

(वसन्ततिलका)

ज्ञानी करोति न न वेदयते च कर्म
जानाति केवलमयं किल तत्स्वभावम् ।
जानन्परं करणवेदनयोरभावा-
च्छुद्धस्वभावनियतः स हि मुक्त एव ।।६-१९८।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ज्ञानी कर्म न करोति च न वेदयते" [ज्ञानी] सम्यग्-दृष्टि जीव [कर्म न करोति] रागादि अशुद्ध परिणामोका कर्ता नही है । [च] और [न वेदयते] सुख दु खसे लेकर अशुद्ध परिणामोका भोक्ता नही है । कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "किल अय तत्स्वभाव इति केवल जानाति" [किल] निश्चयसे [अयं] जो शरीर, भोग, रागादि, सुख दु ख इत्यादि समस्त [तत्स्वभावं] कर्मका उदय है, जीवका स्वरूप नही है–[इति केवलं जानाति] सम्यग्दृष्टि जीव ऐसा जानता है, परन्तु स्वामित्व-रूप नही परिणमता है । "हि स मुक्त एव" [हि] तिस कारणसे [सः] सम्यग्दृष्टि जीव [मुक्तः एव] जैसे निर्विकार सिद्ध है वैसा है । कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "पर जानन्" जितनी है पर द्रव्यकी सामग्री उसका ज्ञायकमात्र है, मिथ्यादृष्टिके समान स्वामी-रूप नही है । और कैसा है ? "शुद्धस्वभावनियत" [शुद्धस्वभाव] शुद्ध चैतन्यवस्तुमें [नियतः] आस्वादरूप मग्न है । किस कारणसे ? "करणवेदनयो अभावात्" [करण] कर्मका करना, [वेदन] कर्मका भोग—ऐसे भाव [अभावात्] सम्यग्दृष्टि जीवके मिटे है इस कारण । भावार्थ इस प्रकार है कि मिथ्यात्व ससार है, मिथ्यात्वके मिटनेपर जीव सिद्धसदृश है ।।६-१९८।।

(अनुष्टुप्)

ये तु कर्तारमात्मानं पश्यन्ति तमसा तताः ।
सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोऽपि मुमुक्षताम् ।।७-१९९।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तेषा मोक्ष न" [तेषां] ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवोको [न मोक्षः] कर्मका विनाश, शुद्ध स्वरूपकी प्राप्ति नही है । कैसे है वे जीव ? "मुमुक्षता अपि" जैनमताश्रित हैं, बहुत पढे हैं, द्रव्यक्रियारूप चारित्र पालते हैं, मोक्षके अभिलाषी है तो भी उन्हे मोक्ष नही है । किनके समान ? "सामान्यजनवत्" जिस प्रकार तापस, योगी, भरडा इत्यादि जीवोको मोक्ष नही है । भावार्थ इस प्रकार है कि कोई

जानेगा कि जैनमतआश्रित है, कुछ विमेष होगा, सो विशेष तो कुछ नही है। कैसे हैं वे जीव ? "तु ये आत्मान कर्तार पश्यन्ति" [तु] जिस कारण ऐसा है कि [ये] जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव [आत्मानं] जीवद्रव्यको [कर्तारं पश्यन्ति] वह ज्ञानावरणादि कर्मको रागादि अशुद्ध परिणामको करता है ऐसा जीवद्रव्यका स्वभाव है—ऐसा मानते है, प्रतीति करते है, आस्वादते है। और कैसे है ? "तमसा तता." मिथ्यात्वभाव ऐसे अन्धकारसे व्याप्त हैं, अन्ध हुए है। भावार्थ इस प्रकार है कि वे महामिथ्यादृष्टि हैं जो जीवका स्वभाव कर्तारूप मानते है, कारण कि कर्तापन जीवका स्वभाव नही है, विभावरूप अशुद्ध परिणति है, सो भी परके सयोगसे है, विनाशीक है ॥७-१९९॥

(अनुष्टुप्)

नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः परद्रव्यात्मतत्त्वयोः ।
कर्तृकर्मत्वसम्बन्धाभावे तत्कर्तृता कुतः ॥८-२००॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तत् परद्रव्यात्मतत्त्वयोः कर्तृता कुतः" [तत्] तिस कारणसे [परद्रव्य] ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलका पिण्ड और [आत्मतत्त्वयोः] शुद्ध जीवद्रव्य, इनमे [कर्तृता] जीवद्रव्य पुद्गलकर्मका कर्ता, पुद्गलद्रव्य जीवभावका कर्ता—ऐसा सम्बन्ध [कुतः] कैसे होवे ? अपि तु कुछ नही होता। किस कारणसे ? "कर्तृ-कर्मसम्बन्धाभावे" [कर्तृ] जीव कर्ता, [कर्म] ज्ञानावरणादि कर्म—ऐसा है जो [सम्बन्ध] दो द्रव्योका एक सम्बन्ध, ऐसा [अभावे] द्रव्यका स्वभाव नही है तिस कारण। वह भी किस कारणसे ? "सर्वः अपि सम्बन्धः नास्ति" [सर्वः] जो कोई वस्तु है वह [अपि] यद्यपि एक क्षेत्रावगाहरूप है तथापि [सम्बन्धः नास्ति] अपने अपने स्वरूप है, कोई द्रव्य किसी द्रव्यके साथ तन्मयरूप नहीं मिलता है, ऐसा वस्तुका स्वरूप है। इस कारण जीव पुद्गलकर्मका कर्ता नही है ॥८-२००॥

(वसन्ततिलका)

एकस्य वस्तुन इहान्यतरेण सार्धं
सम्बन्ध एव सकलोऽपि यतो निषिद्धः ।
यत्कर्तृकर्मघटनास्ति न वस्तुभेदे
पश्यन्त्वकर्तृ मुनयश्च जनाश्च तत्त्वम् ॥९-२०१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ततू वस्तुभेदे कर्तृकर्मघटना न अस्ति" [ततू] तिस कारणसे [वस्तुभेदे] जीवद्रव्य चेतनस्वरूप, पुद्गलद्रव्य अचेतनस्वरूप–ऐसे भेदको अनुभवते हुए [कर्तृकर्मघटना] जीवद्रव्य कर्ता, पुद्गलपिण्ड कर्म–ऐसा व्यवहार [न अस्ति] सर्वथा नही है । तो कैसा है ? "मुनय जना तत्त्व अकर्तृ पश्यन्तु" [मुनयः जनाः] सम्यग्दृष्टि है जो जीव वे [तत्त्वं] जीवस्वरूपको [अकर्तृ पश्यन्तु] 'कर्ता नही है' ऐसा अनुभवो–आस्वादो । किस कारणसे ? "यत एकस्य वस्तुन. अन्यतरेण सार्द्धं सकलोऽपि सम्वन्ध निषिद्ध एव" [यतः] जिस कारणसे [एकस्य वस्तुनः] शुद्ध जीवद्रव्यका [अन्यतरेण सार्द्धं] पुद्गल द्रव्यके साथ [सकलः अपि] द्रव्यरूप, गुणरूप अथवा पर्यायरूप [सम्बन्धः] एकत्वपना [निषिद्धः एव] अतीत-अनागत-वर्तमान कालमे वर्जा है । भावार्थ इस प्रकार है कि अनादिनिधन जो द्रव्य जैसा है वह वैसा ही है, अन्य द्रव्यके साथ नही मिलता है, इसलिए जीवद्रव्य पुद्गलकर्मका अकर्ता है ॥९-२०१॥

(वसन्ततिलका)

ये तु स्वभावनियमं कलयन्ति नेम-
मज्ञानमग्नमहसो वत ते वराकाः ।
कुर्वन्ति कर्म तत एव हि भावकर्म-
कर्ता स्वयं भवति चेतन एव नान्यः ॥१०-२०२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"वत ते वराका. कर्म कुर्वन्ति [वत] दु खके साथ कहते है कि, [ते वराकाः] ऐसी जो मिथ्यादृष्टि जीवराशि [कर्म कुर्वन्ति] मोह राग द्वेपरूप अशुद्ध परिणति करती है । कैसी है "अज्ञानमग्नमहस" [अज्ञान] मिथ्यात्वरूप भावके कारण [मग्न] आच्छादा गया है [महसः] शुद्ध चैतन्यप्रकाश जिसका, ऐसी है, "तु ये इमं स्वभावनियम न कलयन्ति" [तु] क्योकि [ये] जो, [इमं स्वभाव-नियमं] जीवद्रव्य ज्ञानावरणादि पुद्गलपिण्डका कर्ता नही है—ऐसे वस्तुस्वभावको [न कलयन्ति] स्वानुभव प्रत्यक्षरूपसे नही अनुभवती है । भावार्थ इस प्रकार है कि—मिथ्यादृष्टि जीवराशि शुद्ध स्वरूपके अनुभवसे भ्रष्ट है, इसलिए पर्यायरत है, इसलिए मिथ्यात्वरागद्वेप अशुद्ध–परिणामरूप परिणमती है । "तत भावकर्मकर्ता चेतन एव स्वय भवति न अन्य" [ततः] तिस कारण [भावकर्म] मिथ्यात्वरागद्वेष–अशुद्ध चेतनारूप परिणामका, [कर्ता चेतन एव स्वयं भवति] व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है

ऐसा जीवद्रव्य, आप कर्ता होता है, [न अन्यः] पुद्गलकर्म कर्ता नहीं होता है । भावार्थ इस प्रकार है कि जीव मिथ्यादृष्टि होता हुआ जैसे अशुद्ध भावरूप परिणमता है वैसे भावोका कर्ता होता है ऐसा सिद्धान्त है ॥१०-२०२॥

(शार्दूलविक्रीडित)

कार्यत्वादकृतं न कर्म न च तज्जीवप्रकृत्योर्द्वयो-
रज्ञायाः प्रकृतेः स्वकार्यफलभुग्भावानुषंगात्कृतिः ।
नैकस्याः प्रकृतेरचित्त्वलसनाज्जीवोऽस्य कर्ता ततो
जीवस्यैव च कर्म तच्चिदनुगं ज्ञाता न यत्पुद्गलः ॥११-२०३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ततः अस्य जीवः कर्ता च तत् चिदनुगं जीवस्य एव कर्म" [ततः] तिस कारणसे [अस्य] रागादि अशुद्ध चेतना परिणामके [जीवः कर्ता] जीव द्रव्य उस कालमे व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है, इसलिए कर्ता है [च] और [तत्] रागादि अशुद्ध परिणमन [चिदनुगं] अशुद्धरूप है, चेतनारूप है, इसलिए [जीवस्य एव कर्म] उस कालमे व्याप्य-व्यापकरूप जीव द्रव्य आप परिणमता है, इसलिए जीवका किया है । किस कारणसे ? "यत् पुद्गलः ज्ञाता न" [यत्] जिस कारणसे [पुद्गलः ज्ञाता न] पुद्गल द्रव्य चेतनारूप नहीं है, रागादि परिणाम चेतनारूप है, इसलिए जीवका किया है । कहा है भाव उसे गाढा-पक्का करते हैं—"कर्म अकृतं न" [कर्म] रागादि अशुद्ध चेतनारूप परिणाम [अकृतं न] अनादिनिधन आकाश द्रव्यके समान स्वयसिद्ध है ऐसा भी नहीं है, किसीके द्वारा किया हुआ होता है । ऐसा है किस कारणसे ? "कार्यत्वात्" कारण कि घटके समान उपजता है, विनशता है । इसलिए प्रतीति ऐसी जो करतूतिरूप है । [च] तथा "तत् जीव-प्रकृत्यो द्वयो कृति न" [तत्] रागादि अशुद्ध चेतन परिणमन [जीव] चेतनद्रव्य और [प्रकृत्योः] पुद्गलद्रव्य ऐसे [द्वयोः] दो द्रव्योकी [कृतिः न] करतूति नहीं है । भावार्थ इस प्रकार है कि कोई ऐसा मानेगा कि जीव तथा कर्मके मिलने पर रागादि अशुद्ध चेतन परिणाम होता है, इसलिए दोनों द्रव्य कर्ता हैं । समाधान इस प्रकार है कि दोनो द्रव्य कर्ता नहीं है, कारण कि रागादि अशुद्ध परिणामोका बाह्य कारण–निमित्तमात्र पुद्गल कर्मका उदय है, अन्तरंग कारण व्याप्य-व्यापकरूप जीवद्रव्य विभावरूप परिणमता है, इसलिए जीवका कर्तापना घटित होता

है, पुद्‌गल कर्मका कर्तापना घटित नही होता है, कारण कि "अज्ञाया प्रकृते· स्वकार्य-फलभुग्भावानुषङ्गात्" [अज्ञायाः] अचेतनद्रव्यरूप है जो [प्रकृतेः] ज्ञानावरणादि द्रव्य-कर्म, उसके [स्वकार्य] अपनी करतूतिके [फल] सुख-दु खके [भुग्भाव] भोक्तापनेका [अनुषङ्गात्] प्रसग प्राप्त होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जो द्रव्य जिस भावका कर्ता होता है वह उस द्रव्यका भोक्ता भी होता है। ऐसा होने पर रागादि अशुद्ध चेतन परिणाम जो जीव-कर्म दोनोने मिलकर किया होवे तो दोनो भोक्ता होगे सो दोनो भोक्ता तो नही हैं। कारण कि जीव द्रव्य चेतन है तिस कारण सुख दु खका भोक्ता होवे ऐसा घटित होता है, पुद्‌गल द्रव्य अचेतन होनेसे सुख दु खका भोक्ता घटित नही होता। इसलिए रागादि अशुद्ध चेतन परिणामनका अकेला ससारी जीव कर्ता है, भोक्ता भी है। इसी अर्थको और गाढा-पक्का करते हैं—"एकस्या· प्रकृते· कृति न" [एकस्याः प्रकृतेः] अकेले पुद्‌गलकर्मकी [कृतिः न] करतूति नही है। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई ऐसा मानेगा कि रागादि अशुद्ध चेतन परिणाम अकेले पुद्‌गलकर्मका किया है। उत्तर ऐसा है कि ऐसा भी नही है, कारण कि "अचित्त्वलसनात्" अनुभव ऐसा आता है कि पुद्‌गल-कर्म अचेतन द्रव्य है, रागादि परिणाम अशुद्ध चेतनारूप है; इसलिए अचेतन द्रव्यका परिणाम अचेतनरूप होता है, चेतनरूप नही होता। इस कारण रागादि अशुद्ध परिणाम-का कर्ता ससारी जीव है, भोक्ता भी है ॥११-२०३॥

(शार्दूलविक्रीडित)

कर्मैव प्रवितर्क्य कर्तृ हतकैः क्षिप्त्वात्मनः कर्तृतां
कर्तात्मैष कथञ्चिदित्यचलिता चैश्चिच्छ्रुतिः कोपिता।
तेषामुद्धतमोहमुद्रितधियां बोधस्य संशुद्धये
स्याद्वादप्रतिबंधलब्धविजया वस्तुस्थितिः स्तूयते ॥१२-२०४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"वस्तुस्थिति स्तूयते" [वस्तु] जीवद्रव्यके [स्थितिः] स्वभावकी मर्यादा [स्तूयते] जैसी है वैसी कहते है। कैसी है? "स्याद्वादप्रतिबन्ध-लब्धविजया" [स्याद्वाद] जीवकर्ता है, अकर्ता भी है—ऐसा अनेकान्तपना, उसकी [प्रतिबन्ध] सावधानरूपसे की गई स्थापना, उससे [लब्ध] पाया है [विजया] जीतपना जिसने, ऐसी है। किस निमित्त कहते है? "तेषा वोधस्य सशुद्धये" [तेषां] जो जीवको सर्वथा अकर्ता कहते है ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवोकी [बोधस्य संशुद्धये] विपरीत बुद्धिके छुडानेके निमित्त जीवका स्वरूप साधते है। कैसी है वह मिथ्यादृष्टि जीवराशि?

"उद्धतमोहमुद्रितधिया" [**उद्धत**] तीव्र उदयरूप [**मोह**] मिथ्यात्वभावसे [**मुद्रित**] आच्छादित है [**धियां**] शुद्धस्वरूप-अनुभवरूप सम्यक्त्वशक्ति जिनकी, ऐसी है। और कैसी है ? "एष आत्मा कथञ्चित् कर्ता इति कैश्चित् श्रुतिः कोपिता" [**एषः आत्मा**] चेतनास्वरूपमात्र जीवद्रव्य [**कथञ्चित् कर्ता**] किसी युक्तिसे अशुद्धभावका कर्ता भी है [**इति**] इस प्रकार [**कैश्चित् श्रुतिः**] कितने ही मिथ्यादृष्टि जीवोंको ऐसा सुननेमात्रसे [**कोपिता**] अत्यन्त क्रोध उत्पन्न होता है। कैसा क्रोध होता है ? "अचलिता" जो अति गाढा है, अमिट है। जिससे ऐसा मानते है—"आत्मनः कर्तृतां क्षिप्त्वा" [**आत्मनः**] जीवका [**कर्तृतां**] अपने रागादि अशुद्ध भावोका कर्तापना [**क्षिप्त्वा**] सर्वथा मेटकर (न मानकर) क्रोध करते है। और कैसा मानते है—"कर्म एव कर्तृ इति प्रवितर्क्य" [**कर्म एव**] अकेला ज्ञानावरणादि कर्मपिण्ड [**कर्तृ**] रागादि अशुद्ध परिणामोका अपनेमे व्याप्य-व्यापक होकर कर्ता है [**इति प्रवितर्क्य**] ऐसा गाढापन करते है—प्रतीति करते है। सो ऐसी प्रतीति करते हुए कैसे है ? "हतकैः" अपने घातक है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि हैं ॥१२-२०४॥

(शार्दूलविक्रीडित)

माऽकर्तारममी स्पृशन्तु पुरुषं सांख्या इवाप्यार्हताः
कर्तारं कलयंतु तं किल सदा भेदावबोधादधः।
ऊर्ध्वं तूद्धतबोधधामनियतं प्रत्यक्षमेनं स्वयं
पश्यन्तु च्युतकर्तृभावमचलं ज्ञातारमेकं परम् ॥१३-२०५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—ऐसा कहा था कि स्याद्वाद स्वरूपके द्वारा जीवका स्वरूप कहेगे। उसका उत्तर है—"अमी आर्हताः अपि पुरुषं अकर्तार मा स्पृशन्तु" [**अमी**] विद्यमान जो [**आर्हताः अपि**] जैनोक्त स्याद्वादस्वरूपको अंगीकार करते है ऐसे जो सम्यग्दृष्टि जीव वे भी [**पुरुषं**] जीवद्रव्यको [**अकर्तारं**] रागादि—अशुद्ध परिणामोका सर्वथा कर्ता नही है ऐसा [**मा स्पृशन्तु**] मत अगीकार करो। किनके समान ? "साख्या इव" जिस प्रकार साख्य मतवाले जीवको सर्वथा अकर्ता मानते है उसी प्रकार जैन भी सर्वथा अकर्ता मत मानो। जैसा मानने योग्य है वैसा कहते है—"सदा तं भेदावबोधात् अध. कर्तार किल कलयन्तु तु ऊर्ध्व एन च्युतकर्तृभाव पश्यन्तु" [**सदा**] सर्व काल द्रव्यका स्वरूप ऐसा है कि [**तं**] जीवद्रव्यको, [**भेदावबोधात् अधः**] शुद्धस्वरूप परिणामनरूप सम्यक्त्वसे भ्रष्ट मिथ्यादृष्टि होता हुआ मोह राग द्वेषरूप परिणमता

है उतने काल, [कर्तारं किल कलयन्तु] मोह, राग, द्वेपरूप अशुद्धचेतन परिरणामका कर्ता जीव है ऐसा अवश्य मानो–प्रतीति करो। [तु] वही जीव [ऊर्ध्वं] जब मिथ्यात्व परिरणाम छूटकर अपने शुद्ध स्वरूप सम्यक्त्व भावरूप परिरणमता है तब [एनं च्युतकर्तृ-भावं] छोडा है रागादि अशुद्ध भावोका कर्तापन जिसने ऐसी [पश्यन्तु] श्रद्धा करो–प्रतीति करो–ऐसा अनुभव करो। भावार्थ इस प्रकार है कि—जिस प्रकार जीवका ज्ञानगुण स्वभाव है, वह ज्ञानगुरण ससार अवस्था अथवा मोक्ष अवस्थामे नही छूटता; उस प्रकार रागादिपना जीवका स्वभाव नही है तथापि ससार अवस्थामे जब तक कर्म का संयोग है तब तक मोह,राग, द्वेषरूप अशुद्धपनेसे विभावरूप जीव परिरणमता है और तव तक कर्ता है। जीवके सम्यक्त्वगुणके परिरणमनके बाद ऐसा जानना—"उद्धतबोध-धामनियत" [उद्धत] सकल ज्ञेय पदार्थको जाननेके लिए उतावले ऐसे [बोधधाम] ज्ञानका प्रताप है [नियतं] सर्वस्व जिसका ऐसा है। और कैसा है? "स्वयं प्रत्यक्ष" आपको अपने आप प्रगट हुआ है। और कैसा है? "अचल" चार गतिके भ्रमरणसे रहित हुआ है। और कैसा है? "ज्ञातारं" ज्ञानमात्र स्वरूप है। और कैसा है? "पर एक" रागादि अशुद्ध परिणतिसे रहित शुद्ध वस्तुमात्र है ॥१३-२०५॥

(मालिनी)

क्षणिकमिदमिहैकः कल्पयित्वात्मतत्त्वं
निजमनसि विधत्ते कर्तृभोक्त्रोर्विभेदम्।
अपहरति विमोहं तस्य नित्यामृतौघैः
स्वयमयमभिषिंचंश्चिच्चमत्कार एव ॥१४-२०६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इह एकः निजमनसि कर्तृभोक्त्रो विभेद विधत्ते" [इह] साम्प्रत विद्यमान है ऐसा [एकः] बौद्धमतको माननेवाला कोई जीव [निज-मनसि] अपने ज्ञानमे [कर्तृ-भोक्त्रोः] कर्तापना–भोक्तापनामे [विभेदं] भेद [विधत्ते] करता है। भावार्थ इस प्रकार है कि—वह ऐसा कहता है कि क्रियाका कर्ता कोई अन्य है, भोक्ता कोई अन्य है। ऐसा क्यो मानता है? "इद आत्मतत्त्व क्षरिणक कल्पयित्वा" [इदं आत्मतत्त्वं] अनादिनिधन है जो चैतन्यस्वरूप जीवद्रव्य, उसको [क्षणिकं कल्प-यित्वा] क्षरिणक मानता है अर्थात् जिस प्रकार अपने नेत्ररोगके कारण कोई श्वेत शखको पीला देखता है उसी प्रकार अनादिनिधन जीवद्रव्यको मिथ्या भ्रान्तिके काररण ऐसा मानता है कि एक समयमात्रमे पूर्वका जीव मूलसे विनस जाता है, अन्य नया जीव

मूलसे उपज आता है; ऐसा मानता हुआ मानता है कि क्रियाका कर्ता अन्य कोई जीव है, भोक्ता अन्य कोई जीव है। ऐसा अभिप्राय मिथ्यात्वका मूल है। इसलिए ऐसे जीवको समझाते है—"अय चिच्चमत्कार. तस्य विमोहं अपहरति" [**अयं चिच्चमत्कारः**] किसी जीवने बाल्यावस्थामें किसी नगरको देखा था, कुछ काल जाने पर और तरुण अवस्था आनेपर उसी नगरको देखता है, देखते हुए ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है कि वही यह नगर है जिस नगरको मैने बालकपनमे देखा था; ऐसा है जो अतीत अनागत वर्तमान शाश्वत ज्ञानमात्र वस्तु वह "तस्य विमोह अपहरति" क्षणिकवादीके मिथ्यात्वको दूर करता है। भावार्थ इस प्रकार है कि—जो जीवतत्त्व क्षण विनश्वर होता तो पूर्व ज्ञानको लेकर जो वर्तमान ज्ञान होता है वह किसको होवे ? इसलिए जीवद्रव्य सदा शाश्वत है ऐसा कहनेसे क्षणिकवादी प्रतिबुद्ध होता है। कैसी है जीववस्तु ? "नित्यामृतौघैः स्वयं अभिषिञ्चत्" [**नित्य**] सदाकाल अविनश्वरपनारूप जो [**अमृत**] जीवद्रव्यका जीवनमूल, उसके [**ओघैः**] समूहद्वारा [**स्वयं अभिषिञ्चत्**] अपनी शक्तिसे आप पुष्ट होता हुआ। "एव" निश्चयसे ऐसा ही जानिएगा, अन्यथा नही ॥१४-२०६॥

(अनुष्टुप्)

वृत्त्यंशभेदतोऽत्यन्तं वृत्तिमन्नाशकल्पनात् ।
अन्यः करोति भुंक्तेऽन्य इत्येकान्तश्चकास्तु मा ॥१५-२०७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—क्षणिकवादी प्रतिबोधित किया जाता है—"इति एकात मा चकास्तु" [**इति**] इस प्रकार [**एकान्तः**] द्रव्यार्थिक–पर्यायार्थिकके भेद बिना किये सर्वथा ऐसा ही है ऐसा कहना [**मा चकास्तु**] किसी जीवको स्वप्नमात्रमें भी ऐसा श्रद्धान मत होओ। ऐसा कैसा ? "अन्य· करोति अन्यः भुक्ते" [**अन्यः करोति**] अन्य प्रथम समयका उत्पन्न हुआ कोई जीव कर्मका उपार्जन करता है, [**अन्यः भुंक्ते**] अन्य दूसरे समयका उत्पन्न हुआ जीव कर्मको भोगता है,—ऐसा एकान्तपना मिथ्यात्व है। भावार्थ इस प्रकार है—जीव वस्तु द्रव्यरूप है, पर्यायरूप है। इसलिए द्रव्यरूपसे विचार करनेपर जो जीव कर्मका उपार्जन करता है वही जीव उदय आनेपर भोगता है, पर्याय-रूपसे विचार करनेपर जिस परिणाम अवस्थामे ज्ञानावरणादि कर्मका उपार्जन करता है, उदय आनेपर उन परिणामोका अवस्थान्तर होता है; इसलिए अन्य पर्याय करती है अन्य पर्याय भोगती है।—ऐसा भाव स्याद्वाद साध सकता है। जैसा बौद्धमतका जीव कहता है वह तो महाविपरीत है। सो कौन विपरीतपना ? "अत्यन्त वृत्यशभेदत. वृत्ति-

मन्नाशकल्पनात्" [अत्यंतं] द्रव्यका ऐसा ही स्वरूप है, सहारा किसका ? [वृत्ति] अवस्था, उसका [अंश] एक द्रव्यकी अनन्त अवस्था, ऐसा [भेदतः] कोई अवस्था विनश जाती है, अन्य कोई अवस्था उत्पन्न होती है ऐसा अवस्थाभेद विद्यमान है, ऐसे अवस्थाभेदका छल पकडकर कोई बौद्धमतका मिथ्यादृष्टि जीव [वृत्तिमन्नाशकल्पनात्] वृत्तिमान्–जिसका अवस्थाभेद होता है ऐसी सत्तारूप शाश्वत वस्तुका नाशकल्पना= मूलसे सत्ताका नाश मानता है, इसलिए ऐसा कहना विपरीतपना है। भावार्थ इस प्रकार है कि बौद्धमतका जीव पर्यायमात्रको वस्तु मानता है, पर्याय जिसकी है ऐसी सत्तामात्र वस्तुको नही मानता है। इस कारण ऐसा मानता है सो महामिथ्यात्व है ॥१५-२०७॥

(शार्दूलविक्रीडित)

आत्मानं परिशुद्धमीप्सुभिरतिव्याप्तिं प्रपद्यान्धकैः
कालोपाधिबलादशुद्धिमधिकां तत्रापि मत्वा परैः।
चैतन्यं क्षणिकं प्रकल्प्य पृथुकैः शुद्धर्जुसूत्रे रतैः
आत्मा व्युज्झित एष हारवदहो निःसूत्रमुक्तेक्षिभिः ॥१६-२०८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—एकान्तपनेसे जो माना जाय सो मिथ्यात्व है "अहो पृथकै एष आत्मा व्युज्झित." [अहो] भो जीव ! [पृथुकैः] नाना प्रकार अभिप्राय है जिनका ऐसे जो मिथ्यादृष्टि जीव है उनको [एषः आत्मा] विद्यमान शुद्ध चैतन्य-वस्तु [व्युज्झितः] सधी नही। कैसे है एकान्तवादी ? "शुद्धर्जुसूत्रे रतै·" [शुद्ध] द्रव्यार्थिक नयसे रहित* [ऋजुसूत्रे] वर्तमान पर्यायमात्रमे वस्तुरूप अंगीकार करनेरूप एकान्तपनेमे [रतैः] मग्न है। "चैतन्य क्षणिक प्रकल्प्य" एक समयमात्रमे एक जीव मूलसे विनश जाता है, अन्य जीव मूलसे उत्पन्न होता है ऐसा मान कर बौद्ध मतके जीवोको जीवस्वरूपकी प्राप्ति नही है। तथा मतान्तर कहते है—"अपरै तत्रापि कालो-पाधिबलात् अधिका अशुद्धि मत्वा" [अपरैः] कोई मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी ऐसे है जो जीवका शुद्धपना नही मानते है, सर्वथा अशुद्धपना मानते है। उन्हे भी वस्तुकी प्राप्ति नही है ऐसा कहते है—[कालोपाधिबलात्] अनन्त काल हुआ जीव द्रव्य कर्मके साथ मिला हुआ ही चला आया है, भिन्न तो हुआ नही—ऐसा मानकर [तत्रापि] उस

---

* यहाँ पर 'द्रव्यार्थिक नयसे रहित' पाठके स्थानमे हस्तलिखित एव पहली मुद्रित प्रतिमे 'पर्यायार्थिक नयसे रहित' ऐसा पाठ है जो भूलसे आ पडा मालूम पडता है।

जीवमें [अधिकां अशुद्धिं मत्वा] जीव द्रव्य अशुद्ध है, शुद्ध है ही नही—ऐसी प्रतीति करते है जो जीव, उन्हें भी वस्तुकी प्राप्ति नही है । मतान्तर कहते है—"अन्धकैः अतिव्याप्तिं प्रपद्य" एकान्त मिथ्यादृष्टि जीव कोई ऐसे है जो [अतिव्याप्तिं प्रपद्य] कर्मकी उपाधिको नही मानते हैं, "आत्मान परिशुद्धि ईप्सुभिः" जीव द्रव्यको सर्व काल सर्वथा शुद्ध मानते हैं; उन्हे भी स्वरूपकी प्राप्ति नही है । कैसे है एकान्तवादी ? "निःसूत्रमुक्तेक्षिभिः" [निःसूत्र] स्याद्वाद सूत्र विना [मुक्तेक्षिभिः] सकल कर्मके क्षयलक्षण मोक्षको चाहते है, उनके प्राप्ति नही है । उसका दृष्टान्त—"हारवत्" हारके समान । भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार सूतके बिना मोती नही सधता है—हार नहीं होता है, उसी प्रकार स्याद्वादसूत्रके ज्ञान विना एकान्तवादोंके द्वारा आत्माका स्वरूप नही सधता है—आत्मस्वरूप की प्राप्ति नही होती हैं; इसलिए जो कोई आपको सुख चाहते है, वे स्याद्वाद सूत्र के द्वारा जैसा आत्माका स्वरूप साधा गया है वैसा मानिएगा ॥१६-२०८॥

(शार्दूलविक्रीडित)

कर्तुर्वेदयितुश्च युक्तिवशतो भेदोऽस्त्वभेदोऽपि वा
कर्ता वेदयिता च मा भवतु वा वस्त्वेव सञ्चिन्त्यताम् ।
प्रोता सूत्र इवात्मनीह निपुणैर्भेत्तुं न शक्या क्वचि-
च्चिच्चिन्तामणिमालिकेयमभितोऽप्येका चकास्त्वेव नः ।१७-२०९।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"निपुणैः वस्तु एव सञ्चिन्त्यता" [निपुणैः] शुद्धस्वरूप अनुभवमे प्रवीण है ऐसे जो सम्यग्दृष्टि जीव, उनको [वस्तु एव] समस्त विकल्पसे रहित निर्विकल्प सत्तामात्र चैतन्यस्वरूप [सञ्चिन्त्यतां] स्वसवेदनप्रत्यक्षसे अनुभव करने योग्य है । "कर्तृ. च वेदयितुः युक्तिवशतः भेदः अस्तु अथवा अभेद. अस्तु" [कर्तुः] कर्तामें [च] और [वेदयितुः] भोक्तामें [युक्तिवशतः] द्रव्यार्थिकनय पर्यायार्थिकनयका भेद करनेपर—[भेदः अस्तु] अन्य पर्याय करती है, अन्य पर्याय भोगती है, पर्यायार्थिकनयसे ऐसा भेद है तो होओ, ऐसा साधनेपर साध्यसिद्धि तो कुछ नही है; [अथवा] द्रव्यार्थिकनयसे [अभेदः] जो जीवद्रव्य ज्ञानावरणादि कर्मका कर्ता है वही जीवद्रव्य भोक्ता है ऐसा [अस्तु] भी है तो ऐसा भी होओ; इसमें भी साध्यसिद्धि तो कुछ नही है । "वा कर्ता च वेदयिता वा मा भवतु" [वा] कर्तृत्वनयसे [कर्ता] जीव अपने भावोका कर्ता है [च] तथा भोक्तृत्वनयसे [वेदयिता] जिसरूप परिणमता है उस परिणामका भोक्ता है ऐसा है तो ऐसा ही होओ, ऐसा विचार करनेपर शुद्धस्वरूपका

अनुभव तो नही है, कारण कि ऐसा विचारना अशुद्धरूप विकल्प है। [वा] अथवा अकर्तृत्वनयसे जीव अकर्ता है [च] तथा अभोक्तृत्वनयसे जीव [मा] भोक्ता नही है [भवंतु] कर्ता-भोक्ता नही है तो मत ही होओ, ऐसा विचार करनेपर भी शुद्धस्वरूपका अनुभव नही है, कारण कि "प्रोता इह आत्मनि क्वचित् भर्तु न शक्य." [प्रोता] कोई नय विकल्प, उसका विवरण—अन्य करता है अन्य भोगता है ऐसा विकल्प, अथवा जीव कर्ता है—भोक्ता है ऐसा विकल्प, अथवा जीव कर्ता नही है—भोक्ता नही है ऐसा विकल्प, इत्यादि अनन्त विकल्प है तो भी उनमेसे कोई विकल्प, [इह आत्मनि] शुद्ध वस्तुमात्र है जीवद्रव्य उसमे [क्वचित्] किसी भी कालमे [भर्तु न शक्यः] शुद्ध-स्वरूपके अनुभवरूप स्थापनेको समर्थ नही है। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई अज्ञानी ऐसा जानेगा कि इस स्थलमे ग्रन्थकर्ता आचार्यने कर्तापन, अकर्तापन, भोक्तापन, अभोक्ता-पन बहुत प्रकारसे कहा है सो इसमे क्या अनुभवकी प्राप्ति बहुत है ? समाधान इस प्रकार है कि समस्त नय विकल्पोके द्वारा शुद्धस्वरूपका अनुभव सर्वथा नही है। उसको (स्वरूपको) मात्र जनानेके लिए ही शास्त्रमें बहुत नय-युक्तिसे दिखलाया है। तिस कारण "नः इय एका अपि चिच्चिन्तामणिमालिका अभित. चकास्तु एव" [नः] हमे [इयं] स्वसवेदनप्रत्यक्ष, [एका अपि] समस्त विकल्पोसे रहित, [चित्] शुद्ध चेतनारूप [चिन्तामणि] अनन्त शक्तिगर्भित [मालिका] चेतनामात्र वस्तुकी [अभितः चकास्तु एव] सर्वथा प्रकार प्राप्ति होओ। भावार्थ इस प्रकार है कि निर्विकल्पमात्रका अनुभव उपादेय है, अन्य विकल्प समस्त हेय है। दृष्टान्त ऐसा—"सूत्रे प्रोता इव" जिस प्रकार कोई पुरुष मोतीकी मालाको पोना जानता है, माला गूथता हुआ अनेक विकल्प करता है सो वे समस्त विकल्प झूठे है, विकल्पोमे शोभा करनेकी शक्ति नही है। शोभा तो मोतीमात्र वस्तु है, उसमे है। इसलिए पहिननेवाला पुरुष मोतीकी माला जानकर पहिनता है, गूँथनेके बहुत विकल्प जानकर नही पहिनता है, देखनेवाला भी मोतीकी माला जानकर शोभा देखता है, गूँथनेके विकल्पोको नही देखता है, उसी प्रकार शुद्ध चेतनामात्र सत्ता अनुभव करनेयोग्य है, उसमे घटते है जो अनेक विकल्प उन सबकी सत्ता अनुभव करनेयोग्य नही है ॥१७-२०९॥

(रथोद्धता)

व्यावहारिकदृशैव केवलं
कर्तृ कर्म च विभिन्नमिष्यते।

निश्चयेन यदि वस्तु चिन्त्यते
कर्तृ कर्म च सदैकमिष्यते ॥१८-२१०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—यहाँ कोई प्रश्न करता है कि ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलपिण्डका कर्ता जीव है कि नही ? उत्तर इस प्रकार है कि—कहनेको तो है, वस्तु-स्वरूप विचारने पर कर्ता नही है। ऐसा कहते है—"व्यावहारिकदृशा एव केवलं" झूठा व्यवहारदृष्टिसे ही "कर्तृ" कर्ता "च" तथा "कर्म" किया गया कार्य "विभिन्नं इष्यते" भिन्न-भिन्न है। जीव ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मका कर्ता ऐसा कहनेके लिए सत्य है; कारण कि युक्ति ऐसी कि रागादि अशुद्ध परिणामोंको जीव करता है, रागादि अशुद्ध परिणामों-के होते समय ज्ञानावरणादिरूप पुद्गल द्रव्य परिणमता है, इस कारण कहनेके लिए ऐसा है कि ज्ञानावरणादि कर्म जीवने किये। स्वरूपका विचार करने पर ऐसा कहना झूठा है, कारण कि "यदि निश्चयेन चिन्त्यते" [यदि] जो [**निश्चयेन**] सच्ची व्यवहार दृष्टिसे [**चिन्त्यते**] देखा जाय, क्या देखा जाय ? "वस्तु" स्वद्रव्य परिणाम परद्रव्य परिणामरूप वस्तुका स्वरूप, तो "सदा एव कर्तृ कर्म एकं इष्यते" [**सदा एव**] सर्व ही काल [**कर्तृ**] परिणमता है जो द्रव्य और [**कर्म**] द्रव्यका परिणाम [**एकं इष्यते**] एक है अर्थात् कोई जीव अथवा पुद्गल द्रव्य अपने परिणामोके साथ व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है, इसलिए कर्ता है, वही कर्म है, क्योंकि परिणाम उस द्रव्यके साथ व्याप्य-व्यापकरूप है, ऐसा [इष्यते] विचार करने पर घटित होता है–अनुभवमें आता है। अन्य द्रव्यका अन्य द्रव्य कर्ता, अन्य द्रव्यका परिणाम अन्य द्रव्यका कर्म—ऐसा तो अनुभवमे घटता नही; कारण कि दो द्रव्योका व्याप्य-व्यापकपना नही है ॥१८-२१०॥

(नर्दटक)

ननु परिणाम एव किल कर्म विनिश्चयतः
स भवति नापरस्य परिणामिन एव भवेत् ।
न भवति कर्तृशून्यमिह कर्म न चैकतया
स्थितिरिह वस्तुनो भवतु कर्तृ तदेव ततः ।१९-२११।*

* पण्डित श्री राजमलजीकी टीकामे आत्मख्यातिका यह श्लोक अनुवाद करनेसे रह गया है, अतः हिन्दी समयसारके आधारसे उक्त श्लोक अर्थ सहित यहाँ दिया गया है।

श्लोकार्थ—"ननु किल" वास्तवमे "परिणाम एव" परिणाम ही "विनिश्चयत" निश्चयसे "कर्म" कर्म है, और "स परिणामिन एव भवेत्, अपरस्य न भवति" परिणाम अपने आश्रयभूत परिणामीका ही होता है, अन्यका नही (क्योकि परिणाम अपने अपने द्रव्यके आश्रित है, अन्यके परिणामका अन्य आश्रय नही होता), और "कर्म कर्तृशून्य इह न भवति" कर्म कर्ताके विना नही होता, "च" तथा "वस्तुन एकतया स्थिति. इह न" वस्तुकी एकरूप (कूटस्थ) स्थिति नही होती (क्योकि वस्तु द्रव्य पर्याय स्वरूप होनेसे सर्वथा नित्यत्व वाधा सहित है), "तत" इसलिए "तत् एव कर्तृ भवतु" वस्तु स्वय ही अपने परिणामरूप कर्मका कर्ता है (यह निश्चित सिद्धान्त है) ॥१९-२११॥

(पृथ्वी)

बहिर्लुठति यद्यपि स्फुटदनन्तशक्तिः स्वयं
तथाप्यपरवस्तुनो विशति नान्यवस्त्वन्तरम् ।
स्वभावनियतं यतः सकलमेव वस्त्विष्यते
स्वभावचलनाकुलः किमिह मोहितः क्लिश्यते ॥२०-२१२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—जीवका स्वभाव ऐसा है कि सकल ज्ञेयको जानता है। कोई मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा जानेगा कि ज्ञेय वस्तुको जानते हुए जीवके अशुद्धपना घटित होता है। उसका समाधान ऐसा है कि अशुद्धपना नही घटित होता है, जीव वस्तुका ऐसा ही स्वभाव है जो समस्त ज्ञेय वस्तुको जानता है। यहाँ से लेकर ऐसा भाव कहते हैं—"इह स्वभावचलनाकुल मोहित किं क्लिश्यते" [इह] जीव समस्त ज्ञेयको जानता है ऐसा देखकर [स्वभाव] जीवका शुद्ध स्वरूप, उससे [चलन] स्खलितपना जानकर [आकुलः] खेद-खिन्न हुआ मिथ्यादृष्टि जीव [मोहितः] मिथ्यात्वरूप अज्ञानपनाके अधीन हो [किं क्लिश्यते] क्यो खेद-खिन्न होता है ? कारण कि "यत स्वभावनियत. सकल एव वस्तु इष्यते" [यतः] जिस कारण [सकलं एव वस्तु] जो कोई जीवद्रव्य अथवा पुद्गलद्रव्य इत्यादि है वह सव [स्वभावनियतं] नियमसे अपने स्वरूप है ऐसा [इष्यते] अनुभवगोचर होता है। यही अर्थ प्रगट करके कहते है—"यद्यपि स्फुटदनन्तशक्ति स्वयं वहिर्लुठति" [यद्यपि] यद्यपि प्रत्यक्षरूपसे ऐसा है कि [स्फुटत्] सदा काल प्रगट है [अनन्तशक्तिः] अविनश्वर चेतनाशक्ति जिसकी ऐसा जीवद्रव्य [स्वयं वहिः लुठति] स्वय समस्त ज्ञेयको जानकर ज्ञेयाकाररूप परिणमता है—ऐसा जीवका

स्वभाव है, "तथापि अन्यवस्त्वन्तरं" [तथापि] तो भी [अन्यवस्त्वन्तरं] एक कोई जीवद्रव्य अथवा पुद्‌गलद्रव्य "अपरवस्तुन न विशति" किसी अन्य द्रव्यमें प्रवेश नही करता है, वस्तुस्वभाव ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य समस्त ज्ञेय वस्तुको जानता है ऐसा तो स्वभाव है, परन्तु ज्ञान ज्ञेयरूप नही होता है, ज्ञेय भी ज्ञान द्रव्यरूप नही परिणमता है—ऐसी वस्तुकी मर्यादा है ।।२०-२१२।।

(रथोद्धता)

वस्तु चैकमिह नान्यवस्तुनो
येन तेन खलु वस्तु वस्तु तत् ।
निश्चयोऽयमपरो परस्य कः
किं करोति हि बहिर्लुठन्नपि ।।२१-२१३।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—अर्थ कहा था उसे गाढा करते है—"येन इह एकं वस्तु अन्यवस्तुनः न" [येन] जिस कारणसे [इह] छह द्रव्योमे कोई [एकं वस्तु] जीवद्रव्य अथवा पुद्‌गल द्रव्य सत्तारूप विद्यमान है वह [अन्यवस्तुनः न] अन्य द्रव्यसे सर्वथा नही मिलता ऐसी द्रव्योंके स्वभावकी मर्यादा है। "तेन खलु वस्तु तत् वस्तु" [तेन] तिस कारणसे [खलु] निश्चयसे [वस्तु] जो कोई द्रव्य [तत् वस्तु] वह अपने स्वरूप है—जिस प्रकार है उसी प्रकार है, "अयं निश्चय." ऐसा तो निश्चय है, परमेश्वरने कहा है, अनुभवगोचर भी होता है। "कः अपर. बहिः लुठन् अपि अपरस्य किं करोति" [कः अपरः] ऐसा कौन द्रव्य हैं जो [बहिः लुठन् अपि] यद्यपि ज्ञेय वस्तुको जानता है तो भी [अपरस्य किं करोति] ज्ञेय वस्तुके साथ सम्बन्ध कर सके ? अर्थात् कोई द्रव्य नही कर सके। भावार्थ इस प्रकार है कि वस्तुस्वरूपकी मर्यादा तो ऐसी है कि कोई द्रव्य किसी द्रव्यके साथ एकरूप नहीं होता है। इसके उपरान्त भी जीवका स्वभाव ज्ञेय वस्तुको जाने ऐसा है तो रहो तो भी धोखा तो कुछ नही है। जीव द्रव्य ज्ञेयको जानता हुआ अपने स्वरूप है ।।२१-२१३।।

(रथोद्धता)

यत्तु वस्तु कुरुतेऽन्यवस्तुनः
किञ्चनापि परिणामिनः स्वयम् ।

व्यावहारिकदृशैव तन्मतं
नान्यदस्ति किमपीह निश्चयात् ॥२२-२१४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—कोई आशका करता है कि जैन सिद्धान्तमें भी ऐसा कहा है कि जीव ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्मको करता है, भोगता है। उसका समाधान इस प्रकार है कि झूठे व्यवहारसे कहनेको है। द्रव्यके स्वरूपका विचार करने पर परद्रव्यका कर्ता जीव नही है। "तु यत् वस्तु स्वयं परिणामिन· अन्यवस्तुन: किञ्चन अपि कुरुते" [तु] ऐसी भी कहावत है कि [यत् वस्तु] जो कोई चेतनालक्षण जीवद्रव्य [**स्वयं परिणामिनः अन्यवस्तुनः**] अपनी परिणाम शक्तिसे ज्ञानावरणादिरूप परिणमता है ऐसे पुद्गल द्रव्यका [**किञ्चन अपि कुरुते**] कुछ करता है ऐसा कहना, "तत् व्यावहारिकदृशा" [तत्] जो कुछ ऐसा अभिप्राय है वह सब [व्यावहारिकदृशा] झूठी व्यवहारदृष्टिसे है। "निश्चयात् कि अपि नास्ति इह मत" [**निश्चयात्**] वस्तुके स्वरूपका विचार करनेपर [**किमपि नास्ति**] ऐसा विचार—ऐसा अभिप्राय कुछ नही है। भावार्थ इस प्रकार है कि कुछ ही बात नही, मूलसे झूठ है [**इह मतं**] ऐसा सिद्धान्त सिद्ध हुआ ॥२२-२१४॥

(शार्दूलविक्रीडित)

शुद्धद्रव्यनिरूपणार्पितमतेस्तत्त्वं समुत्पश्यतो
नैकद्रव्यगतं चकास्ति किमपि द्रव्यान्तरं जातुचित् ।
ज्ञानं ज्ञेयमवैति यत्तु तदयं शुद्धस्वभावोदयः
किं द्रव्यान्तरचुम्बनाकुलधियस्तत्त्वाच्च्यवन्ते जनाः ।२३-२१५।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"जना तत्त्वात् कि च्यवन्ते" [**जनाः**] समस्त ससारी जीव [**तत्त्वात्**] जीव वस्तु सर्व काल शुद्धस्वरूप है, समस्त ज्ञेयको जानती है ऐसे अनुभवसे [**किं च्यवन्ते**] क्यो भ्रष्ट होते हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि वस्तुका स्वरूप तो प्रगट है, भ्रम क्यों करते हैं। कैसे हैं जन ? "द्रव्यान्तरचुम्बनाकुलधिय·" [**द्रव्यान्तर**] समस्त ज्ञेय वस्तुको जानता है जीव, इससे [**चुम्बन**] अशुद्ध हुआ है जीवद्रव्य ऐसा जानकर [**आकुलधियः**] ज्ञेय वस्तुका जानपना कैसे छूटे, जिसके छूटनेसे जीवद्रव्य शुद्ध होवे ऐसी हुई है बुद्धि जिनकी, ऐसे हैं। "तु" उसका समाधान ऐसा है कि "यत् ज्ञान ज्ञेय अवैति तत् अयं शुद्धस्वभावोदय" [**यत्**] जो ऐसा है कि [**ज्ञानं ज्ञेयं अवैति**] ज्ञान ज्ञेयको जानता है ऐसा प्रगट है [**तत् अयं**] सो यह [**शुद्धस्वभावोदयः**] शुद्ध जीव वस्तुका स्वरूप है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस-

प्रकार अग्निका दाहक स्वभाव है, समस्त दाह्य वस्तुको जलाती है। जलाती हुई अग्नि अपने शुद्धस्वरूप है। अग्निका ऐसा ही स्वभाव है उसीप्रकार जीव ज्ञानस्वरूप है, समस्त ज्ञेयको जानता है। जानता हुआ अपने स्वरूप है ऐसा वस्तुका स्वभाव है। ज्ञेयके जानपनासे जीवका अशुद्धपना मानता है सो मत मानो, जीव शुद्ध है। और समाधान करते है। कारण कि "किमपि द्रव्यान्तर एकद्रव्यगत न चकास्ति" [**किमपि द्रव्यान्तरं**] कोई ज्ञेयरूप पुद्गल द्रव्य अथवा धर्म अधर्म आकाश काल द्रव्य [**एकद्रव्य**] शुद्ध जीव वस्तुमें [**गत**] एक द्रव्यरूपसे परिणमता है ऐसा [**न चकास्ति**] नही शोभता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीव समस्त ज्ञेयको जानता है, ज्ञान ज्ञानरूप है, ज्ञेय वस्तु ज्ञेयरूप है। कोई द्रव्य अपने द्रव्यत्वको छोडकर अन्य द्रव्यरूप तो नही हुआ ऐसा अनुभव जिसको है सो कहते है—"शुद्धद्रव्यनिरूपणार्पितमते." [**शुद्धद्रव्य**] समस्त विकल्पसे रहित शुद्ध चेतनामात्र जीववस्तुके [**निरूपण**] प्रत्यक्ष अनुभवमें [**अर्पितमतेः**] स्थापित किया है बुद्धिका सर्वस्व जिसने ऐसे जीवके। और कैसे जीवके ? "तत्त्वं समुत्पश्यत:" सत्तामात्र शुद्ध जीववस्तुको प्रत्यक्ष आस्वादता है ऐसे जीवके। भावार्थ इस प्रकार है कि जीव समस्त ज्ञेयको जानता है, समस्त ज्ञेयसे भिन्न है ऐसा स्वभाव सम्यग्दृष्टि जीव जानता है ॥२३-२१५॥

(मन्दाक्रान्ता)

शुद्धद्रव्यस्वरसभवनात्किं स्वभावस्य शेष-
मन्यद्द्रव्यं भवति यदि वा तस्य किं स्यात्स्वभावः।
ज्योत्स्नारूपं स्नपयति भुवं नैव तस्यास्ति भूमि-
र्ज्ञानं ज्ञेयं कलयति सदा ज्ञेयमस्यास्ति नैव ॥२४-२१६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"सदा ज्ञान ज्ञेयं कलयति अस्य ज्ञेयं न अस्ति एव" [**सदा**] सर्व काल [**ज्ञानं**] अर्थग्रहणशक्ति [**ज्ञेयं**] स्वपरसम्बन्धी समस्त ज्ञेय वस्तुको [**कलयति**] एक समयमे द्रव्य-गुण-पर्यायभेदयुक्त जैसी है उस प्रकार जानता है। एक विशेष—[**अस्य**] ज्ञानके सम्बन्धसे [**ज्ञेयं न अस्ति**] ज्ञेय वस्तु ज्ञानसे सम्बन्धरूप नही है। [**एव**] निश्चयसे ऐसा ही है। दृष्टान्त कहते है—"ज्योत्स्नारूप भुवं स्नपयति तस्य भूमि. न अस्ति एव" [**ज्योत्स्नारूपं**] चन्द्रिकाका प्रसार [**भुवं स्नपयति**] भूमिको श्वेत करता है। एक विशेष—[**तस्य**] ज्योत्स्नाके प्रसारके सम्बन्धसे [**भूमिः न अस्ति**] भूमि

ज्योत्स्नारूप नही होती । भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार ज्योत्स्ना फैलती है, समस्त भूमि श्वेत होती है तथापि ज्योत्स्नाका भूमिका सम्बन्ध नही है उसी प्रकार ज्ञान समस्त ज्ञेयको जानता है तथापि ज्ञानका ज्ञेयका सम्बन्ध नही है । ऐसा वस्तुका स्वभाव है । ऐसा कोई नही माने उसके प्रति युक्तिके द्वारा घटित करते है—"शुद्धद्रव्यस्वरस-भवनात्" शुद्ध द्रव्य अपने अपने स्वभावमे रहता है तो "स्वभावस्य शेष किं" [**स्वभावस्य**] सत्तामात्र वस्तुका [**शेषं किं**] क्या बचा ? भावार्थ इस प्रकार है कि सत्तामात्र वस्तु निर्विभाग एकरूप है, जिसके दो भाग होते नही । "यदि वा" जो कभी "अन्यद्रव्यं भवति" अनादिनिधन सत्तारूप वस्तु अन्य सत्तारूप होवे तो "तस्य स्वभाव किं स्यात्" [**तस्य**] पहले साधी हुई सत्तारूप वस्तुका [**स्वभावः किं स्यात्**] जो पूर्वका सत्त्व अन्य सत्त्वरूप होवे तो पूर्व सत्तामाहेका क्या बचा ? अपि तु पूर्व सत्ताका विनाश सिद्ध होता है । भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार जीवद्रव्य चेतना सत्तारूप है, निर्विभाग है सो चेतना सत्ता जो कभी पुद्गल द्रव्य—अचेतनारूप हो जाय तो चेतनासत्ताका विनाश होना कौन मेट सकता है ? सो वस्तुका स्वरूप ऐसा तो नही है, इसलिए जो द्रव्य जैसा है जिस प्रकार है वैसा ही है अन्यथा होता नही । इसलिए जीवका ज्ञान समस्त ज्ञेयको जानता है तो जानो तथापि जीव अपने स्वरूप है ॥२४-२१६॥

(मन्दाक्रान्ता)

रागद्वेषद्वयमुदयते तावदेतन्न यावत्
ज्ञानं ज्ञानं भवति न पुनर्बोध्यतां याति बोध्यम् ।
ज्ञानं ज्ञानं भवतु तदिदं न्यक्कृताज्ञानभावं
भावाभावौ भवति तिरयन् येन पूर्णस्वभावः ।२५-२१७।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एतत् रागद्वेषद्वय तावत् उदयते" [**एतत्**] विद्यमान [**राग**] इष्टमे अभिलाष [**द्वेष**] अनिष्टमे उद्वेग ऐसे [**द्वयं**] दो जातिके अशुद्ध परिणाम [**तावत् उदयते**] तब तक होते है "यावत् ज्ञान ज्ञान न भवति" [**यावत्**] जब तक [**ज्ञानं**] जीवद्रव्य [**ज्ञानं न भवति**] अपने शुद्धस्वरूपके अनुभवरूप नहीं परिणमता है । भावार्थ इस प्रकार है कि जितने काल तक जीव मिथ्यादृष्टि है उतने काल तक राग द्वेषरूप अशुद्ध परिणमन नही मिटता । "तथा बोध्य बोध्यता यावत् न याति" [**तथा**] तथा [**बोध्यं**] ज्ञानावरणादि कर्म अथवा रागादि अशुद्ध परिणाम [**बोध्यतां यावत् न याति**] ज्ञेयमात्र बुद्धिको नही प्राप्त होते है । भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञाना-

वरणादि कर्म सम्यग्दृष्टि जीवको जाननेके लिए है। कोई अपने कर्मका उदय कार्य जिस तिस प्रकार करनेके लिए समर्थ नही है। "तत् ज्ञानं ज्ञानं भवतु" [तत्] तिस कारणसे [ज्ञानं] जीव वस्तु [ज्ञानं भवतु] शुद्ध परिणतिरूप होकर शुद्धस्वरूपके अनुभव समर्थ होओ। कैसा है शुद्ध ज्ञान ? "न्यक्कृताज्ञानभावं" [न्यक्कृत] दूर किया है [अज्ञानभावं] मिथ्यात्वभावरूप परिणति जिसने ऐसा है। ऐसा होनेपर कार्यकी प्राप्ति कहते हैं—"येन पूर्णस्वभावः भवति" [येन] जिस शुद्ध ज्ञानके द्वारा [पूर्णस्वभावः भवति] जैसा द्रव्यका अनन्त चतुष्टयस्वरूप है वैसा प्रगट होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि मुक्तिपदकी प्राप्ति होती है। कैसा है पूर्ण स्वभाव ? "भावाभावौ तिरयन्" चतुर्गतिसम्बन्धी उत्पाद-व्ययको सर्वथा दूर करता हुआ जीवका स्वरूप प्रगट होता है ।।२५-२१७।।

(मन्दाक्रान्ता)

रागद्वेषाविह हि भवति ज्ञानमज्ञानभावात्
तौ वस्तुत्वप्रणिहितदृशा दृश्यमानौ न किञ्चित् ।
सम्यग्दृष्टिः क्षपयतु ततस्तत्त्वदृष्टया स्फुटन्तौ
ज्ञानज्योतिर्ज्वलति सहजं येन पूर्णाचलार्चिः ।२६-२१८।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ततः सम्यग्दृष्टिः स्फुटं तत्त्वदृष्टया तौ क्षपयतु" [ततः] तिस कारणसे [सम्यग्दृष्टिः] शुद्ध चैतन्य अनुभवशीली जीव [स्फुटं तत्त्वदृष्टया] प्रत्यक्षरूप है जो शुद्ध जीवस्वरूपका अनुभव उसके द्वारा [तौ] रागद्वेष दोनोंको [क्षपयतु] मूलसे मेट कर दूर करो। "येन ज्ञानज्योतिः सहजं ज्वलति" [येन] जिन राग-द्वेषके मेटनेसे [ज्ञानज्योतिः सहजं ज्वलति] शुद्ध जीवका स्वरूप जैसा है वैसा सहज प्रगट होता है। कैसी है ज्ञानज्योति ? "पूर्णाचलार्चिः" [पूर्ण] जैसा स्वभाव है ऐसा और [अचल] सर्वकाल अपने स्वरूप है ऐसा [अर्चिः] प्रकाश है जिसका, ऐसी है। रागद्वेषका स्वरूप कहते हैं—"हि ज्ञान अज्ञानभावात् इह रागद्वेषौ भवति" [हि] जिस कारण [ज्ञानं] जीव द्रव्य [अज्ञानभावात्] अनादि कर्म संयोगसे परिणमा है विभाव परिणति मिथ्यात्वरूप, उसके कारण [इह] वर्तमान संसार अवस्थामें [रागद्वेषौ भवति] राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणतिसे व्याप्य-व्यापकरूप आप परिणमता है। इस कारण "तौ वस्तुत्वप्रणिहितदृशा दृश्यमानौ न किञ्चित्" [तौ] राग-द्वेष दोनों जातिके अशुद्ध परिणाम [वस्तुत्वप्रणिहितदृशा दृश्यमानौ] सत्तास्वरूप दृष्टिसे विचार करनेपर [न किञ्चित्] कुछ वस्तु नही। भावार्थ इस प्रकार है कि जैसे सत्तास्वरूप एक जीव

द्रव्य विद्यमान है वैसे राग-द्वेष कोई द्रव्य नही, जीवकी विभाव परिणति है। वही जीव जो अपने स्वभावरूप परिणमे तो राग द्वेष सर्वथा मिटें। ऐसा होना सुगम है कुछ मुश्किल नही है—अशुद्ध परिणति मिटती है शुद्ध परिणति होती है ॥२६-२१८॥

(शालिनी)

रागद्वेषोत्पादकं तत्त्वदृष्टया
नान्यद्द्रव्यं वीक्ष्यते किञ्चनापि।
सर्वद्रव्योत्पत्तिरन्तश्चकास्ति
व्यक्तात्यन्तं स्वस्वभावेन यस्मात् ॥२७-२१९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई ऐसा मानता है कि जीवका स्वभाव राग-द्वेषरूप परिणमनेका नही है, पर द्रव्य ज्ञानावरणादि कर्म तथा शरीर भोगसामग्री बलात्कार जीवको राग-द्वेषरूप परिणमाते हैं सो ऐसा तो नही, जीवकी विभाव परिणाम शक्ति जीवमे है, इसलिए मिथ्यात्वके भ्रमरूप परिणमता हुआ राग-द्वेषरूप जीव द्रव्य आप परिणमता है, पर द्रव्यका कुछ सहारा नही है। ऐसा कहते हैं—"किश्चन अपि अन्यद्रव्य तत्त्वदृष्टया रागद्वेपोत्पादक न वीक्ष्यते" [**किश्चन अपि अन्यद्रव्यं**] आठ कर्मरूप अथवा शरीर मन वचन नोकर्मरूप अथवा बाह्य भोग-सामग्री इत्यादिरूप है जितना पर द्रव्य वह [**तत्त्वदृष्टया**] द्रव्यके स्वरूपको देखते हुए साची दृष्टिसे [**रागद्वेपोत्पादकं**] अशुद्ध चेतनारूप है जो राग-द्वेषपरिणाम उनको उत्पन्न करनेमे समर्थ [**न वीक्ष्यते**] नही दिखलाई देता। कहे हुए अर्थको गाढा—दृढ करते हैं—"यस्मात् सर्वद्रव्योत्पत्ति स्वस्वभावेन अन्त चकास्ति" [**यस्मात्**] जिस कारणसे [**सर्वद्रव्य**] जीव पुद्गल धर्म अधर्म काल आकाशका [**उत्पत्तिः**] अखण्ड धारारूप परिणाम [**स्वस्वभावेन**] अपने-अपने स्वरूपसे है [**अन्तः चकास्ति**] ऐसा ही अनुभवमें निश्चित होता है और ऐसे ही वस्तु सधती है, अन्यथा विपरीत है। कैसी है परिणति ? "अत्यन्त व्यक्ता" अति ही प्रगट है ॥२७-२१९॥

(मालिनी)

यदिह भवति रागद्वेषदोषप्रसूतिः
कतरदपि परेषां दूषणं नास्ति तत्र।

स्वयमयमपराधी तत्र सर्पत्यबोधो
भवतु विदितमस्तं यात्वबोधोऽस्मि बोधः ॥२८-२२०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि जीव द्रव्य संसार अवस्थामें राग द्वेष मोह अशुद्ध चेतनारूप परिणमता है सो वस्तुके स्वरूपका विचार करनेपर जीवका दोष है, पुद्गल द्रव्यका दोष कुछ नही है, कारण कि जीव द्रव्य अपने विभाव मिथ्यात्वरूप परिणमता हुआ अपने अज्ञानपनाको लिए हुए राग द्वेष मोहरूप आप परिणमता है; जो कभी शुद्ध परिणतिरूप होकर शुद्ध स्वरूपके अनुभवरूप परिणवे, राग द्वेप मोहरूप न परिणवे तो पुद्गल द्रव्यका क्या चारा (इलाज) है। वही कहते हैं—"इह यत् रागद्वेषदोषप्रसूतिः भवति तत्र कतरत् अपि परेषां दूषण नास्ति" [**इह**] अशुद्ध अवस्थामें [**यत्**] जो कुछ [**रागद्वेपदोपप्रसूतिः भवति**] रागादि अशुद्ध परिणति होती है [**तत्र**] उस अशुद्ध परिणतिके होनेमें [**कतरत् अपि**] अति ही थोड़ा भी [**परेषां दूषणं नास्ति**] जितनी ज्ञानावरणादि कर्मका उदय अथवा शरीर मन वचन अथवा पञ्चेन्द्रिय भोगसामग्री इत्यादि बहुत सामग्री है उसमे किसीका दूषण तो नहीं है। तो क्या है? "अयं स्वयं अपराधी तत्र अबोधः सर्पति" [**अयं**] संसारी जीव [**स्वयं अपराधी**] आप मिथ्यात्वरूप परिणमता हुआ शुद्ध स्वरूपके अनुभवसे भ्रष्ट है। कर्मके उदयसे हुआ है अशुद्ध भाव, उसको आपरूप जानता है [**तत्र**] इस प्रकार अज्ञानका अधिकार होनेपर [**अबोधः सर्पति**] राग-द्वेप-मोहरूप अशुद्ध परिणति होती है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीव आप मिथ्यादृष्टि होता हुआ परद्रव्यको आप जानकर अनुभवे वहाँ राग-द्वेप-मोहरूप अशुद्ध परिणतिका होना कौन रोके? इसलिए पुद्गल कर्मका कौन दोष? [**विदितं भवतु**] ऐसा ही विदित होओ कि रागादि अशुद्ध परिणतिरूप जीव परिणमता है सो जीवका दोष है, पुद्गल द्रव्यका दोष नही। अब अगला विचार कुछ है कि नही है? उत्तर इसप्रकार है—अगला यह विचार है कि "अबोधः अस्तं यातु" मोह-राग-द्वेषरूप है जो अशुद्ध परिणति उसका विनाश होओ। उसका विनाश होनेसे 'बोधः अस्मि" मैं शुद्ध चिद्रूप अविनश्वर अनादिनिधन जैसा हूँ वैसा विद्यमान ही हूँ। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य शुद्धस्वरूप है। उसमें मोह-राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणति होती है। उस अशुद्ध परिणतिके मेटनेका उपाय यह कि सहज ही द्रव्य शुद्धत्वरूप परिणवे तो अशुद्ध परिणति मिटे। और तो कोई करतूति—उपाय नही है। उस अशुद्ध परिणतिके मिटने पर जीवद्रव्य जैसा है वैसा है, कुछ घट-बढ़ तो नही ॥२८-२२०॥

(रथोद्धता)

रागजन्मनि निमित्ततां पर-
द्रव्यमेव कलयन्ति ये तु ते ।
उत्तरन्ति न हि मोहवाहिनीं
शुद्धबोधविधुरान्धबुद्धयः ॥२९-२२१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—कहे हुए अर्थको गाढा–दृढ करते है—"ते मोहवाहिनी न हि उत्तरन्ति" [ते] ऐसी मिथ्यादृष्टि जीवराशि [मोहवाहिनीं] मोह-राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणति ऐसी जो शत्रुकी सेना उसको [न हि उत्तरन्ति] नही मेट सकती है। कैसे है वे मिथ्यादृष्टि जीव ? "शुद्धवोधविधुरान्धवुद्धय" [शुद्ध] सकल उपाधिसे रहित जीव वस्तुके [वोध] प्रत्यक्षका अनुभवसे [विधुर] रहित होनेसे [अन्ध] सम्यक्त्वसे शून्य है [वुद्धयः] ज्ञान सर्वस्व जिनका, ऐसे है। उनका अपराध कौनसा ? उत्तर—ऐसा अपराध है, वही कहते है—"ये रागजन्मनि परद्रव्य निमित्तता एव कलयन्ति" [ये] जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव ऐसे है—[रागजन्मनि] राग द्वेप मोह अशुद्ध परिणतिरूप परिणमनेवाले जीवद्रव्यके विषयमे [परद्रव्यं] आठ कर्म शरीर आदि नोकर्म तथा वाह्य भोगसामग्रीरूप [निमित्तां कलयन्ति] पुद्गल द्रव्यका निमित्त पाकर जीव रागादि अशुद्धरूप परिणमता है ऐसी श्रद्धा करती है जो कोई जीवराशि वे मिथ्यादृष्टि है—अनन्त ससारी हैं, जिससे ऐसा विचार है कि ससारी जीवके रागादि अशुद्धरूप परिणमनशक्ति नही है, पुद्गलकर्म वलात्कार ही परिणमाता है। जो ऐसा है तो पुद्गलकर्म तो सर्वकाल विद्यमान ही है। जीवको शुद्ध परिणामका अवसर कौन ? अपि तु कोई अवसर नही ॥२९-२२१॥

(शार्दूलविक्रीडित)

पूर्णैकाच्युतशुद्धबोधमहिमा बोधा न बोध्यादयं
यायात्कामपि विक्रियां तत इतो दीपः प्रकाश्यादिव ।
तद्वस्तुस्थितिबोधवन्ध्यधिषणा एते किमज्ञानिनो
रागद्वेषमयीभवन्ति सहजां मुञ्चन्त्युदासीनताम् ।३०-२२२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि जीव ऐसी आशका करेगा कि जीवद्रव्य ज्ञायक है, समस्त ज्ञेयको जानता है, इसलिए परद्रव्यको

जानते हुए कुछ थोडा-बहुत रागादि अशुद्ध परिणतिका विकार होता होगा ? उत्तर इस प्रकार है कि परद्रव्यको जानते हुए तो एक निरंशमात्र भी नही है, अपनी विभाव परिणति करनेसे विकार है। अपनी शुद्ध परिणति होने पर निर्विकार है। ऐसा कहते है—"एते अज्ञानिन किं रागद्वेषमयीभवन्ति सहजा उदासीनता कि मुञ्चन्ति" [**एते अज्ञानिनः**] विद्यमान है जो मिथ्यादृष्टि जीव वे [**किं रागद्वेषमयीभवन्ति**] राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणतिमें मग्न ऐसे क्यो होते है ? तथा [**सहजां उदासीनतां किं मुञ्चन्ति**] सहज ही है सकल परद्रव्यसे भिन्नपना ऐसी प्रतीतिको क्यो छोडते है ? भावार्थ इस प्रकार है कि वस्तुका स्वरूप तो प्रगट है, (लोग) विचलित होते है सो पूरा अचम्भा है। कैसे हैं अज्ञानी जीव ? "तद्वस्तुस्थितिबोधवन्ध्यधिषणाः" [**तद्वस्तु**] शुद्ध जीव द्रव्यकी [**स्थिति**] स्वभावकी मर्यादाके [**बोध**] अनुभवसे [**वन्ध्य**] शून्य है [**धिषणाः**] बुद्धि जिनकी, ऐसे है। जिस कारणसे "अयं बोधा" विद्यमान है जो चेतनामात्र जीवद्रव्य वह "बोध्यात्" समस्त ज्ञेयको जानता है, इस कारण "कामपि विक्रिया न यायात्" राग-द्वेष-मोहरूप किसी विक्रियारूप नही परिणमता है। कैसा है जीवद्रव्य ? "पूर्णैकाच्युतशुद्धबोधमहिमा" [**पूर्ण**] नही है खण्ड जिसका, [**एक**] समस्त विकल्पसे रहित [**अच्युत**] अनन्त काल पर्यन्त स्वरूपसे नही चलायमान [**शुद्ध**] द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मसे रहित ऐसा जो [**बोध**] ज्ञानगुण वही है [**महिमा**] सर्वस्व जिसका, ऐसा है। दृष्टान्त कहते हैं— "ततः इतः प्रकाश्यात् दीपः इव" [**ततः इतः**] बाएँ-दाहिने ऊपर-तले आगे-पीछे [**प्रकाश्यात्**] दीपकके प्रकाशसे देखते हैं घड़ा कपडा इत्यादि उस कारण [**दीपः इव**] जिस प्रकार दीपकमे कोई विकार नही उत्पन्न होता। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार दीपक प्रकाशस्वरूप है, घट-पट आदि अनेक वस्तुओको प्रकाशता है। प्रकाशते हुए जो अपना प्रकाशमात्र स्वरूप था वैसा ही है, विकार तो कुछ देखा नही जाता। उसी प्रकार जीवद्रव्य ज्ञानस्वरूप है, समस्त ज्ञेयको जानता है। जानते हुए जो अपना ज्ञानमात्र स्वरूप था वैसा ही है। ज्ञेयको जानते हुए विकार कुछ नही है ऐसा वस्तुका स्वरूप जिनको नही भासित होता वे मिथ्यादृष्टि हैं ॥३०-२२२॥

(शार्दूलविक्रीडित)

रागद्वेषविभावमुक्तमहसो नित्यं स्वभावस्पृशः
पूर्वागामिसमस्तकर्मविकला भिन्नास्तदात्वोदयात्।

**दूरारूढचरित्रवैभवबलाच्चञ्चच्चिदर्चिर्मयीं
विन्दन्ति स्वरसाभिषिक्तभुवनां ज्ञानस्य सञ्चेतनाम् ।३१-२२३।**

खण्डान्वय सहित अर्थ—"नित्य स्वभावस्पृश ज्ञानस्य सञ्चेतना विन्दन्ति" [नित्यं स्वभावस्पृशः] निरन्तर शुद्ध स्वरूपका अनुभव है जिन्हे ऐसे है जो सम्यग्दृष्टि जीव, वे [ज्ञानसञ्चेतनां] राग-द्वेष-मोहसे रहित शुद्ध ज्ञानमात्र वस्तुको [विन्दन्ति] प्राप्त करते हैं–आस्वादते है । कैसी है ज्ञानचेतना ? "स्वरसाभिषिक्तभुवना" अपने आत्मीक रससे जगतको मानो सिञ्चन करती है । और कैसी है ? "चञ्चच्चिदर्चिर्मयी" [चञ्चत्] सकल ज्ञेयको जाननेमे समर्थ ऐसा जो [चिदर्चिः] चैतन्यप्रकाश, ऐसा है [मयीं] सर्वस्व जिसका, ऐसी है । ऐसी चेतनाका जो कारण है उसे कहते है—"दूरारूढचरित्रवैभवबलात्" [दूर] अति गाढ–दृढ [आरूढ] प्रगट हुआ जो [चरित्र] राग द्वेष अशुद्ध परिणतिसे रहित जीवका जो चारित्रगुण, उसके [वैभव] प्रतापकी [बलात्] सामर्थ्यसे । भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध चारित्र तथा शुद्ध ज्ञानचेतनाको एक वस्तुपना है । कैसे हैं सम्यग्दृष्टि जीव ? "रागद्वेषविभावमुक्तमहस" [रागद्वेष] जितनी अशुद्ध परिणति है उसरूप जो [विभाव] जीवका विकारभाव, उससे [मुक्त] रहित हुआ है [महसः] शुद्ध ज्ञान जिनका, ऐसे है । और कैसे है ? "पूर्वागामिसमस्त-कर्मविकला." [पूर्व] जितना अतीत काल [आगामि] जितना अनागत काल तत्-सम्बन्धी [समस्त] नानाप्रकार असख्यात लोकमात्र [कर्म] रागादिरूप अथवा सुख-दु.खरूप अशुद्धचेतना विकल्प, उनसे [विकलाः] सर्वथा रहित है । और कैसे है ? "तदात्वोदयात् भिन्ना" [तदात्वोदयात्] वर्तमान कालमे आये हुए उदयसे हुई है जो शरीर-सुख-दु खरूप विषय भोगसामग्री इत्यादि, उससे [भिन्नाः] परम उदासीन है । भावार्थ इस प्रकार है कि कोई सम्यग्दृष्टि जीव त्रिकालसम्बन्धी कर्मकी उदय सामग्रीसे विरक्त होकर शुद्ध चेतनाको प्राप्त करते है–आस्वादते है ।।३१-२२३।।

(उपजाति)

**ज्ञानस्य सञ्चेतनयैव नित्यं
प्रकाशते ज्ञानमतीव शुद्धम् ।
अज्ञानसञ्चेतनया तु धावन्
बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि बन्धः ।।३२-२२४।।**

खण्डान्वय सहित अर्थ—ज्ञानचेतनाका फल अज्ञानचेतनाका फल कहते हैं—"नित्यं" निरन्तर "ज्ञानस्य सञ्चेतनया" राग-द्वेप-मोहरूप अशुद्ध परिणतिके विना शुद्ध जीवस्वरूपके अनुभवरूप जो ज्ञानपरिणति उसके द्वारा "अतीव शुद्धं ज्ञानं प्रकाशते एव" [अतीव शुद्धं ज्ञानं] सर्वथा निरावरण केवलज्ञान [प्रकाशते] प्रगट होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि कारण सदृश कार्य होता है, इसलिए शुद्ध ज्ञानका अनुभव करनेपर शुद्ध ज्ञानकी प्राप्ति होती है ऐसा घटित होता है, [एव] ऐसा ही है निश्चयसे। "तु" तथा "अज्ञानसञ्चेतनया वन्धः धावन् वोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि" [अज्ञानसञ्चेतनया] राग-द्वेप-मोहरूप तथा सुख-दुःखादिरूप जीवकी अशुद्ध परिणतिके द्वारा [वन्धः धावन्] ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध अवश्य होता हुआ [बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि] केवलज्ञानकी शुद्धताको रोकता है। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानचेतना मोक्षका मार्ग, अज्ञानचेतना ससारका मार्ग ॥३२-२२४॥

(आर्या)

कृतकारितानुमननैस्त्रिकालविषयं मनोवचनकायैः।
परिहृत्य कर्म सर्व परमं नैष्कर्म्यमवलम्बे ॥३३-२२५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—कर्मचेतनारूप कर्मफलचेतनारूप है जो अशुद्ध परिणति उसे मिटानेका अभ्यास करता है—"परमं नैष्कर्म्यं अवलम्वे" मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप जीव हूँ। सकल कर्मकी उपाधिसे रहित ऐसा मेरा स्वरूप मुझे स्वानुभव प्रत्यक्षसे आस्वादमें आता है। क्या विचार कर ? "सर्व कर्म परिहृत्य" जितना द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म है उन समस्तका स्वामित्व छोडकर। अशुद्ध परिणतिका विवरण—"त्रिकालविपय" एक अशुद्ध परिणति अतीत कालके विकल्परूप है जो मैं ऐसा किया ऐसा भोगा इत्यादि रूप है। एक अशुद्ध परिणति आगामी कालके विषयरूप है जो ऐसा करूँगा ऐसा करनेसे ऐसा होगा इत्यादिरूप है। एक अशुद्ध परिणति वर्तमान विषयरूप है जो मैं देव, मैं राजा, मेरे ऐसी सामग्री, मुझे ऐसा सुख अथवा दुःख इत्यादिरूप है। एक ऐसा भी विकल्प है कि "कृतकारितानुमननै:" [कृत] जो कुछ आपकी है हिंसादि क्रिया [कारित] जो अन्य जीवको उपदेश देकर करवाई हो [अनुमननैः] जो किसीने सहज ही की हुई क्रियासे सुख मानना। तथा एक ऐसा भी विकल्प है जो "मनोवचनकायैः" मनसे चिन्तवन करना, वचनसे वोलना, शरीरसे प्रत्यक्ष करना। ऐसे विकल्पो-

को परस्पर फैलाने पर उनचास ४९ भेद होते हैं, वे समस्त जीवका स्वरूप नही है, पुद्गलकर्मके उदयसे होते है ।।३३-२२५।।

भूतकालका विचार इसप्रकार करता है—

यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वन्तमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ।*

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तत् दुष्कृत मे मिथ्या भवतु" [तत् दुष्कृतं] राग-द्वेप-मोहरूप अशुद्ध परिणति अथवा ज्ञानावरणादि कर्मपिण्ड [मे मिथ्या भवतु] स्वरूप-से भ्रष्ट होते हुए मैंने आपस्वरूप अनुभवा सो अज्ञानपना हुआ । साम्प्रत (अव) ऐसा अज्ञानपना जाओ । 'मैं शुद्धस्वरूप' ऐसा अनुभव होओ । पापके वहुत भेद है, उन्हे कहते हैं—"यत् अह अकार्षं" [यत्] जो पाप [अहं अकार्षं] मैंने किया है । "यत् अह अचीकर" जो पाप अन्यको उपदेश देकर कराया है । तथा "अन्य कुर्वन्त समन्वज्ञासिष" सहज ही किया है अन्य किसीने, उसमे मैंने सुख माना होवे "मनसा" मनसे "वाचा" वचनसे "कायेन" शरीरसे । यह सव जीवका स्वरूप नही है । इसलिए मैं तो स्वामी नही हूँ । इसका स्वामी तो पुद्गलकर्म है । ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव अनुभवता है ।

(आर्या)

मोहाद्यदहमकार्षं समस्तमपि कर्म तत्प्रतिक्रम्य ।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते ।३४-२२६।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अह आत्मना आत्मनि वर्ते" [अहं] चेतनामात्र स्वरूप हूँ जो मैं वस्तु वह मैं [आत्मना] अपनेपनेसे (अपने द्वारा) [आत्मनि वर्ते] रागादि अशुद्ध परिणति त्यागकर अपने शुद्ध स्वरूपमे अनुभवरूप प्रवर्तता हूँ । कैसा है आत्मा अर्थात् आप ? "नित्य चैतन्यात्मनि" [नित्यं] सर्व काल [चैतन्यात्मनि] ज्ञान-मात्र स्वरूप है । और कैसा है ? "नि कर्मणि" समस्त कर्मकी उपाधिसे रहित है । क्या करता हुआ ऐसे प्रवर्तता हूँ ? "तत्समस्त कर्म प्रतिक्रम्य" पहले किया है जो कुछ अशुद्ध-पनारूप कर्म उसका त्यागकर । कौन कर्म ? "यत् अह अकार्ष" जो आप किया है ।

* श्री समयसारकी आत्मख्याति-टीकाका यह भाग गद्यरूप है, पद्यरूप अर्थात् कलश रूप नही है, इसलिये उसको नम्बर नही दिया गया है ।

किस कारणसे ? "मोहात्" शुद्धस्वरूपसे भ्रष्ट होकर कर्मके उदयमे आत्मबुद्धि होनेसे ।।३४-२२६।।

वर्तमान कालकी आलोचना इस प्रकार है—

न करोमि न कारयामि न कुर्वन्तमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वाचा च कायेन चेति ।*

खण्डान्वय सहित अर्थ—"न करोमि" वर्तमान कालमे होता है जो राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणति अथवा ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्मबन्ध, उसको मैं नही करता हूँ। भावार्थ इस प्रकार है—मेरा स्वामित्वपना नही है ऐसा अनुभवता है सम्यग्दृष्टि जीव। "न कारयामि" अन्यको उपदेश देकर नही करवाता हूँ। "अन्य कुर्वन्त अपि न समनुजानामि" अपनेसे सहज अशुद्धपनारूप परिणमता है जो कोई जीव उसमे मैं सुख नहीं मानता हूँ "मनसा" मनसे "वाचा" वचनसे "कायेन" शरीरसे। सर्वथा वर्तमान कर्मका मेरे त्याग है।

(आर्या)

मोहविलासविजृम्भितमिदमुदयत्कर्म सकलमालोच्य ।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते ।३५-२२७।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अहं आत्मना आत्मनि नित्य वर्ते" [अहं] मैं [आत्मना] परद्रव्यकी सहाय बिना अपनी सहायसे [आत्मनि] अपनेमे [वर्ते] सर्वथा उपादेय बुद्धिसे प्रवर्तता हूँ। क्या करके ? "इद सकलं कर्म उदयत् आलोच्य" [इदं] वर्तमानमे उपस्थित [सकलं कर्म] जितना अशुद्धपना अथवा ज्ञानावरणादि कर्मपिण्डरूप पुद्गल जो कि [उदयत्] वर्तमान कालमें उदयरूप है उसका [आलोच्य] शुद्ध जीवका स्वरूप नही है ऐसा विचार करते हुए स्वामित्वपना छोड़कर। कैसा है कर्म ? "मोहविलासविजृम्भित" [मोह] मिथ्यात्वके [विलास] प्रभुत्वपनेके कारण [विजृम्भितं] फैला हुआ है। कैसा हूँ मैं आत्मा ? "चैतन्यात्मनि" शुद्ध चेतनामात्र स्वरूप हूँ और कैसा हूँ ? "निष्कर्मणि" समस्त कर्मकी उपाधिसे रहित हूँ ।।३५-२२७।।

भविष्य कर्मका प्रत्याख्यान करता है—

* देखिये पदटिप्पण पृ० १९७।

न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वन्तमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च वाचा च कायेन चेति ।*

खण्डान्वय सहित अर्थ—"न करिष्यामि" आगामी कालमे रागादि अशुद्ध परिणामोको नही करूँगा "न कारयिष्यामि" न कराऊँगा "अन्य कुर्वन्त न समनुज्ञास्यामि" [अन्यं कुर्वन्तं] सहज ही अशुद्ध परिणतिको करता है जो कोई जीव उसको [न समनुज्ञास्यामि] अनुमोदन नही करूँगा "मनसा" मनसे "वाचा" वचनसे "कायेन" शरीरसे ।

(आर्या)

प्रत्याख्याय भविष्यत्कर्म समस्तं निरस्तसम्मोहः ।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते ।३६-२२८।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"निरस्तसम्मोह आत्मना आत्मनि नित्य वर्ते" [निरस्त] गई है [सम्मोहः] मिथ्यात्वरूप अशुद्ध परिणति जिसकी ऐसा हूँ जो मैं सो [आत्मना] अपने ज्ञानके बलसे [आत्मनि] अपने स्वरूपमे [नित्यं वर्ते] निरन्तर अनुभवरूप प्रवर्तता हूँ । कैसा है आत्मा अर्थात् आप ? "चैतन्यात्मनि" शुद्ध चेतनामात्र है । और कैसा है ? "निःकर्मणि" समस्त कर्मकी उपाधिसे रहित है । क्या करके आत्मामे प्रवर्तता हूँ ? "भविष्यत् समस्त कर्म प्रत्याख्याय" [भविष्यत्] आगामी कालसम्बन्धी [समस्त कर्म] जितने रागादि अशुद्ध विकल्प है वे [प्रत्याख्याय] शुद्ध स्वरूपसे अन्य है ऐसा जानकर अगीकाररूप स्वामित्वको छोडकर ॥३६-२२८॥

(उपजाति)

समस्तमित्येवमपास्य कर्म
त्रैकालिकं शुद्धनयावलंबी ।
विलीनमोहो रहितं विकारै-
श्चिन्मात्रमात्मानमथावलंबे ॥३७-२२९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अथ विलीनमोह चिन्मात्रं आत्मान अवलम्बे" [अथ] अशुद्ध परिणतिके मिटनेके उपरान्त [विलीनमोहः] मूलसे ही मिटा है मिथ्यात्व परिणाम

---

* देखिए पदटिप्पण पृ० १९७ ।

जिसका ऐसा मैं [चिन्मात्रं आत्मानं अवलम्बे] ज्ञानस्वरूप जीव वस्तुको निरन्तर आस्वादता हूँ। कैसा आस्वादता हूँ ? "विकारैः रहित" जो राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध परिणतिसे रहित है। ऐसा कैसा हूँ मैं ? "शुद्धनयावलम्बी" [शुद्धनय] शुद्ध जीव वस्तुका [अवलम्बी] आलम्बन ले रहा हूँ, ऐसा हूँ। क्या करता हुआ ऐसा हूँ ? "इत्येव समस्तं कर्म अपास्य" [इत्येवं] पूर्वोक्त प्रकारसे [समस्तं कर्म] जितने है ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म रागादि भावकर्म उन्हे [अपास्य] जीवसे भिन्न जानकर-स्वीकारको त्यागकर। कैसा है रागादि कर्म ? "त्रैकालिकं" अतीत अनागत वर्तमान काल-सम्बन्धी है ॥३७-२२९॥

(आर्या)

विगलन्तु कर्मविषतरुफलानि मम भुक्तिमन्तरेणैव ।
संचेतयेऽहमचलं चैतन्यात्मानमात्मानम् ॥३८-२३०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अहं आत्मानं सञ्चेतये" मै शुद्ध चिद्रूपको—अपनेको आस्वादता हूँ। कैसा है आत्मा अर्थात् आप ? "चैतन्यात्मानं" ज्ञानस्वरूपमात्र है। और कैसा है ? "अचल" अपने स्वरूपसे स्खलित नही है। अनुभवका फल कहते है— "कर्म विषतरुफलानि मम भुक्ति अन्तरेण एव विगलन्तु" [कर्म] ज्ञानावरणादि पुद्गल-पिण्डरूप [विषतरु] विषका वृक्ष—क्योकि चैतन्य प्राणका घातक है—उसके [फलानि] फल अर्थात् उदयकी सामग्री [मम भुक्तिं अन्तरेण एव] मेरे भोगे बिना ही [विगलन्तु] मूलसे सत्तासहित नाश होओ। भावार्थ इस प्रकार है कि कर्मका उदय है सुख अथवा दुःख, उसका नाम है कर्मफलचेतना, उससे भिन्न स्वरूप आत्मा ऐसा जानकर सम्यग्दृष्टि जीव अनुभव करता है ॥३८-२३०॥

(वसन्ततिलका)

निःशेषकर्मफलसंन्यसनान्ममैवं
सर्वक्रियान्तरविहारनिवृत्तवृत्तेः ।
चैतन्यलक्ष्म भजतो भृशमात्मतत्त्वं
कालावलीयमचलस्य वहत्वनन्ता ॥३९-२३१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"मम एव अनन्ता कालावली वहतु" [मम] मुझे [एवं] कर्मचेतना कर्मफलचेतनासे रहित होकर शुद्ध ज्ञानचेतना सहित विराजमानपनेसे

[अनन्ता कालावली वहतु] अनन्तकाल यो ही पूरा होओ। भावार्थ इस प्रकार है कि कर्मचेतना कर्मफलचेतना हेय, ज्ञानचेतना उपादेय। कैसा हूँ मै ? "सर्वक्रियान्तरविहार-निवृत्तवृत्ते" [सर्व] अनन्त ऐसी [क्रियान्तर] शुद्ध ज्ञानचेतनासे अन्य-कर्मके उदय अशुद्ध परिणति, उसमे [विहार] विभावरूप परिणमता है जीव, उससे [निवृत्त] रहित ऐसी है [वृत्तेः] ज्ञानचेतनामात्र प्रवृत्ति जिसकी, ऐसा हूँ। किस कारणसे ऐसा हूँ ? नि शेपकर्मफलसन्यसनात्" [निःशेप] समस्त [कर्म] ज्ञानावरणादिके [फल] ससारसम्वन्धी सुख-दु खके [संन्यसनात्] स्वामित्वपनेके त्यागके कारण। और कैसा हूँ ? "भृश आत्मतत्त्व भजतः" [भृशं] निरन्तर [आत्मतत्त्वं] शुद्ध चैतन्य वस्तुका [भजतः] अनुभव है जिसको, ऐसा हूँ। कैसा है आत्मतत्त्व ? "चैतन्यलक्ष्म" शुद्ध ज्ञानस्वरूप है। और कैसा है ? "अचलस्य" आगामी अनन्तकाल तक स्वरूपसे अमिट है ॥३९-२३१॥

(वसन्ततिलका)

यः पूर्वभावकृतकर्मविषद्रुमाणां
भुंक्ते फलानि न खलु स्वत एव तृः।
आपातकालरमणीयमुदर्करम्यं
निष्कर्मशर्ममयमेति दशान्तरं सः ॥४०-२३२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"य. खलु पूर्वभावकृतकर्मविपद्रुमाणा फलानि न भु क्ते" [यः] जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव [खलु] सम्यक्त्व उत्पन्न हुए बिना [पूर्वभाव] मिथ्यात्वभावके द्वारा [कृत] उपार्जित [कर्म] ज्ञानावरणादि पुद्गलपिण्डरूपी [विपद्रुम] चैतन्य प्राणघातक विपवृक्षके [फलानि] ससारसम्बन्धी सुख-दु खको [न भुंक्ते] नही भोगता है। भावार्थ इस प्रकार है कि सुख-दु खका ज्ञायकमात्र है, परन्तु पर द्रव्यरूप जानकर रजक नही है। कैसा है सम्यग्दृष्टि जीव ? "स्वत. एव तृप्त" शुद्ध स्वरूपके अनुभवनेपर होता है अतीन्द्रिय सुख, उससे तृप्त अर्थात् समाधानरूप है। "स दशान्तर एति" [सः] वह सम्यग्दृष्टि जीव [दशान्तरं] नि कर्म अवस्थारूप निर्वाणपदको [एति] प्राप्त करता है। कैसी है दशान्तर ? "आपातकालरमणीय" वर्तमानकालमे अनन्तसुख विराजमान है। "उदर्करम्य" आगामी अनन्तकाल तक सुख-रूप है। और कैसी है अवस्थान्तर ? "नि कर्मशर्ममय" सकलकर्मका विनाश होनेपर

प्रगट होता है जो द्रव्यका सहजभूत अतीन्द्रिय अनन्त सुख, उसमय है—उससे एक सत्तारूप है ।।४०-२३२।।

(स्रग्धरा)

अत्यन्तं भावयित्वा विरतिमविरतं कर्मणस्तत्फलाच्च
प्रस्पष्टं नाटयित्वा प्रलयनमखिलाज्ञानसंचेतनायाः ।
पूर्णं कृत्वा स्वभावं स्वरसपरिगतं ज्ञानसंचेतनां स्वां
सानन्दं नाटयन्तः प्रशमरसमितः सर्वकालं पिबन्तु ।४१-२३३।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इतः प्रशमरसं सर्वकाल पिवन्तु" [**इतः**] यहाँ से लेकर [**सर्वकालं**] आगामी अनन्तकाल पर्यन्त [**प्रशमरसं पिवन्तु**] अतीन्द्रिय सुखको आस्वादो । वे कौन ? "स्वा ज्ञानसञ्चेतना सानन्दं नाटयन्तः" [**स्वां**] आपसम्वन्धी है जो [**ज्ञानसञ्चेतनां**] शुद्ध ज्ञानमात्र परिणति, उसको [**सानन्दं नाटयन्तः**] आनन्द सहित नचाते है अर्थात् अतीन्द्रिय सुखसहित ज्ञानचेतनारूप परिणमते है, ऐसे हैं जो जीव । क्या करके ? "स्वभाव पूर्णं कृत्वा" [**स्वभावं**] केवल ज्ञान उसको [**पूर्णं कृत्वा**] आवरण सहित था सो निरावरण किया । कैसा है स्वभाव ? "स्वरसपरिगत" चेतना-रसका निधान है । और क्या करके ? "कर्मण च तत्फलात् अत्यन्त विरतिं भावयित्वा" [**कर्मणः**] ज्ञानावरणादि कर्मसे [**च**] और [**तत्फलात्**] कर्मके फल सुख-दुखसे [**अत्यन्तं**] अतिशयरूपसे [**विरतिं**] शुद्ध स्वरूपसे भिन्न है ऐसा अनुभव होनेपर स्वामित्वपनेके त्यागको [**भावयित्वा**] भाकर अर्थात् ऐसा सर्वथा निश्चय करके "अविरत" जिस प्रकार एक समयमात्र खण्ड न होवे उस प्रकार सर्वकाल । और क्या करके ? "अखिलाज्ञानसञ्चेतनाया प्रलयन प्रस्पष्ट नाटयित्वा" सर्व मोह-राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणतिका भले प्रकार विनाश करके । भावार्थ इस प्रकार है कि मोह-राग-द्वेष-परिणति विनशती है, शुद्ध ज्ञानचेतना प्रगट होती है, अतीन्द्रिय सुखरूप जीव परिणमता है । इतना कार्य जब होता है तब एक ही साथ होता है ।।४१-२३३।।

(वशस्थ)

इतः पदार्थप्रथनावगुण्ठनाद्-
विना कृतेरेकमनाकुलं ज्वलत् ।

समस्तवस्तुव्यतिरेकनिश्चयाद्-
विवेचितं ज्ञानमिहावतिष्ठते ।।४२-२३४।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इत इह ज्ञान अवतिष्ठते" [**इतः**] अज्ञानचेतनाके विनाश होनेके उपरान्त [**इह**] आगामी सर्वकाल [**ज्ञानं**] शुद्ध ज्ञानमात्र जीववस्तु [**अवतिष्ठते**] विराजमान प्रवर्तती है। कैसा है ज्ञान (ज्ञानमात्र जीववस्तु) ? "विवेचित" सर्वकाल समस्त परद्रव्यसे भिन्न है। किस कारणसे ऐसा जाना ? "समस्तवस्तुव्यतिरेक-निश्चयात्" [**समस्तवस्तु**] जितनी परद्रव्यकी उपाधि है उससे [**व्यतिरेक**] सर्वथा भिन्नरूप ऐसी है [**निश्चयात्**] अवश्य द्रव्यकी शक्ति उसके कारण। कैसा है ज्ञान ? "एक" समस्त भेद विकल्पसे रहित है। और कैसा है ? "अनाकुल" अनाकुलत्वलक्षण है अतीन्द्रिय सुख उससे विराजमान है। और कैसा है ? "ज्वलत्" सर्वकाल प्रकाशमान है। ऐसा क्यो है ? "पदार्थप्रथनावगुण्ठनात् विना" [**पदार्थ**] जितने विषय उनका [**प्रथना**] विस्तार—पाँच वर्ण पाँच रस दो गन्ध आठ स्पर्श शरीर मन वचन सुख-दुख इत्यादि—उसका [**अवगुण्ठनात्**] मालारूप गूँथना, उससे [**विना**] रहित है अर्थात् सर्वमालासे भिन्न है जीववस्तु। कैसी है विषयमाला ? "कृते" पुद्गल द्रव्यकी पर्याय-रूप है ।।४२-२३४।।

(शार्दूलविक्रीडित)

अन्येभ्यो व्यतिरिक्तमात्मनियतं बिभ्रत्पृथग्वस्तुता-
मादानोज्झनशून्यमेतदमलं ज्ञानं तथावस्थितम् ।
मध्याद्यन्तविभागमुक्तसहजस्फारप्रभाभासुरः
शुद्धज्ञानघनो यथाऽस्य महिमा नित्योदितस्तिष्ठति ।४३-२३५।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एतत् ज्ञान तथा अवस्थित यथा अस्य महिमा नित्योदित तिष्ठति" [**एतत् ज्ञानं**] शुद्ध ज्ञान [**तथा अवस्थितं**] उस प्रकार प्रगट हुआ [**यथा अस्य महिमा**] जिस प्रकार शुद्ध ज्ञानका प्रकाश [**नित्योदितः तिष्ठति**] आगामी अनन्त काल पर्यन्त अविनश्वर जैसा है वैसा ही रहेगा। कैसा है ज्ञान ? "अमल" ज्ञानावरण कर्ममलसे रहित है। और कैसा है ज्ञान ? "आदानोज्झनशून्य" [**आदान**] परद्रव्यका ग्रहण [**उज्झन**] स्वस्वरूपका त्याग उनसे [**शून्यं**] रहित है। और कैसा है ज्ञान ? "पृथक् वस्तुता बिभ्रत" सकल परद्रव्यसे भिन्न सत्तारूप है। और कैसा है ? "अन्येभ्य व्यतिरिक्त" कर्मके उदयसे है जितने भाव उनसे भिन्न है। और कैसा है ? "आत्म-

नियत" अपने स्वरूपसे अमिट है। कैसी है ज्ञानकी महिमा ? "मध्याद्यन्तविभागमुक्त-सहजस्फारप्रभाभासुर" [मध्य] वर्तमान [आदि] पहला [अन्त] आगामी ऐसे [विभाग] भेदसे [मुक्त] रहित [सहज] स्वभावरूप [स्फारप्रभा] अनन्त ज्ञान-शक्तिसे [भासुरः] साक्षात् प्रकाशमान है। और कैसा है ? "शुद्धज्ञानघनः" चेतनाका समूह है ॥४३-२३५॥

(उपजाति)

उन्मुक्तमुन्मोच्यमशेषतस्तत्
तथात्तमादेयमशेषतस्तत् ।
यदात्मनः संहृतसर्वशक्तेः
पूर्णस्य संधारणमात्मनीह ॥४४-२३६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"यत् आत्मनः इह आत्मनि सन्धारणं" [यत्] जो [आत्मनः] अपने जीवका [इह आत्मनि] अपने स्वरूपमे [सन्धारणं] स्थिर होना है "तत्" एतावन्मात्र समस्त 'उन्मोच्य उन्मुक्त" जितना हेयरूपसे छोड़ना था सो छूटा। "अशेषतः" कुछ छोडनेके लिए बाकी नही रहा। "तथा तत् आदेयं अशेषतः आत्त" [तथा] उसी प्रकार [तत् आदेयं] जो कुछ ग्रहण करनेके लिए था [अशेषतः आत्तं] सो समस्त ग्रहण किया। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध स्वरूपका अनुभव सर्व कार्य-सिद्धि। कैसा है आत्मा ? "संहृतसर्वशक्तेः" [संहृत] विभावरूप परिणमे थे वे ही हुए हैं स्वभावरूप ऐसे है [सर्वशक्तिः] अनन्तगुण जिसके, ऐसा है। और कैसा है ? "पूर्णस्य" जैसा था वैसा प्रगट हुआ ॥४४-२३६॥

(अनुष्टुप्)

व्यतिरिक्तं परद्रव्यादेवं ज्ञानमवस्थितम् ।
कथमाहारकं तत्स्याद्येन देहोऽस्य शंक्यते ।४५-२३७।*

श्लोकार्थ—"एव" इस प्रकार (पूर्वोक्त रीतिसे) "ज्ञान परद्रव्यात् व्यतिरिक्त अवस्थित" ज्ञान पर द्रव्यसे पृथक् अवस्थित (-निश्चल रहा हुआ) है, "तत्" वह (ज्ञान) "आहारक" आहारक (अर्थात् कर्म-नोकर्मरूप आहार करनेवाला) "कथ स्यात्" कैसे

---

* पण्डित श्री राजमलजी कृत टीकामे यह श्लोक छूट गया है। अत उक्त श्लोक अर्थ सहित, हिन्दी समयसारके आधारसे यहाँ दिया गया है।

हो सकता है "येन" कि जिससे "अस्य देह शक्यते" उसके देहकी शका की जा सके ? (ज्ञानके देह हो ही नही सकता, क्योकि उसके कर्म-नोकर्मरूप आहार ही नही है) ॥४५-२३७॥

(अनुष्टुप्)

एवं ज्ञानस्य शुद्धस्य देह एव न विद्यते ।
ततो देहमयं ज्ञातुर्न लिंगं मोक्षकारणम् ॥४६-२३८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तत देहमय लिङ्ग ज्ञातु मोक्षकारण न" [**ततः**] तिस कारणसे [**देहमयं लिङ्गं**] द्रव्यक्रियारूप यतिपना अथवा गृहस्थपना [**ज्ञातुः**] जीवके [**मोक्षकारणं न**] सकल कर्मक्षयलक्षण मोक्षका कारण तो नही है । किस कारणसे ? कारण कि "एव शुद्धस्य ज्ञानस्य" पूर्वोक्त प्रकारसे साधा है जो शुद्धस्वरूप जीव उसके "देह एव न विद्यते" शरीर ही नही है अर्थात् शरीर है वह भी जीवका स्वरूप नही है । भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यक्रियाको मोक्षका कारण मानता है उसे समझाया है ॥४६-२३८॥

(अनुष्टुप्)

दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मा तत्त्वमात्मनः ।
एक एव सदा सेव्यो मोक्षमार्गो मुमुक्षुणा ॥४७-२३९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"मुमुक्षुणा एक एव मोक्षमार्ग सदा सेव्य" [**मुमुक्षुणा**] मोक्षको उपादेय अनुभवता है ऐसा जो पुरुष, उसके द्वारा [**एक एव**] शुद्धस्वरूपका अनुभव [**मोक्षमार्गः**] सकल कर्मोंके विनाशका कारण है ऐसा जानकर [**सदा सेव्यः**] निरन्तर अनुभव करने योग्य है । वह मोक्षमार्ग क्या है ? "आत्मन· तत्त्व" शुद्ध जीवका स्वरूप है । और कैसा है आत्मतत्त्व ? "दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मा" सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र उन तीन स्वरूपकी एक सत्ता है आत्मा (सर्वस्व) जिसका, ऐसा है ॥४७-२३९॥

(शार्दूलविक्रीडित)

एको मोक्षपथो य एष नियतो दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मक-
स्तत्रैव स्थितिमेति यस्तमनिशं ध्यायेच्च तं चेतति ।

तस्मिन्नेव निरन्तरं विरहति द्रव्यान्तराण्यस्पृशन्
सोऽवश्यं समयस्य सारमचिरान्नित्योदयं विन्दति ॥४८-२४०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"सः नित्योदयं समयस्य सार अचिरात् अवश्यं विंदति" [सः] ऐसा है जो सम्यग्दृष्टि जीव वह [नित्योदयं] नित्य उदयरूप [समयस्य सारं] सकल कर्मका विनाशकर प्रगट हुआ है जो शुद्ध चैतन्यमात्र उसको [अचिरात्] अति ही थोडे कालमें [अवश्यं विन्दति] सर्वथा आस्वादता है। भावार्थ इस प्रकार है कि निर्वाणपदको प्राप्त होता है। कैसा है? "य तत्र एव स्थिति एति" [यः] जो सम्यग्दृष्टि जीव [तत्र] शुद्ध चैतन्यमात्र वस्तुमें [एव] एकाग्र होकर [स्थितिं एति] स्थिरता करता है, "च त अनिशं ध्यायेत्" [च] तथा [तं] शुद्ध चिद्रूपको [अनिशं ध्यायेत्] निरन्तर अनुभवता है, "च त चेतति" [तं चेतति] बार वार उस शुद्धस्वरूपका स्मरण करता है [च] और "तस्मिन् एव निरन्तर विहरति" [तस्मिन्] शुद्ध चिद्रूपमे [एव] एकाग्र होकर [निरन्तरं विहरति] अखण्ड धाराप्रवाहरूप प्रवर्तता है। कैसा होता हुआ? "द्रव्यान्तराणि अस्पृशन्" जितनी कर्मके उदयसे नाना प्रकारकी अशुद्ध परिणति उसको सर्वथा छोडता हुआ। वह चिद्रूप कौन है? "य एप: दृग्ज्ञप्तिवृत्तात्मक." [यः एषः] जो यह ज्ञानके प्रत्यक्ष है [दृग्] दर्शन [ज्ञप्ति] ज्ञान [वृत्त] चारित्र, वही है [आत्मकः] सर्वस्व जिसका, ऐसा है। और कैसा है? "मोक्षपथ:" जिसके शुद्धस्वरूप परिणमनेपर सकल कर्मोका क्षय होता है। और कैसा है? "एक:" समस्त विकल्पसे रहित है। और कैसा है? "नियत" द्रव्यार्थिकदृष्टिसे देखनेपर जैसा है वैसा ही है, उससे हीनरूप नही है, अधिक नही है ॥४८-२४०॥

(शार्दूलविक्रीडित)

ये त्वेनं परिहृत्य संवृतिपथप्रस्थापितेनात्मना
लिंगेद्रव्यमये वहन्ति ममतां तत्त्वावबोधच्युताः।
नित्योद्योतमखण्डमेकमतुलालोकं स्वभावप्रभा-
प्राग्भारं समयस्य सारममलं नाद्यापि पश्यन्ति ते ।४९-२४१।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ते समयस्य सार अद्यापि न पश्यन्ति" [ते] ऐसी है मिथ्यादृष्टि जीवराशि वह [समयस्य सारं] सकल कर्मोसे विमुक्त है जो परमात्मा उसे [अद्यापि] द्रव्यव्रत धारण किया है, बहुतसे शास्त्र पढे है तो भी [न पश्यन्ति]

नही प्राप्त होती है। भावार्थ इस प्रकार है कि निर्वाण पदको नही प्राप्त होती है। कैसा है समयसार ? "नित्योद्योत" सर्वकाल प्रकाशमान है। और कैसा है ? "अखण्ड" जैसा था वैसा है। और कैसा है ? "एक" निर्विकल्प सत्तारूप है। और कैसा है ? "अतुलालोक" जिसकी उपमाका दृष्टान्त तीन लोकमे कोई नही है। और कैसा है ? "स्वभावप्रभाप्राग्भार" [स्वभाव] चेतनास्वरूप उसका [प्रभा] प्रकाश उसका [प्राग्भारं] एक पुज है। और कैसा है ? "अमल" कर्ममलसे रहित है। कैसी है वह मिथ्यादृष्टि जीवराशि ? 'ये लिङ्गे ममता वहन्ति" [ये] जो कोई मिथ्यादृष्टि जीवराशि [लिङ्गे] द्रव्यक्रियामात्र है जो यतिपना उसमे [ममतां वहन्ति] मैं यति हूँ, हमारी क्रिया मोक्षमार्ग है ऐसी प्रतीति करती है। कैसा है लिङ्ग ? "द्रव्यमये" शरीरसम्बन्धी है—वाह्य क्रियामात्रका अवलम्बन करता है। कैसे है वे जीव ? "तत्त्वावबोधच्युता" [तत्त्व] जीवका शुद्ध स्वरूप उसका [अवबोध] प्रत्यक्षपने अनुभव उससे [च्युताः] अनादि कालसे भ्रष्ट है। द्रव्यक्रियाको करते हुए आपको कैसे मानते है ? "संवृतिपथ-प्रस्थापितेन आत्मना" [संवृतिपथ] मोक्षमार्गमे [प्रस्थापितेन आत्मना] अपनेको स्थापित किया है अर्थात् मैं मोक्षमार्गमे चढा हूँ ऐसा मानते है, ऐसा अभिप्राय रखकर क्रिया करते है। क्या करके ? "एन परिहृत्य" शुद्ध चैतन्यस्वरूपका अनुभव छोडकर। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध स्वरूपका अनुभव मोक्षमार्ग है ऐसी प्रतीति नही करते है ॥४९-२४१॥

(वियोगिनी)

व्यवहारविमूढदृष्टयः परमार्थं कलयन्ति नो जनाः ।
तुषबोधविमुग्धबुद्धयः कलयन्तीह तुषं न तन्दुलम् । ५०-२४२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"जना" कोई ऐसे है मिथ्यादृष्टि जीव जो "परमार्थ" शुद्ध ज्ञान मोक्षमार्ग है ऐसी प्रतीतिको "नो कलयन्ति" नही अनुभवते है। कैसे हैं ? "व्यवहारविमूढदृष्टय" [व्यवहार] द्रव्यक्रियामात्र उसमे [विमूढ] क्रिया मोक्षका मार्ग है इस प्रकार मूर्खपनेरूप झूठी है [दृष्टयः] प्रतीति जिनकी, ऐसे हैं। दृष्टान्त कहते हैं—जिस प्रकार "लोके" वर्तमान कर्मभूमिमे 'तुपबोधविमुग्धबुद्धय जना" [तुष] धानके ऊपरके तुपमात्रके [बोध] ज्ञानसे—ऐसे ही मिथ्याज्ञानसे [विमुग्ध] विकल हुई है [बुद्धयः] मति जिनकी, ऐसे है [जनाः] कितने ही मूर्ख लोग। "इह" वस्तु जैसी

है वैसी ही है तथापि अज्ञानपनेसे "तुष कलयन्ति" तुपको अंगीकार करते है, "तन्दुलं न कलयन्ति" चावलके मर्मको नही प्राप्त होते है । उसी प्रकार जो कोई क्रियामात्रको मोक्षमार्ग जानते है, आत्माके अनुभवसे शून्य हैं वे भी ऐसे ही जानने ॥५०-२४२॥

(स्वागता)

द्रव्यलिंगममकारमीलितै-
र्दृश्यते समयसार एव न ।
द्रव्यलिंगमिह यत्किलान्यतो
ज्ञानमेकमिदमेव हि स्वतः ॥५१-२४३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"द्रव्यलिङ्गममकारमीलितैः समयसारः न दृश्यते एव" [**द्रव्यलिङ्ग**] क्रियारूप यतिपना [**ममकार**] मैं यति, मेरा यतिपना मोक्षका मार्ग ऐसा जो अभिप्राय उसके कारण [**मीलितैः**] अन्धे हुए हैं अर्थात् परमार्थ दृष्टिसे शून्य हुए है जो पुरुप उन्हे [**समयसारः**] शुद्ध जीववस्तु [**न दृश्यते**] प्राप्तिगोचर नही है । भावार्थ इस प्रकार है कि मोक्षकी प्राप्ति उनके लिए दुर्लभ है । किस कारणसे ? "यत् द्रव्यलिंग इह अन्यत. हि इद एक ज्ञान स्वतः" [**यत्**] जिस कारणसे [**द्रव्य लिंगं**] क्रियारूप यतिपना [**इह**] शुद्ध ज्ञानका विचार करनेपर [**अन्यतः**] जीवसे भिन्न है, पुद्गलकर्म-सम्वन्धी है । इस कारण द्रव्यलिंग हेय है और [**हि**] जिस कारण [**इदं**] अनुभव-गोचर [**एकं ज्ञानं**] शुद्ध ज्ञानमात्र वस्तु [**स्वतः**] अकेला जीवका सर्वस्व है, इसलिए उपादेय है, मोक्षका मार्ग है । भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध जीवके स्वरूपका अनुभव अवश्य करना योग्य है ॥५१-२४३॥

(मालिनी)

अलमलमतिजल्पैर्दुर्विकल्पैरनल्पै-
रयमिह परमार्थश्चेत्यतां नित्यमेकः ।
स्वरसविसरपूर्णज्ञानविस्फूर्तिमात्रा-
न्न खलु समयसारादुत्तरं किञ्चिदस्ति ॥५२-२४४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इह अय एकः परमार्थः नित्यं चेत्यतां" [**इह**] सर्व तात्पर्य ऐसा है कि [**अयं एकः परमार्थः**] वहुत प्रकारसे कहा है तथापि कहेंगे शुद्ध जीवके अनुभवरूप अकेला मोक्षका कारण उसको [**नित्यं चेत्यतां**] अन्य जो नाना प्रकारके

अभिप्राय उन समस्तको मेटकर इसी एकको नित्य अनुभवो। वह कौन परमार्थ ? "खलु समयसारात् उत्तर किञ्चित् न अस्ति" [खलु] निश्चयसे [समयसारात्] शुद्ध जीवके स्वरूपके अनुभवके समान [उत्तरं] द्रव्यक्रिया अथवा सिद्धान्तका पढना लिखना इत्यादि [किञ्चित् न अस्ति] कुछ नही है अर्थात् शुद्ध जीवस्वरूपका अनुभव मोक्षमार्ग सर्वथा है, अन्य समस्त मोक्षमार्ग सर्वथा नही है। कैसा है समयसार ? "स्वरसविसरपूर्णज्ञान-विस्फूर्तिमात्रात्" [स्वरस] चेतनाके [विसर] प्रवाहसे [पूर्ण] सम्पूर्ण ऐसा [ज्ञान-विस्फूर्ति] केवलज्ञानका प्रगटपना [मात्रात्] इतना है स्वरूप जिसका, ऐसा है। आगे ऐसा मोक्षमार्ग है, इससे अधिक कोई मोक्षमार्ग कहता है वह वहिरात्मा है, उसे वर्जित करते है—"अतिजल्पै अल अल" [अतिजल्पैः] बहुत वोलनेसे [अलं अलं] बस करो बस करो। यहाँ दो वारके कहनेसे अत्यन्त वर्जित करते है कि चुप रहो चुप रहो। कैसे हैं अतिजल्प ? "दुर्विकल्पै" भूठसे भी भूठ उठती है चित्तकल्लोलमाला जिनमे, ऐसे हैं। और कैसे है ? "अनल्पैः" शक्तिभेदसे अनन्त है ॥५२-२४४॥

(अनुष्टुप्)

इदमेकं जगच्चक्षुरक्षयं याति पूर्णताम् ।
विज्ञानघनमानन्दमयमध्यक्षतां नयत् ॥५३-२४५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इद पूर्णता याति" शुद्ध ज्ञानप्रकाश पूर्ण होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जो सर्व विशुद्ध ज्ञान अधिकारका आरम्भ किया था वह पूर्ण हुआ। कैसा है शुद्ध ज्ञान ? "एक" निर्विकल्प है। और कैसा है ? "जगच्चक्षु" जितनी ज्ञेय वस्तु उन सवका ज्ञाता है। और कैसा है ? "अक्षय" शाश्वत है। और कैसा है ? "विज्ञानघन अध्यक्षता नयत्" [विज्ञान] ज्ञानमात्रके [घनं] समूहरूप आत्मद्रव्यको [अध्यक्षतां नयत्] प्रत्यक्षरूपसे अनुभवता हुआ ॥५३-२४५॥

(अनुष्टुप्)

इतीदमात्मनस्तत्त्वं ज्ञानमात्रमवस्थितम् ।
अखण्डमेकमचलं स्वसंवेद्यमबाधितम् ॥५४-२४६॥*

---

* पण्डित श्री राजमलजी कृत टीका मे यह श्लोक छूट गया है। अत यह श्लोक हिन्दी समयसार से लेकर अर्थ सहित यहां दिया गया है।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इदम् आत्मनः तत्त्व ज्ञानमात्रम् अवस्थितम् इति" [**इदम्**] प्रत्यक्ष है जो [**आत्मनः तत्त्वं**] शुद्ध जीवका स्वरूप वह [**ज्ञानमात्रम्**] शुद्ध-ज्ञानमात्र है ऐसा [**अवस्थितम् इति**] पूर्ण नाटक समयसार शास्त्र कहनेपर इतना सिद्धांत सिद्ध हुआ। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्धज्ञानमात्र जीवद्रव्य ऐसा कहने पर ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ। कैसा है आत्मतत्त्व ? "अखण्डम्" अबाधित है। और कैसा है ? "एकम्" निर्वि-कल्प है। और कैसा है ? "अचल" अपने स्वरूपसे अमिट है। और कैसा है ? "स्वसंवेद्यम्" ज्ञान गुणसे स्वानुभवगोचर होता है, अन्यथा कोटि यत्न करनेपर ग्राह्य नही हैं। और कैसा है ? "अबाधितम्" सकल कर्मसे भिन्न होनेपर कोई बाधा करनेको समर्थ नही है इस कारण ॥५४-२४६॥



[११]
स्याद्वाद-अधिकार

(अनुष्टुप्)

अत्र स्याद्वादशुद्धयर्थं वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिः ।
उपायोपेयभावश्च मनाग्भूयोऽपि चिन्त्यते ।।१-२४७।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"भूय अपि मनाक् चिन्त्यते" [भूयः अपि] ज्ञानमात्र जीवद्रव्य ऐसा कहता हुआ समयसार नाम शास्त्र समाप्त हुआ। तदुपरान्त [मनाक् चिन्त्यते] कुछ थोडासा अर्थ दूसरा कहते है। भावार्थ इस प्रकार है कि जो गाथासूत्रका कर्ता है कुन्दकुन्दाचार्यदेव, उनके द्वारा कथित गाथासूत्रका अर्थ सम्पूर्ण हुआ। साम्प्रत टीकाकर्ता है अमृतचन्द्र सूरि, उन्होने टीका भी कही। तदुपरान्त अमृतचन्द्र सूरि कुछ कहते है। क्या कहते हैं—"वस्तुतत्त्वव्यवस्थिति" [वस्तु] जीवद्रव्यका [तत्त्व] ज्ञानमात्र स्वरूप [व्यवस्थितिः] जिस प्रकार है उस प्रकार कहते है। "च" और क्या कहते है—"उपायोपेयभाव" [उपाय] मोक्षका कारण जिस प्रकार है उस प्रकार [उपेयभावः] सकल कर्मोंका विनाश होनेपर जो वस्तु निष्पन्न होती है उस प्रकार कहते है। कहनेका प्रयोजन क्या ऐसा कहते है—"अत्र स्याद्वादशुद्धयर्थ" [अत्र] ज्ञानमात्र जीवद्रव्यमे [स्याद्वादशुद्धयर्थं] स्याद्वाद—एक सत्तामे अस्तिनास्ति एक-अनेक नित्य-अनित्य इत्यादि अनेकान्तपना [शुद्धि] ज्ञानमात्र जीवद्रव्यमे जिस प्रकार घटित हो उस प्रकार [अर्थं] कहनेका है अभिप्राय जहाँ ऐसे प्रयोजनस्वरूप कहते है। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई आशका करता है कि जैनमत स्याद्वादमूलक है। यहाँ तो ज्ञानमात्र जीवद्रव्य ऐसा कहा सो ऐसा कहते हुए एकान्तपना हुआ, स्याद्वाद तो प्रगट हुआ है नही ? उत्तर इस प्रकार है कि ज्ञानमात्र जीवद्रव्य ऐसा कहते हुए अनेकान्तपना घटित होता है। जिस प्रकार घटित होता है उस प्रकार यहाँ से लेकर कहते है, सावधान होकर सुनो ।।१-२४७।।

(शार्दूलविक्रीडित)

बाह्यार्थैः परिपीतमुज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभवद्
विश्रान्तं पररूप एव परितो ज्ञानं पशोः सीदति ।
यत्तत्तत्तदिह स्वरूपत इति स्याद्वादिनस्तत्पुन-
र्दूरोन्मग्नघनस्वभावभरतः पूर्ण समुन्मज्जति ।।२-२४८।।

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि जो ज्ञानमात्र जीवका स्वरूप है उसमे भी चार प्रश्न विचारणीय है। वे प्रश्न कौन ? एक तो प्रश्न ऐसा कि ज्ञान ज्ञेयके सहारेका है कि अपने सहारेका है ? दूसरा प्रश्न ऐसा कि ज्ञान एक है कि अनेक है ? तीसरा प्रश्न ऐसा कि ज्ञान अस्तिरूप है कि नास्तिरूप है ? चौथा प्रश्न ऐसा कि ज्ञान नित्य है कि अनित्य है ? उनका उत्तर इस प्रकार है कि जितनी वस्तु हैं वे सब द्रव्यरूप हैं, पर्यायरूप है। इसलिए ज्ञान भी द्रव्यरूप है, पर्यायरूप है। उसका विवरण—द्रव्यरूप कहनेपर निर्विकल्प ज्ञानमात्र वस्तु, पर्यायरूप कहने पर स्वज्ञेय अथवा परज्ञेयको जानता हुआ ज्ञेयकी आकृति-प्रतिबिम्बरूप परिणमता है जो ज्ञान। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञेयको जाननेरूप परिणति ज्ञानकी पर्याय, इसलिए ज्ञानको पर्यायरूपसे कहनेपर ज्ञान ज्ञेयके सहारेका है। (ज्ञानको) वस्तुमात्रसे कहनेपर अपने सहारेका है। एक प्रश्नका समाधान तो इस प्रकार है। दूसरे प्रश्नका समाधान इस प्रकार है कि ज्ञानको पर्यायमात्रसे कहनेपर ज्ञान अनेक है, वस्तुमात्रसे कहने पर एक है। तीसरे प्रश्नका उत्तर इस प्रकार है कि ज्ञानको पर्यायरूपसे कहनेपर ज्ञान नास्तिरूप है, ज्ञानको वस्तुरूपसे विचारनेपर ज्ञान अस्तिरूप है। चौथे प्रश्नका उत्तर इस प्रकार है कि ज्ञानको पर्यायमात्रसे कहनेपर ज्ञान अनित्य है, वस्तुमात्रसे कहनेपर ज्ञान नित्य है। ऐसा प्रश्न करनेपर ऐसा समाधान करना, स्याद्वाद इसका नाम है। वस्तुका स्वरूप ऐसा ही है तथा इस प्रकार साधनेपर वस्तुमात्र सधती है। जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव वस्तुको वस्तुरूप है तथा वही वस्तु पर्यायरूप है ऐसा नही मानते है, सर्वथा वस्तुरूप मानते है अथवा सर्वथा पर्यायमात्र मानते हैं वे जीव एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि कहे जाते है। कारण कि वस्तुमात्रको माने बिना पर्यायमात्रके माननेपर पर्यायमात्र भी नही सधती है, वहाँ अनेक प्रकार साधन-बाधन है, अवसर पाकर कहेगे। अथवा पर्यायरूप माने विना वस्तुमात्र माननेपर वस्तुमात्र भी नही सधती है। वहाँ भी अनेक युक्तियाँ है। अवसर पाकर कहेगे। इसी बीच कोई मिथ्यादृष्टि जीव ज्ञानको पर्यायरूप मानता है, वस्तुरूप नही मानता है।

ऐसा मानता हुआ ज्ञानको ज्ञेयका सहारेका मानता है, उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि इस प्रकार तो एकान्तरूपसे ज्ञान सधता नही। इसलिए ज्ञान अपने सहारेका है ऐसा कहते है—"पशो ज्ञान सीदति" [पशोः] एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जैसा मानता है कि ज्ञान पर ज्ञेयके सहारेका है सो ऐसा माननेपर [ज्ञानं] शुद्ध जीवकी सत्ता [सीदति] नष्ट होती है अर्थात् अस्तित्वपना वस्तुरूपताको नही पाता है। भावार्थ इस प्रकार है कि एकान्तवादीके कथनानुसार वस्तुका अभाव सधता है, वस्तुपना नही सधता। कारण कि मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा मानता है। कैसा है ज्ञान ? "बाह्यार्थैं परिपीत" [बाह्यार्थैः] ज्ञेय वस्तुके द्वारा [परिपीतं] सर्व प्रकार निगला गया है। भावार्थ इस प्रकार है कि मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा मानता है कि ज्ञान वस्तु नही है, ज्ञेयसे है। सो भी उसी क्षण उपजता है, उसी क्षण विनशता है। जिस प्रकार घटज्ञान घटके सद्भावमे है। प्रतीति इस प्रकार होती है कि जो घट है तो घटज्ञान है। जब घट नही था तब घटज्ञान नही था। जब घट नही होगा तब घटज्ञान नही होगा। कोई मिथ्यादृष्टि जीव ज्ञानवस्तुको विना माने ज्ञानको पर्यायमात्र मानता हुआ ऐसा मानता है। और ज्ञानको कैसा मानता है—"उज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभवत्" [उज्झित] मूलसे नाश हो गया है [निजप्रव्यक्ति] ज्ञेयके जानपनेमात्रसे ज्ञान ऐसा पाया हुआ नाममात्र, उस कारण [रिक्तीभवत्] ज्ञान ऐसे नामसे भी विनष्ट हो गया है ऐसा मानता है मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी जीव। और ज्ञानको कैसा मानता है—"परित पररूपे एव विश्रान्त" [परितः] मूलसे लेकर [पररूपे] ज्ञेय वस्तुरूप निमित्तमे [एव] एकान्तसे [विश्रान्तं] विश्रान्त हो गया–ज्ञेयसे उत्पन्न हुआ, ज्ञेयसे नष्ट हो गया। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार भीतमे चित्राम जब भीत नही थी तब नही था, जब भीत है तब है, जब भीत नही होगी तब नही होगा। इससे प्रतीति ऐसी उत्पन्न होती है कि चित्रके सर्वस्वका कर्ता भीत है। उसी प्रकार जब घट है तब घटज्ञान है, जब घट नही था तब घटज्ञान नही था, जब घट नही होगा तब घटज्ञान नही होगा। इससे ऐसी प्रतीति उत्पन्न होती है कि ज्ञानके सर्वस्वका कर्ता ज्ञेय है। कोई अज्ञानी एकान्तवादी ऐसा मानता है, इसलिए ऐसे अज्ञानीके मतमे ज्ञान वस्तु ऐसा नही पाया जाता। स्याद्वादीके मतमे ज्ञानवस्तु ऐसा पाया जाता है। "पुन स्याद्वादिन तत् पूर्णं समुन्मज्जति" [पुनः] एकान्तवादी कहता है उस प्रकार नही है, स्याद्वादी कहता है उस प्रकार है। [स्याद्वादिनः] एक सत्ताको द्रव्यरूप तथा पर्यायरूप मानते है ऐसे जो सम्यग्दृष्टि जीव

उनके मतमें [तत्] ज्ञानवस्तु [पूर्णं] जैसी ज्ञेयसे होती कही, विनशती कही वैसी नहीं है, जैसी है वैसी ही है, ज्ञेयसे भिन्न स्वयसिद्ध अपनेसे है । [समुन्मज्जति] एकान्तवादीके मतमें मूलसे लोप हो गया था वही ज्ञान स्याद्वादीके मतमें ज्ञान वस्तुरूप प्रगट हुआ। किस कारणसे प्रगट हुआ ? "दूरोन्मग्नघनस्वभावभरतः" [दूर] अनादिसे लेकर [उन्मग्न] स्वयसिद्ध वस्तुरूप प्रगट है ऐसा [घन] अमिट [स्वभाव] ज्ञानवस्तुका सहज उसके [भरतः] न्याय करनेपर, अनुभव करनेपर ऐसा ही है ऐसे सत्यपनेके कारण। कैसा न्याय कैसा अनुभव ये दोनों जिस प्रकार होते हैं उस प्रकार कहते हैं—"यत् तत् स्वरूपतः तत् इति" [यत्] जो वस्तु [तत्] वह वस्तु [स्वरूपतः तत्] अपने स्वभावसे वस्तु है । [इति] ऐसा अनुभव करनेपर अनुभवभी उत्पन्न होता है, युक्ति भी प्रगट होती है । अनुभव निर्विकल्प है । युक्ति ऐसी कि ज्ञानवस्तु द्रव्यरूपसे विचार करनेपर अपने स्वरूप है, पर्यायरूपसे विचार करनेपर ज्ञेयसे है । जिस प्रकार ज्ञानवस्तु द्रव्यरूपसे ज्ञानमात्र है पर्यायरूपसे घटज्ञानमात्र है, इसलिए पर्यायरूपसे देखनेपर घटज्ञान जिस प्रकार कहा है, कि घटके सद्भावमें है, घटके नहीं होने पर नही है—वैसे ही है। द्रव्यरूपसे अनुभव करनेपर घटज्ञान ऐसा न देखा जाय, ज्ञान ऐसा देखा जाय तो घटसे भिन्न अपने स्वरूपमात्र स्वयसिद्ध वस्तु है । इस प्रकार अनेकान्तके साधने पर वस्तुस्वरूप सधता है । एकान्तसे जो घट घटज्ञानका कर्ता है, ज्ञानवस्तु नही है तो ऐसा होना चाहिए कि जिस प्रकार घटके पास बैठे पुरुषको घटज्ञान होता है उसी प्रकार जिस किसी वस्तुको घटके पास रखा जाय उसे घटज्ञान होना चाहिए । ऐसा होनेपर स्तम्भके पास घटके होनेपर स्तम्भको घटज्ञान होना चाहिए सो (-परन्तु) ऐसा तो नहीं दिखाई देता । तिस कारण ऐसा भाव प्रतीतिमे आता है कि जिसमे ज्ञानशक्ति विद्यमान है उसको घटके पास बैठकर घटके देखने विचारनेपर घटज्ञानरूप इस ज्ञानकी पर्याय परिणमती है । इसलिए स्याद्वाद वस्तुका साधक है, एकान्तपना वस्तुका नाशकर्ता है ॥२-२४८॥

(शार्दूलविक्रीडित)

विश्वं ज्ञानमिति प्रतर्क्य सकलं दृष्ट्वा स्वतत्त्वाशया
भूत्वा विश्वमयः पशुः पशुरिव स्वच्छन्दमाचेष्टते ।
यत्तत्तत्पररूपतो न तदिति स्याद्वाददर्शी पुन-
र्विश्वाद्भिन्नमविश्वविश्वघटितं तस्य स्वतत्त्वं स्पृशेत् ॥३-२४९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि ऐसा है जो ज्ञानको द्रव्यरूप मानता है, पर्यायरूप नही मानता है। इसलिए जिस प्रकार जीवद्रव्यको ज्ञानवस्तुरूपसे मानता है उस प्रकार ज्ञेय जो पुद्गल धर्म अधर्म आकाश कालद्रव्य उनको भी ज्ञेय वस्तु नही मानता है, ज्ञानवस्तु मानता है। उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि ज्ञान ज्ञेयको जानता है ऐसा ज्ञानका स्वभाव है तथापि ज्ञेयवस्तु ज्ञेयरूप है, ज्ञानरूप नही है—"पशु स्वच्छन्द आचेष्टते" [**पशुः**] एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव [**स्वच्छन्दं**] स्वेच्छाचाररूप–कुछ हेयरूप कुछ उपादेयरूप ऐसा भेद नही करता हुआ, समस्त त्रैलोक्य उपादेय ऐसी बुद्धि करता हुआ–[**आचेष्टते**] ऐसी प्रतीति करता हुआ नि शकपने प्रवर्तता है। किसके समान ? [**पशुः इव**] तिर्यञ्चके समान। कैसा होकर प्रवर्तता है ? [**विश्वमयः भूत्वा**] 'अह विश्व' ऐसा जान आप विश्वरूप हो प्रवर्तता है। ऐसा क्यो है ? कारण कि "सकल स्वतत्त्वाशया दृष्ट्वा" [**सकलं**] समस्त ज्ञेयवस्तुको [**स्वतत्त्वाशया**] ज्ञानवस्तुकी बुद्धिरूपसे [**दृष्ट्वा**] प्रगाढ प्रतीतिकर। ऐसी प्रगाढ प्रतीति क्यो होती है ? कारण कि "विश्व ज्ञान इति प्रतर्क्य" त्रैलोक्यरूप जो कुछ है वह ज्ञानवस्तुरूप है ऐसा जानकर। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानवस्तु पर्यायरूपसे ज्ञेयाकार होती है सो मिथ्यादृष्टि पर्यायरूप भेद नही मानता है, समस्त ज्ञेयको ज्ञानवस्तुरूप मानता है। उसके प्रति उत्तर इस प्रकार है कि ज्ञेयवस्तु ज्ञेयरूप है, ज्ञानरूप नही है। यही कहते है—"पुन स्याद्वाददर्शी स्वतत्त्व स्पृशेत्" [**पुनः**] एकान्तवादी जिस प्रकार कहता है उस प्रकार ज्ञानको वस्तुपना नही सिद्ध होता है। स्याद्वादी जिस प्रकार कहता है उस प्रकार वस्तुपना ज्ञानको सधता है। कारण कि एकान्तवादी ऐसा मानता है कि समस्त ज्ञानवस्तु है, सो इसके माननेपर लक्ष्य-लक्षणका अभाव होता है, इसलिए लक्ष्य-लक्षणका अभाव होनेपर वस्तुकी सत्ता नही सधती है। स्याद्वादी ऐसा मानता है कि ज्ञानवस्तु है, उसका लक्षण है—समस्त ज्ञेयका जानपना, इसलिए इसके कहनेपर स्वभाव सधता है, स्वस्वभावके सधनेपर वस्तु सधती है, अतएव ऐसा कहा जो स्याद्वाददर्शी [**स्वतत्त्वं स्पृशेत्**] वस्तुको द्रव्य-पर्यायरूप मानता है, ऐसा स्याद्वाददर्शी अर्थात् अनेकातवादी जीव ज्ञान वस्तु है ऐसा साधनेके लिए समर्थ होता है। स्याद्वादी ज्ञानवस्तुको कैसी मानता है ? "विश्वात् भिन्न" [**विश्वात्**] समस्त ज्ञेयसे [**भिन्नं**] निराला है। और कैसा मानता है ? "अविश्वविश्वघटित" [**अविश्व**] समस्त ज्ञेयसे भिन्नरूप [**विश्व**] अपने द्रव्य-गुण-पर्यायसे [**घटितं**] जैसा है वैसा अनादिसे स्वयसिद्ध निष्पन्न है—ऐसी

है ज्ञानवस्तु। ऐसा क्यों मानता है ? "यत् तत्" जो जो वस्तु है "तत् पररूपतः न तत्" वह वस्तु पर वस्तुकी अपेक्षा वस्तुरूप नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार ज्ञानवस्तु ज्ञेयरूपसे नहीं है, ज्ञानरूपसे है। उसी प्रकार ज्ञेयवस्तु भी ज्ञानवस्तुसे नहीं है, ज्ञेयवस्तुरूप है। इसलिए ऐसा अर्थ प्रगट हुआ कि पर्यायद्वारसे ज्ञान विश्वरूप है, द्रव्यद्वारसे आपरूप है। ऐसा भेद स्याद्वादी अनुभवता है। इसलिए स्याद्वाद वस्तुस्वरूपका साधक है, एकान्तपना वस्तुका घातक है ॥३-२४९॥

(शार्दूलविक्रीडित)

बाह्यार्थग्रहणस्वभावभरतो विष्वग्विचित्रोल्लसद्
ज्ञेयाकारविशीर्णशक्तिरभितस्त्रुटयन् पशुर्नश्यति।
एकद्रव्यतया सदा व्युदितया भेदभ्रमं ध्वंसय-
न्नेकं ज्ञानमबाधितानुभवनं पश्यत्यनेकान्तवित् ॥४-२५०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव पर्यायमात्रको वस्तु मानता है, वस्तुको नहीं मानता है, इसलिए ज्ञानवस्तु अनेक ज्ञेयको जानती है, उसको जानती हुई ज्ञेयाकार परिणमती है ऐसा जानकर ज्ञानको अनेक मानता है, एक नहीं मानता है। उसके प्रति उत्तर इस प्रकार है कि एक ज्ञानको माने बिना अनेक ज्ञान ऐसा नहीं सधता है, इसलिए ज्ञानको एक मानकर अनेक मानना वस्तुका साधक है ऐसा कहते हैं—"पशुःनश्यति" एकांतवादी वस्तुको नहीं साध सकता है। कैसा है ? "अभितः त्रुटयन्" जैसा मानता है उस प्रकार वह झूठा ठहरता है। और कैसा है ? "विष्वग्विचित्रोल्लसद्ज्ञेयाकारविशीर्णशक्तिः" [विश्वक्] जो अनन्त है [विचित्र] अनन्त प्रकारका है [उल्लसत्] प्रगट विद्यमान है ऐसा जो [ज्ञेय] छह द्रव्योंका समूह उसके [आकार] प्रतिबिम्बरूप परिणमी हैं ऐसी जो ज्ञानपर्याय [विशीर्णशक्तिः] एतावन्मात्र ज्ञान है ऐसी श्रद्धा करनेपर गल गई है वस्तु साधनेकी सामर्थ्य जिसकी, ऐसा है मिथ्यादृष्टि जीव। ऐसा क्यों है ? "बाह्यार्थग्रहणस्वभावभरतः" [बाह्यार्थ] जितनी ज्ञेय वस्तु उनका [ग्रहण] जानपना, उसकी आकृतिरूप ज्ञानका परिणाम ऐसा जो है [स्वभाव] वस्तुका सहज जो कि [भरतः] किसीकें कहनेसे वर्जा न जाय (छूटे नहीं) ऐसा अमिटपना, उसके कारण। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानका स्वभाव है कि समस्त ज्ञेयको जानता हुआ ज्ञेयके आकाररूप परिणमना। कोई एकांत-

वादी एतावन्मात्र वस्तुको जानता हुआ ज्ञानको अनेक मानता है। उसके प्रति स्याद्वादी ज्ञानका एकपना साधता है—"अनेकांतविद् ज्ञान एक पश्यति" [अनेकांतविद्] एक सत्ताको द्रव्य-पर्यायरूप मानता है ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव [ज्ञानं एकं पश्यति] ज्ञानवस्तु यद्यपि पर्यायरूपसे अनेक है तथापि द्रव्यरूपसे एकरूप अनुभवता है। कैसा है स्याद्वादी ? "भेदभ्रम ध्वंसयन्" ज्ञान अनेक है ऐसे एकान्त पक्षको नही मानता है। किस कारणसे ? "एकद्रव्यतया" ज्ञान एक वस्तु है ऐसे अभिप्रायके कारण। कैसा है अभिप्राय ? "सदा व्युदितया" सर्वकाल उदयमान है। कैसा है ज्ञान ? "अबाधितानुभवन" अखण्डित है अनुभव जिसमे, ऐसी है ज्ञानवस्तु ॥४-२५०॥

(शार्दूलविक्रीडित)

ज्ञेयाकारकलंकमेचकचिति प्रक्षालनं कल्पय-
न्नेकाकारचिकीर्षयास्फुटमपि ज्ञानं पशुर्नेच्छति ।
वैचित्र्येऽप्यविचित्रतामुपगतं ज्ञानं स्वतःक्षालितं
पर्यायैस्तदनेकतां परिमृशन्पश्यत्यनेकांतवित् ॥५-२५१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि एकातवादी ऐसा है कि वस्तुको द्रव्यरूप मात्र मानता है, पर्यायरूप नही मानता है। इसलिए ज्ञानको निर्विकल्प वस्तुमात्र मानता है, ज्ञेयाकार परिणतिरूप ज्ञानकी पर्याय नही मानता है, इसलिए ज्ञेय वस्तुको जानते हुए ज्ञानका अशुद्धपना मानता है। उसके प्रति स्याद्वादी ज्ञानका द्रव्यरूप एक पर्यायरूप अनेक ऐसा स्वभाव साधता है ऐसा कहते है—"पशु ज्ञान न इच्छति" [पशुः] एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव [ज्ञानं] ज्ञानमात्र जीववस्तुको [न इच्छति] नही साध सकता है—अनुभवगोचर नही कर सकता है। कैसा है ज्ञान ? "स्फुटं अपि" प्रकाशरूपसे प्रगट है यद्यपि। कैसा है एकातवादी ? "प्रक्षालन कल्पयन्" कलक प्रक्षालनेका अभिप्राय करता है। किसमे ? "ज्ञेयाकारकलङ्कमेचकचिति" [ज्ञेय] जितनी ज्ञेयवस्तु है उस [आकार] ज्ञेयको जानते हुए हुआ है उसकी आकृतिरूप ज्ञान ऐसा जो [कलंक] कलक उसके कारण [मेचक] अशुद्ध हुआ है, ऐसी है [चिति] जीववस्तु, उसमे। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञेयको जानता है ज्ञान, उसको एकातवादी मिथ्यादृष्टि जीव स्वभाव नही मानता है, अशुद्धपनेरूपसे मानता है। एकान्तवादीका अभिप्राय ऐसा क्यो है ? "एकाकारचिकीर्षया" क्योकि [एकाकार] समस्त ज्ञेयके

ज्ञानपनेसे रहित होता हुआ निर्विकल्परूप ज्ञानका परिणाम [चिकीर्षया] जब ऐसा होवे तब ज्ञान शुद्ध है ऐसा है अभिप्राय एकांतवादीका। उसके प्रति एक-अनेकरूप ज्ञानका स्वभाव साधता है स्याद्वादी सम्यग्दृष्टि जीव—"अनेकांतविद् ज्ञानं पश्यति" [अनेकांत-विद्] स्याद्वादी जीव [ज्ञानं] ज्ञानमात्र जीववस्तुको [पश्यति] साध सकता है—अनुभव कर सकता है। कैसा है ज्ञान ? "स्वतः क्षालित" सहज ही शुद्धस्वरूप है। स्याद्वादी ज्ञानको कैसा जानकर अनुभवता है ? "तत् वैचित्र्ये अपि अविचित्रतां पर्यायैः अनेकता उपगत परिमृशन्" [तत्] ज्ञानमात्र जीववस्तु [वैचित्र्ये अपि अविचित्रतां] अनेक ज्ञेयाकारकी अपेक्षा पर्यायरूप अनेक है तथापि द्रव्यरूप एक है, [पर्यायैः अनेकतां उपगतं] यद्यपि द्रव्यरूप एक है तथापि अनेक ज्ञेयाकाररूप पर्यायकी अपेक्षा अनेकपनाको प्राप्त होती है ऐसे स्वरूपको अनेकातवादी साध सकता है—अनुभवगोचर कर सकता है। [परिमृशन्] ऐसी द्रव्यरूप पर्यायरूप वस्तुको अनुभवता हुआ स्याद्वादी ऐसा नाम प्राप्त करता है ॥५-२५१॥

(शार्दूलविक्रीडित)

प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिरपरद्रव्यास्तितावञ्चितः
स्वद्रव्यानवलोकनेन परितः शून्यः पशुर्नश्यति ।
स्वद्रव्यास्तितया निरूप्य निपुणं सद्यः समुन्मज्जता
स्याद्वादी तु विशुद्धबोधमहसा पूर्णो भवन् जीवति ।६-२५२।

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि ऐसा है जो पर्यायमात्रको वस्तुरूप मानता है, इसलिए ज्ञेयको जानते हुए ज्ञेयाकार परिणमी है जो ज्ञानकी पर्याय उसका, ज्ञेयके अस्तित्वपनेसे अस्तित्वपना मानता है, ज्ञेयसे भिन्न निर्विकल्प ज्ञानमात्र वस्तुको नही मानता है। इससे ऐसा भाव प्राप्त होता है कि परद्रव्यके अस्तित्वसे ज्ञानका अस्तित्व है, ज्ञानके अस्तित्वसे ज्ञानका अस्तित्व नही है। उसके प्रति उत्तर इस प्रकार कि ज्ञानवस्तुका अपने अस्तित्वसे अस्तित्व है। उसके भेद चार हैं—ज्ञानमात्र जीववस्तु स्वद्रव्यपने अस्ति, स्वक्षेत्रपने अस्ति, स्वकालपने अस्ति, स्वभावपने अस्ति। परद्रव्यपने नास्ति, परक्षेत्रपने नास्ति, परकालपने नास्ति, परभाव-पने नास्ति। उनका लक्षण—स्वद्रव्य—निर्विकल्प मात्र वस्तु, स्वक्षेत्र—आधारमात्र वस्तु-का प्रदेश, स्वकाल—वस्तुमात्रकी मूल अवस्था, स्वभाव—वस्तुकी मूलकी सहज शक्ति।

पर द्रव्य–सविकल्प भेद-कल्पना, परक्षेत्र–जो वस्तुका आधारभूत प्रदेश निर्विकल्प वस्तुमात्ररूपसे कहा था वही प्रदेश सविकल्प भेद कल्पनासे परप्रदेश बुद्धिगोचररूपसे कहा जाता है। परकाल–द्रव्यकी मूलकी निर्विकल्प अवस्था, वही अवस्थान्तर भेदरूप कल्पनासे परकाल कहलाता है। परभाव–द्रव्यकी सहज शक्तिके पर्यायरूप अनेक अंश द्वारा भेदकल्पना, उसे परभाव कहा जाता है। "पशु नश्यति" एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव जीवस्वरूपको नही साध सकता है। कैसा है? "परित शून्य" सर्व प्रकार तत्त्वज्ञानसे शून्य है। किस कारण से? "स्वद्रव्यानवलोकनेन" [स्वद्रव्य] निर्विकल्प वस्तुमात्रके [अनवलोकनेन] नही प्रतीति करनेके कारण। और कैसा है? "प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिरपरद्रव्यास्तितावञ्चितः" [प्रत्यक्ष] असहायरूपसे [आलिखित] लिखे हुएके समान [स्फुट] जैसेका तैसा [स्थिर] अमिट जो [परद्रव्य] ज्ञेयाकार ज्ञानका परिणाम उससे माना जो [अस्तिता] अस्तित्व उससे [वञ्चितः] ठगा गया है ऐसा है एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव। "तु स्याद्वादी पूर्णो भवन् जीवति" [तु] एकातवादी कहता है उस प्रकार नही है [स्याद्वादी] सम्यग्दृष्टि जीव [पूर्णो भवन्] पूर्ण होता हुआ [जीवति] ज्ञानमात्र जीववस्तु है ऐसा साध सकता है–अनुभव कर सकता है। किसके द्वारा? "स्वद्रव्यास्तितया" [स्वद्रव्य] निर्विकल्प ज्ञानशक्तिमात्र वस्तु उसके [अस्तितया] अस्तित्वपनेके द्वारा। क्या करके? "निपुण निरूप्य" ज्ञानमात्र जीववस्तुका अपने अस्तित्वसे किया है अनुभव जिसने ऐसा होकर। किसके द्वारा? "विशुद्धबोधमहसा" [विशुद्ध] निर्मल जो [बोध] भेदज्ञान उसके [महसा] प्रतापके द्वारा। कैसा है? "सद्य समुन्मज्जता" उसी कालमें प्रगट होता है ॥६-२५२॥

(शार्दूलविक्रीडित)

सर्वद्रव्यमयं प्रपद्य पुरुषं दुर्वासनावासितः
स्वद्रव्यभ्रमतः पशुः किल परद्रव्येषु विश्राम्यति।
स्याद्वादी तु समस्तवस्तुषु परद्रव्यात्मना नास्तितां
जानन्निर्मलशुद्धबोधमहिमा स्वद्रव्यमेवाश्रयेत् ॥७-२५३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा है जो वस्तुको द्रव्यरूप मानता है, पर्यायरूप नही मानता है, इसलिए समस्त ज्ञेय वस्तु ज्ञानमे गर्भित मानता है। ऐसा कहता है—उष्णको जानता हुआ ज्ञान उष्ण है, शीतलको जानता हुआ ज्ञान शीतल है। उसके प्रति उत्तर इस प्रकार है कि ज्ञान ज्ञेयका

ज्ञायकमात्र तो है, परन्तु ज्ञेयका गुण ज्ञेयमें है, ज्ञानमें ज्ञेयका गुण नहीं है। वही कहते हैं–"किल पशुः विश्राम्यति" [किल] अवश्य कर [पशुः] एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव [विश्राम्यति] वस्तु स्वरूपको साधनेके लिए असमर्थ होता हुआ अत्यन्त खेदखिन्न होता है। किस कारणसे ? "परद्रव्येषु स्वद्रव्यभ्रमतः" [परद्रव्येषु] ज्ञेयको जानते हुए ज्ञेयकी आकृतिरूप परिणमता है ज्ञान, ऐसी जो ज्ञानकी पर्याय, उसमे [स्वद्रव्य] निर्विकल्प सत्तामात्र ज्ञानवस्तु होनेकी [भ्रमतः] होती है भ्रांति। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार उष्णको जानते हुए उष्णकी आकृतिरूप ज्ञान परिणमता है ऐसा देख कर ज्ञानका उष्णस्वभाव मानता है मिथ्यादृष्टि जीव। कैसा होता हुआ ? "दुर्वासनावासितः" [दुर्वासना] अनादिका मिथ्यात्व संस्कार उससे [वासितः] हुआ है स्वभावसे भ्रष्ट ऐसा। ऐसा क्यों है ? "सर्वद्रव्यमयं पुरुषं प्रपद्य" [सर्वद्रव्य] जितने समस्त द्रव्य हैं उनका जो द्रव्यपना [मयं] उस मय जीव है अर्थात् उतने समस्त स्वभाव जीवमे हैं ऐसा [पुरुषं] जीव वस्तुको [प्रपद्य] प्रतीतिरूप मान कर। ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव मानता है। "तु स्याद्वादी स्वद्रव्यं आश्रयेत् एव" [तु] एकान्तवादी मानता है वैसा नही है, स्याद्वादी मानता है वैसा है। यथा–[स्याद्वादी] अनेकान्तवादी [स्वद्रव्यं आश्रयेत्] ज्ञानमात्र जीववस्तु ऐसा साध सकता है–अनुभव कर सकता है। सम्यग्दृष्टि जीव [एव] ऐसा ही है। कैसा है स्याद्वादी ? "समस्तवस्तुषु परद्रव्यात्मना नास्तितां जानन्" [समस्तवस्तुषु] ज्ञानमें प्रतिबिम्बित हुआ है समस्त ज्ञेयका स्वरूप, उसमें [परद्रव्यात्मना] अनुभवता है ज्ञानवस्तुसे भिन्नपना, उसके कारण [नास्तितां जानन्] नास्तिपना अनुभवता हुआ। भावार्थ इस प्रकार है कि समस्त ज्ञेय ज्ञानमें उद्दीपित होता है परन्तु ज्ञेयरूप है, ज्ञानरूप नहीं हुआ है। कैसा है स्याद्वादी ? "निर्मलशुद्धबोधमहिमा" [निर्मल] मिथ्यादोषसे रहित तथा [शुद्ध] रागादि अशुद्ध परिणतिसे रहित ऐसा जो [बोध] अनुभवज्ञान उसमें है [महिमा] प्रताप जिसका ऐसा है ॥७-२५३॥

(शार्दूलविक्रीडित)

भिन्नक्षेत्रनिषण्णबोध्यनियतव्यापारनिष्ठः सदा
सीदत्येव बहिः पतंतमभितः पश्यन्पुमांसं पशुः।
स्वक्षेत्रास्तितया निरुद्धरभसः स्याद्वादवेदी पुन-
स्तिष्ठत्यात्मनिखातबोध्यनियतव्यापारशक्तिर्भवन् ।८-२५४।

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा है कि जो वस्तुको पर्यायरूप मानता है, द्रव्यरूप नही मानता है, इसलिए जितना समस्त वस्तुका है आधारभूत प्रदेशपुञ्ज, उसको जानता है ज्ञान। जानता हुआ उसकी आकृतिरूप परिणमता है ज्ञान। इसका नाम परक्षेत्र है। उस क्षेत्रको ज्ञानका क्षेत्र मानता है। एकातवादी मिथ्यादृष्टि जीव उस क्षेत्रसे सर्वथा भिन्न है चैतन्य प्रदेशमात्र ज्ञानका क्षेत्र, उसे नही मानता है। उसके प्रति समाधान ऐसा कि ज्ञान वस्तु परक्षेत्रको जानती है परन्तु अपने क्षेत्ररूप है। परका क्षेत्र ज्ञानका क्षेत्र नही है। वही कहते है—"पशु सीदति एव" [**पशुः**] एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव [**सीदति**] ओलोके समान गलता है। ज्ञानमात्र जीववस्तु है ऐसा नही साध सकता है। [**एव**] निश्चयसे ऐसा ही है। कैसा है एकान्तवादी ? "भिन्नक्षेत्रनिषण्णबोध्यनियतव्यापारनिष्ठ" [**भिन्नक्षेत्र**] अपने चैतन्य प्रदेशसे अन्य है जो समस्त द्रव्योका प्रदेशपुञ्ज उससे [**निषण्ण**] उसकी आकृतिरूप परिणमा है ऐसा जो [**बोध्यनियतव्यापार**] ज्ञेय-ज्ञायकका अवश्य सम्बन्ध, उसमे [**निष्ठः**] निष्ठ है अर्थात् एतावन्मात्रको जानता है ज्ञानका क्षेत्र, ऐसा है एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव। "सदा" अनादि कालसे ऐसा ही है। और कैसा है मिथ्यादृष्टि जीव ? "अभित बहि पतन्त पुमास पश्यन्" [**अभितः**] मूलसे लेकर [**बहिः पतन्तं**] परक्षेत्ररूप परिणमा है ऐसे [**पुमांसं**] जीववस्तुको [**पश्यन्**] मानता है—अनुभवता है, ऐसा है मिथ्यादृष्टि जीव। "पुन स्याद्वादवेदी तिष्ठति" [**पुनः**] एकान्तवादी जैसा कहता है वैसा नही है किन्तु [**स्याद्वादवेदी**] अनेकान्तवादी [**तिष्ठति**] जैसा मानता है वैसी वस्तु है। भावार्थ इस प्रकार है कि वह वस्तुको साध सकता है। कैसा है स्याद्वादी ? "स्वक्षेत्रास्तितया निरुद्धरभस" [**स्वक्षेत्र**] समस्त परद्रव्यसे भिन्न अपने स्वरूप चैतन्यप्रदेश उसकी [**अस्तितया**] सत्तारूपसे [**निरुद्धरभसः**] परिणमा है ज्ञानका सर्वस्व जिसका, ऐसा है स्याद्वादी। और कैसा है ? "आत्मनिखातबोध्यनियत व्यापारशक्ति भवन्" [**आत्म**] ज्ञानवस्तुमे [**निखात**] ज्ञेय प्रतिबिम्बरूप है जो ऐसा [**बोध्यनियतव्यापार**] ज्ञेय-ज्ञायकरूप अवश्य सम्बन्ध, ऐसा [**शक्तिः**] जाना है ज्ञान-वस्तुका सहज जिसने ऐसा [**भवन्**] होता हुआ। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानमात्र जीव वस्तु परक्षेत्रको जानता है ऐसा सहज है। परन्तु अपने प्रदेशोमे है पराये प्रदेशों मे नही है ऐसा मानता है स्याद्वादी जीव, इसलिए वस्तुको साध सकता है—अनुभव कर सकता है ॥८-२५४॥

(शार्दूलविक्रीडित)

स्वक्षेत्रस्थितये पृथग्विधपरक्षेत्रस्थितार्थोज्झनात्
तुच्छीभूय पशुः प्रणश्यति चिदाकारान् सहार्थैर्वमन् ।
स्याद्वादी तु वसन् स्वधामनि परक्षेत्रे विदन्नास्तितां
त्यक्तार्थोऽपि न तुच्छतामनुभवत्याकारकर्षी परान् ॥९-२५५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी जीव ऐसा है कि वस्तुको द्रव्यरूप मानता है, पर्यायरूप नही मानता है, इसलिए ज्ञेय वस्तुके प्रदेशोको जानता हुआ ज्ञानको अशुद्धपना मानता है। ज्ञानका ऐसा ही स्वभाव है–वह ज्ञानकी पर्याय है ऐसा नही मानता है। उसके प्रति उत्तर ऐसा कि ज्ञान वस्तु अपने प्रदेशोमें है, ज्ञेयके प्रदेशोंको जानती है ऐसा स्वभाव है, अशुद्धपना नही है ऐसा मानता है स्याद्वादी। यही कहते है—"पशु प्रणश्यति" [**पशुः**] एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव [**प्रणश्यति**] वस्तुमात्र साधनेसे भ्रष्ट है–अनुभव करनेसे भ्रष्ट है। कैसा होकर भ्रष्ट है ? "तुच्छीभूय" तत्त्वज्ञानसे शून्य होकर। और कैसा है ? "अर्थैः सह चिदाकारान् वमन्" [**अर्थैः सह**] ज्ञानगोचर है जो ज्ञेयके प्रदेश उनके साथ [**चिदाकारान्**] ज्ञानकी शक्तिको अथवा ज्ञानके प्रदेशोको [**वमन्**] मूलसे वमन किया है अर्थात् उनका नास्तिपना जाना है जिसने ऐसा है। और कैसा है ? "पृथग्विधिपरक्षेत्रस्थितार्थोज्झनात्" [**पृथग्विधि**] पर्यायरूप जो [**परक्षेत्र**] ज्ञेय वस्तुके प्रदेशोको जानते हुए होती है उनकी आकृतिरूप ज्ञानकी परिणति उसरूप [**स्थित**] परिणमती जो [**अर्थ**] ज्ञानवस्तु उसको [**उज्झनात्**] ऐसा ज्ञान अशुद्ध है ऐसी बुद्धि कर त्याग करता हुआ, ऐसा है एकान्तवादी। किसके निमित्त ज्ञेय परिणति ज्ञानको हेय करती है ? "स्वक्षेत्रस्थितये" [**स्वक्षेत्र**] ज्ञानके चैतन्य प्रदेशकी [**स्थितये**] स्थिरताके निमित्त। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानवस्तु ज्ञेयके प्रदेशोंके जानपनासे रहित होवे तो शुद्ध होवे ऐसा मानता है एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव। उसके प्रति स्याद्वादी कहता है—"तु स्याद्वादी तुच्छता न अनुभवति" [**तु**] एकान्तवादी मानता है वैसा नहीं है, स्याद्वादी मानता है वैसा है। [**स्याद्वादी**] अनेकान्तदृष्टि जीव [**तुच्छतां**] ज्ञानवस्तु ज्ञेयके क्षेत्रको जानती है, अपने प्रदेशोसे सर्वथा शून्य है ऐसा [**न अनुभवति**] नही मानता है। ज्ञानवस्तु ज्ञेयके क्षेत्रको जानती है, ज्ञेय क्षेत्ररूप नही है ऐसा मानता है। कैसा है स्याद्वादी ? "त्यक्तार्थ अपि" ज्ञेय क्षेत्रकी आकृतिरूप परिणमता है ज्ञान ऐसा

मानता है तो भी ज्ञान अपने क्षेत्ररूप है ऐसा मानता है। और कैसा है स्याद्वादी ? "स्वधामनि वसन्" ज्ञान वस्तु अपने प्रदेशोमे है ऐसा अनुभवता है। और कैसा है ? "परक्षेत्रे नास्तितां विदन्" [परक्षेत्रे] ज्ञेय वस्तुकी आकृतिरूप परिणमा है ज्ञान उसमे [नास्तितां विदन्] नास्तिपना मानता है अर्थात् जानता है तो जानो तथापि एतावन्मात्र ज्ञानका क्षेत्र नही है ऐसा मानता है स्याद्वादी। और कैसा है ? "परात् आकारकर्षी" परक्षेत्रकी आकृतिरूप परिणमी है ज्ञानकी पर्याय, उससे भिन्न रूपसे ज्ञानवस्तुके प्रदेशोका अनुभव करनेमे समर्थ है, इसलिए स्याद्वाद वस्तुस्वरूपका साधक, एकान्तपना वस्तुस्वरूपका घातक। इस कारण स्याद्वाद उपादेय है ॥९-२५५॥

(शार्दूलविक्रीडित)

पूर्वालम्बितबोध्यनाशसमये ज्ञानस्य नाशं विदन्
सीदत्येव न किञ्चनापि कलयन्नत्यन्ततुच्छः पशुः।
अस्तित्वं निजकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदी पुनः
पूर्णस्तिष्ठति बाह्यवस्तुषु मुहुर्भूत्वा विनश्यत्स्वपि ॥१०-२५६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा है जो वस्तुको पर्यायमात्र मानता है, द्रव्यरूप नही मानता है। तिस कारण ज्ञेय वस्तुके अतीत अनागत वर्तमान कालसम्बन्धी अनेक अवस्थाभेद हैं, उनको जानते हुए ज्ञानके पर्यायरूप अनेक अवस्था भेद होते है। उनमे ज्ञेयसम्बन्धी पहला अवस्थाभेद विनशता है। उस अवस्थाभेदके विनाश होनेपर उसकी आकृतिरूप परिणमा ज्ञानपर्यायका अवस्थाभेद भी विनशता है। उसके—अवस्थाभेदके विनाश होनेपर एकान्तवादी मूलसे ज्ञान वस्तुका विनाश मानता है। उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि ज्ञानवस्तु अवस्थाभेदद्वारा विनशती है, द्रव्यरूपसे विचारनेपर अपना जानपनारूप अवस्थाद्वारा शाश्वत है, न उपजती है न विनशती है ऐसा समाधान स्याद्वादी करता है। यही कहते हैं—'पशु सीदति एव" [पशुः] एकान्तवादी [सीदति] वस्तुके स्वरूपको साधनेके लिए भ्रष्ट है। [एव] अवश्य ऐसा है। कैसा है एकान्तवादी ? "अत्यन्ततुच्छ" वस्तुके अस्तित्वके ज्ञानसे अति ही शून्य है। और कैसा है ? "न किञ्चन अपि कलयन्" [न किञ्चन] ज्ञेय अवस्थाका जानपनामात्र ज्ञान है, उससे भिन्न कुछ वस्तुरूप ज्ञानवस्तु नही है [अपि] अंशमात्र भी नही है। [कलयन्]

ऐसी अनुभवरूप प्रतीति करता है। और कैसा है ? "पूर्वालम्बितबोध्यनाशसमये ज्ञानस्य नाशं विदन्" [**पूर्व**] किसी पहले अवसरमे [**आलम्बित**] जानकर उसकी आकृतिरूप हुई जो [**बोध्य**] ज्ञेयाकार ज्ञानपर्याय उसके [**नाशसमये**] विनाशसम्बन्धी किसी अन्य अवसरमे [**ज्ञानस्य**] ज्ञानमात्र जीववस्तुका [**नाशं विदन्**] नाश मानता है। ऐसा है एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव। उसको स्याद्वादी सम्बोधन करता है—"पुनः स्याद्वादवेदी पूर्णः तिष्ठति" [**पुनः**] एकान्तदृष्टि जिस प्रकार कहता है उस प्रकार नही है, स्याद्वादी जिस प्रकार मानता है उस प्रकार है—[**स्याद्वादवेदी**] अनेकान्त अनुभवशील जीव [**पूर्ण तिष्ठति**] त्रिकालगोचर ज्ञानमात्र जीववस्तु ऐसा अनुभव करता हुआ उस पर दृढ है। कैसा दृढ है ? "बाह्यवस्तुषु मुहुः भूत्वा विनश्यत्सु अपि" [**बाह्यवस्तुषु**] समस्त ज्ञेय अथवा ज्ञेयाकार परिणमे ज्ञानपर्यायके अनेक भेद सो वे [**मुहुः भूत्वा**] अनेक पर्यायरूप होते हैं [**विनश्यत्सु अपि**] अनेक बार विनाशको प्राप्त होते हैं तो भी दृढ रहता है। और कैसा है ? "अस्य निजकालतः अस्तित्वं कलयन्" [**अस्य**] ज्ञानमात्र जीववस्तुका [**निजकालतः**] त्रिकाल शाश्वत ज्ञानमात्र अवस्थासे [**अस्तित्वं कलयन्**] वस्तुपना अथवा अस्तिपना अनुभवता है स्याद्वादी जीव ॥१०-२५६॥

(शार्दूलविक्रीडित)

अर्थालम्बनकाल एव कलयन् ज्ञानस्य सत्त्वं बहि-
र्ज्ञेयालम्बनलालसेन मनसा भ्राम्यन् पशुर्नश्यति ।
नास्तित्वं परकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदी पुन-
स्तिष्ठत्यात्मनिखातनित्यसहजज्ञानैकपुंजीभवन् ॥११-२५७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी ऐसा है जो वस्तुको द्रव्यमात्र मानता है, पर्यायरूप नही मानता है, इसलिए ज्ञेयकी अनेक अवस्थाओको जानता है ज्ञान। उनको जानता हुआ उन आकृतिरूप परिणमता है ज्ञान। ये समस्त हैं ज्ञानकी पर्याय, उन पर्यायोको ज्ञानका अस्तित्व मानता है मिथ्यादृष्टि जीव। उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि ज्ञेयकी आकृतिरूप परिणमती हुई जितनी ज्ञानकी पर्याय है उनसे ज्ञानका अस्तित्व नही है ऐसा कहते है—"पशुः नश्यति" [**पशुः**] एकान्तवादी [**नश्यति**] वस्तुस्वरूपको साधनेसे भ्रष्ट है। कैसा है एकान्तवादी ? "ज्ञेयालम्बनलालसेन मनसा बहिः भ्राम्यन्" [**ज्ञेय**] समस्त द्रव्यरूप

[आलम्बन] ज्ञेयके अवसर ज्ञानकी सत्ता ऐसा निश्चयरूप [लालसेन] है अभिप्राय जिसका ऐसे [मनसा] मनसे [बहिः भ्राम्यन्] स्वरूपसे बाहर उत्पन्न हुआ है भ्रम जिसको ऐसा है। और कैसा है? "अर्थालम्बनकाले ज्ञानस्य सत्त्व कलयन् एव" [अर्थ] जीवादि समस्त ज्ञेय वस्तुको [आलम्बन] जानते [काले] समय ही [ज्ञानस्य] ज्ञान-मात्र वस्तुकी [सत्त्वं] सत्ता है [कलयन्] ऐसा अनुभव करता है। [एव] ऐसा ही है। उसके प्रति स्याद्वादी वस्तुकी सिद्धि करता है—"पुन: स्याद्वादवेदी तिष्ठति" [पुनः] एकान्तवादी जैसा मानता है वैसा नही है, जैसा स्याद्वादी मानता है वैसा है। [स्याद्वादवेदी] अनेकान्तवादी [तिष्ठति] वस्तुस्वरूप साधनेके लिए समर्थ है। कैसा है स्याद्वादी? अस्य परकालतः नास्तित्वं कलयन्" [अस्य] ज्ञानमात्र जीव वस्तुका [परकालतः] ज्ञेयावस्थाके जानपने से [नास्तित्वं] नास्तिपना है ऐसी [कलयन्] प्रतीति करता है। स्याद्वादी। और कैसा है? "आत्मनिखातनित्यसहजज्ञानैकपुञ्जीभवन्" [आत्म] ज्ञानमात्र जीववस्तुमे [निखात] अनादिसे एक वस्तुरूप [नित्य] अविनश्वर [सहज] उपाय विना द्रव्यके स्वभावरूप ऐसी जो [ज्ञान] जानपनारूप शक्ति तद्रूप [एकपुञ्जीभवन्] मैं जीव वस्तु हूँ, अविनश्वर ज्ञानस्वरूप हू ऐसा अनुभव करता हुआ। ऐसा है स्याद्वादी ॥११-२५७॥

(शार्दूलविक्रीडित)

विश्रान्तः परभावभावकलनान्नित्यं बहिर्वस्तुषु
नश्यत्येव पशुः स्वभावमहिमन्येकान्तनिश्चेतनः।
सर्वस्मान्नियतस्वभावभवनज्ञानाद्विभक्तो भवन्
स्याद्वादी तु न नाश मेति सहजस्पष्टीकृतप्रत्ययः ॥१२-२५८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई एकान्तवादी मिथ्या-दृष्टि जीव ऐसा है कि वस्तुको पर्यायमात्र मानता है, द्रव्यरूप नही मानता है, इसलिए जितनी समस्त ज्ञेय वस्तुओके जितने हैं शक्तिरूप स्वभाव उनको जानता है ज्ञान। जानता हुआ उनकी आकृतिरूप परिणमता है। इसलिए ज्ञेयकी शक्तिकी आकृतिरूप हैं ज्ञानकी पर्याय, उनसे ज्ञानवस्तुकी सत्ताको मानता है। उनसे भिन्न है अपनी शक्तिकी सत्तामात्र उसे नही मानता है। ऐसा है एकान्तवादी। उसके प्रति स्याद्वादी समाधान करता है कि ज्ञान मात्र जीववस्तु समस्त ज्ञेयशक्तिको जानती है ऐसा सहज है। परन्तु

अपनी ज्ञानशक्तिसे अस्तिरूप है ऐसा कहते हैं—"पशु नश्यति एव" [पशुः] एकान्तवादी [नश्यति] वस्तुकी सत्ताको साधनेसे भ्रष्ट है। [एव] निश्चयसे। कैसा है एकान्तवादी ? "बहि. वस्तुषु नित्यं विश्रान्त." [बहिः वस्तुषु] समस्त ज्ञेय वस्तुकी अनेक शक्तिकी आकृतिरूप परिणमी है ज्ञानकी पर्याय, उसमे [नित्यं विश्रान्तः] सदा विश्रान्त है अर्थात् पर्यायमात्रको जानता है ज्ञानवस्तु, ऐसा है निश्चय जिसका ऐसा है। किस कारणसे ऐसा है ? "परभावभावकलनात्" [परभाव] ज्ञेयकी शक्तिकी आकृतिरूप है ज्ञानकी पर्याय उसमे [भावकलनात्] अवधार किया है ज्ञानवस्तुका अस्तिपना ऐसे झूठे अभिप्रायके कारण। और कैसा है एकांतवादी ? "स्वभावमहिमनि एकान्तनिश्चेतन." [स्वभाव] जीवकी ज्ञानमात्र निजशक्तिके [महिमनि] अनादिनिधन शाश्वत प्रतापमें [एकांतनिश्चेतनः] एकान्तनिश्चेतान है अर्थात् उससे सर्वथा शून्य है। भावार्थ इस प्रकार है कि स्वरूपसत्ताको नही मानता है ऐसा है एकान्तावादी, उसके प्रति स्याद्वादी समाधान करता है—"तु स्याद्वादी नाशं न एति" [तु] एकान्तावादी मानता है उस प्रकार नही है, स्याद्वादी मानता है उस प्रकार है। [स्याद्वादी] अनेकान्तावादी [नाशं] विनाशको [न एति] नही प्राप्त होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानमात्र वस्तुकी सत्ताको साध सकता है। कैसा है अनेकान्तवादी जीव ? "सहजस्पष्टीकृतप्रत्यय." [सहज] स्वभाव शक्तिमात्र ऐसा जो अस्तित्व उस सम्बन्धी [स्पष्टीकृत] दृढ़ किया है [प्रत्ययः] अनुभव जिसने ऐसा है। और कैसा है ? "सर्वस्मात् नियतस्वभावभवनज्ञानात् विभक्त. भवन्" [सर्वस्मात्] जितने हैं [नियतस्वभाव] अपनी अपनी शक्ति विराजमान ऐसे जो ज्ञेयरूप जीवादि पदार्थ उनकी [भवन] सत्ताकी आकृतिरूप परिणमी है ऐसी [ज्ञानात्] जीवके ज्ञानगुणकी पर्याय, उनसे [विभक्तः भवन्] भिन्न है ज्ञानमात्रसत्ता ऐसा अनुभव करता हुआ ॥१२-२५८॥

(शार्दूलविक्रीडित)

अध्यास्यात्मनि सर्वभावभवनं शुद्धस्वभावच्युतः
सर्वत्राप्यनिवारितो गतभयः स्वैरं पशुः क्रीडति ।
स्याद्वादी तु विशुद्ध एव लसति स्वस्य स्वभावं भरा-
दारूढः परभावभावविरहव्यालोकनिष्कंपितः ॥१३-२५९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा है जो वस्तुको द्रव्यमात्र मानता है, पर्यायरूप नही मानता है। इसलिए जितनी

हैं ज्ञेय वस्तु, उनकी अनन्त है शक्ति, उनको जानता है ज्ञान, जानता हुआ ज्ञेयकी शक्ति-की आकृतिरूप परिणमता है, ऐसा देखकर जितनी ज्ञेयकी शक्ति उतनी ज्ञानवस्तु ऐसा मानता है मिथ्यादृष्टि एकातवादी। उसके प्रति ऐसा समाधान करता है स्याद्वादी कि ज्ञानमात्र जीववस्तुका ऐसा स्वभाव है कि समस्त ज्ञेयकी शक्तिको जाने, जानता हुआ उसकी आकृतिरूप परिणमता है। परन्तु ज्ञेयकी शक्ति ज्ञेयमे है, ज्ञानवस्तुमे नही है। ज्ञानकी जाननेरूप पर्याय है, इसलिए ज्ञानवस्तुकी सत्ता भिन्न है ऐसा कहते है—"पशु स्वैर क्रीडति" [पशुः] मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी [स्वैर क्रीडति] हेय उपादेय ज्ञानसे रहित होकर स्वेच्छाचाररूप प्रवर्तता है। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञेयकी शक्तिको ज्ञानसे भिन्न नही मानता है। जितनी ज्ञेयकी शक्ति है उसे ज्ञानमे मानकर नाना शक्ति-रूप ज्ञान है, ज्ञेय है ही नही ऐसी बुद्धिरूप प्रवर्तता है। कैसा है एकान्तवादी ? "शुद्ध-स्वभावच्युत" [शुद्धस्वभाव] ज्ञानमात्र जीववस्तुसे [च्युतः] च्युत है अर्थात् उसको विपरीतरूप अनुभवता है। विपरीतपना क्यो है ? "सर्वभावभवन आत्मनि अध्यास्य" [सर्व] जितनी जीवादि पदार्थरूप ज्ञेय वस्तु उनके [भाव] शक्तिरूप गुण पर्याय अश-भेद उनकी [भवनं] सत्ताको [आत्मनि] ज्ञानमात्र जीव वस्तुमे [अध्यास्य] प्रतीति कर। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानगोचर है समस्त द्रव्यकी शक्ति। उनकी आकृतिरूप परिणमा है ज्ञान, इसलिए सर्व शक्ति ज्ञानकी है ऐसा मानता है। ज्ञेयकी तथा ज्ञानकी भिन्न सत्ता नही मानता है। और कैसा है ? "सर्वत्र अपि अनिवारित गतभय" [सर्वत्र] स्पर्श रस गन्ध वर्ण शब्द ऐसा इन्द्रियविषय तथा मन वचन काय तथा नाना प्रकार ज्ञेयकी शक्ति, इनमे [अपि] अवश्य कर [अनिवारितः] मैं शरीर, मैं मन, मैं वचन, मैं काय, मैं स्पर्श रस गन्ध वर्ण शब्द इत्यादि परभावको अपना जानकर प्रवर्तता है, [गतभयः] मिथ्यादृष्टिके कोई भाव परभाव नही है जिससे डर होवे; ऐसा है एकान्त-वादी। उसके प्रति समाधान करता है स्याद्वादी—"तु स्याद्वादी विशुद्ध एव लसति" [तु] जिस प्रकार मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी मानता है उस प्रकार नही है, जिस प्रकार स्याद्वादी मानता है उस प्रकार है—[स्याद्वादी] अनेकान्तवादी जीव [विशुद्ध एव लसति] मिथ्यात्वसे रहित होकर प्रवर्तता है। कैसा है स्याद्वादी ? "स्वस्य स्वभाव भरात् आरूढ" [स्वस्य स्वभावं] ज्ञानवस्तुकी जानपनामात्र शक्ति उसकी [भरात् आरूढः] अति ही प्रगाढरूपसे प्रतीति करता है। और कैसा है ? "परभावभावविरहव्यालोक-निःकम्पित" [परभाव] समस्त ज्ञेयकी अनेक शक्तिकी आकृतिरूप परिणमा है ज्ञान,

इस रूप [भाव] मानता है जो ज्ञान वस्तुका अस्तित्व, तद्रूप [विरह] विपरीत बुद्धिके त्यागसे हुई है [व्यालोक] सांची दृष्टि, उससे हुआ है [निःकम्पितः] साक्षात् अमिट अनुभव जिसको ऐसा है स्याद्वादी ॥१३-२५९॥

(शार्दूलविक्रीडित)

प्रादुर्भावविराममुद्रितवहज्ज्ञानांशनानात्मना
निर्ज्ञानात्क्षणभंगसंगपतितः प्रायः पशुर्नश्यति ।
स्याद्वादी तु चिदात्मना परिमृशंश्चिद्वस्तु नित्योदितं
टंकोत्कीर्णघनस्वभावमहिमज्ञानं भवन् जीवति ॥१४-२६०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई एकांतवादी मिथ्यादृष्टि ऐसा है जो वस्तुको पर्यायमात्र मानता है, द्रव्यरूप नहीं मानता है, इसलिए अखण्ड धारा-प्रवाहरूप परिणमता है ज्ञान, उसका होता है प्रति समय उत्पाद-व्यय । इसलिए पर्यायका विनाश होने पर जीवद्रव्यका विनाश मानता है । उसके प्रति स्याद्वादी ऐसा समाधान करता है कि पर्यायरूपसे देखनेपर जीव वस्तु उपजती है विनष्ट होती है, द्रव्यरूपसे देखनेपर जीव सदा शाश्वत है । ऐसा कहते हैं—"पशुः नश्यति" [पशुः] एकांतवादी जीव [नश्यति] शुद्ध जीववस्तुको साधनेमें भ्रष्ट है । कैसा है एकान्तवादी "प्रायः क्षण-भंगसंगपतितः" [प्रायः] एकांतरूपसे [क्षणभंग] प्रति समय होनेवाले पर्यायमें विनाश-से [संगपतितः] उस पर्यायके साथ-साथ वस्तुका विनाश मानता है । किस कारणसे ? "प्रादुर्भावविराममुद्रितवहज्ज्ञानांशनानात्मना निर्ज्ञानात्" [प्रादुर्भाव] उत्पाद [विराम] विनाशसे [मुद्रित] संयुक्त [वहत्] प्रवाहरूप जो [ज्ञानांश] ज्ञान गुणके अविभाग-प्रतिच्छेद उनके कारण हुए [नानात्मना] अनेक अवस्थाभेदके [निर्ज्ञानात्] ज्ञानपनेके कारण । ऐसा है एकान्तवादी, उसके प्रति स्याद्वादी प्रतिबोधता है—"तु स्याद्वादी जीवति" [तु] जिस प्रकार एकांतवादी कहता है उस प्रकार एकान्तपना नहीं है । [स्याद्वादी] अनेकांतवादी [जीवति] वस्तुको साधनेके लिए समर्थ है । कैसा है स्याद्वादी ? "चिद्वस्तु नित्योदितं परिमृशन्" [चिद्वस्तु] ज्ञानमात्र जीववस्तुको [नित्योदितं] सर्व काल शाश्वत ऐसा [परिमृशन्] प्रत्यक्षरूपसे आस्वादरूप अनुभवता हुआ । किस रूपसे ? "चिदात्मना" ज्ञानस्वरूप है जीववस्तु उसरूपसे । और कैसा है स्याद्वादी ? "टङ्कोत्कीर्ण-घनस्वभावमहिमज्ञानं भवन्" [टङ्कोत्कीर्ण] सर्व काल एकरूप ऐसे [घनस्वभाव] अमिट

लक्षणसे है [महिमा] प्रसिद्धि जिसकी ऐसी [ज्ञान] जीव वस्तुको [भवन्] आप अनुभवता हुआ ॥१४-२६०॥

(शार्दूलविक्रीडित)

टंकोत्कीर्णविशुद्धबोधविसराकारात्मतत्त्वाशया
वांछत्युच्छलदच्छचित्परिणतेर्भिन्नं पशुः किञ्चन ।
ज्ञानं नित्यमनित्यतापरिगमेऽप्यासादयत्युज्ज्वलं
स्याद्वादी तदनित्यतां परिमृशंश्चिद्वस्तुवृत्तिक्रमात् ।१५-२६१।

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि एकातवादी ऐसा है जो वस्तुको द्रव्यरूप मानता है, पर्यायरूप नही मानता है, इस कारण समस्त ज्ञेयको जानता हुआ ज्ञेयाकार परिणमता है ज्ञान उसको अशुद्धपना मानता है एकातवादी, ज्ञानको पर्यायपना नही मानता है । उसका समाधान स्याद्वादी करता है कि ज्ञानवस्तुको द्रव्यरूपसे देखनेपर नित्य है, पर्यायरूपसे देखने पर अनित्य है, इसलिए समस्त ज्ञेयको जानता है ज्ञान, जानता हुआ ज्ञेयकी आकृतिरूप ज्ञानकी पर्याय परिणमती है ऐसा ज्ञानका स्वभाव है, अशुद्धपना नही है । ऐसा कहते है—"पशु. उच्छलदच्छचित्परिणते भिन्नं किञ्चन वाञ्छति" [पशुः] एकान्तवादी [उच्छलत्] ज्ञेयका ज्ञाता होकर पर्यायरूप परिणमता है उत्पादरूप तथा व्ययरूप ऐसी [अच्छ] अशुद्धपनासे रहित ऐसी जो [चित्-परिणतेः] ज्ञान गुणकी पर्याय उससे [भिन्नं] ज्ञेयको जाननेरूप परिणतिके विना वस्तु-मात्र कूटस्थ होकर रहे [किञ्चन वाञ्छति] ऐसा कुछ विपरीतपना मानता है एकान्त-वादी । ज्ञानको ऐसा करना चाहता है—"टङ्कोत्कीर्णविशुद्धवोधविसराकारात्मतत्त्वाशया" [टङ्कोत्कीर्ण] सर्व काल एक समान, [विशुद्ध] समस्त विकल्पसे रहित [वोध] ज्ञान-वस्तुके [विसराकार] प्रवाहरूप [आत्मतत्त्व] जीववस्तु हो [आशया] ऐसा करनेकी अभिलाषा करता है । उसका समाधान करता है स्याद्वादी—"स्याद्वादी ज्ञानं नित्यं उज्ज्वलं आसादयति" [स्याद्वादी] अनेकान्तवादी [ज्ञानं] ज्ञानमात्र जीववस्तुको [नित्यं] सर्वकाल एक समान [उज्ज्वलं] समस्त विकल्पसे रहित [आसादयति] स्वाद-रूप अनुभवता है । "अनित्यतापरिगमे अपि" यद्यपि उसमे पर्यायद्वारा अनित्यपना घटित होता है । कैसा है स्याद्वादी ? "तत् चिद्वस्तु अनित्यता परिमृशन्" [तत्] पूर्वोक्त [चिद्वस्तु] ज्ञानमात्र जीवद्रव्यको [अनित्यतां परिमृशन्] विनश्वररूप अनुभवता हुआ।

किस कारणसे ? "वृत्तिक्रमात्" [वृत्ति] पर्यायके [क्रमात्] कोई पर्याय होती है कोई पर्याय नाशको प्राप्त होती है ऐसे भावके कारण । भावार्थ इस प्रकार है कि पर्यायद्वारा जीव वस्तु अनित्य है ऐसा अनुभवता है स्याद्वादी ॥१५-२६१॥

(अनुष्टुप्)

इत्यज्ञानविमूढानां ज्ञानमात्रं प्रसाधयन् ।
आत्मतत्त्वमनेकान्तः स्वयमेवानुभूयते ॥१६-२६२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इति अनेकान्तः स्वयं अनुभूयते एव" [इति] पूर्वोक्त प्रकारसे [अनेकान्तः] स्याद्वाद [स्वयं] अपने प्रतापसे वलात्कार ही [अनुभूयते] अङ्गीकाररूप होता है, [एव] अवश्यकर । किनको अङ्गीकार होता है ? "अज्ञान-विमूढाना" [अज्ञान] पूर्वोक्त एकान्तवादमें [विमूढानां] मग्न हुए हैं जो मिथ्यादृष्टि जीव उनको । भावार्थ इस प्रकार है कि स्याद्वाद ऐसा प्रमाण है जिसे सुनते मात्र ही एकान्तवादी भी अङ्गीकार करते है । कैसा है स्याद्वाद ? "आत्मतत्त्वं ज्ञानमात्रं प्रसा-धयन्" [आत्मतत्त्वं] जीवद्रव्यको [ज्ञानमात्रं] चेतना सर्वस्व [प्रसाधयन्] ऐसा प्रमाण करता हुआ । भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानमात्र जीववस्तु है ऐसा स्याद्वाद साध सकता है, एकान्तवादी नही साध सकता ॥१६-२६२॥

(अनुष्टुप्)

एवं तत्त्वव्यवस्थित्या स्वं व्यवस्थापयन् स्वयम् ।
अलंघ्यशासनं जैनमनेकान्तो व्यवस्थितः ॥१७-२६३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एवं अनेकान्तः व्यवस्थितः" [एवं] इतना कहनेसे [अनेकान्तः] स्याद्वादको [व्यवस्थितः] कहनेका आरम्भ किया था सो पूर्ण हुआ । कैसा है अनेकान्त ? "स्व स्वयं व्यवस्थापयन्" [स्वं] अनेकातपनेको [स्वयं] अनेकांत-पनेके द्वारा [व्यवस्थापयन्] वलजोरीसे प्रमाण करता हुआ । किसके साथ ? "तत्त्व-व्यवस्थित्या" जीवके स्वरूपको साधनेके साथ । कैसा है अनेकान्त ? "जैन" सर्वज्ञ वीतराग-प्रणीत है । और कैसा है ? "अलघ्यशासनं" अमिट है उपदेश जिसका ऐसा है ॥१७-२६३॥



[१२]

साध्य-साधक-अधिकार

(वसन्ततिलका)

इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरोऽपि
यो ज्ञानमात्रमयतां न जहाति भावः।
एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं
तद्द्रव्यपर्ययमयं चिदिहास्ति वस्तु ॥१-२६४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"इह तत् चिद् वस्तु द्रव्यपर्ययमयं अस्ति" [इह] विद्यमान [तत्] पूर्वोक्त [चिद्वस्तु] ज्ञानमात्र जीवद्रव्य [द्रव्यपर्ययमयं अस्ति] द्रव्य-गुण-पर्यायरूप है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीव द्रव्यका द्रव्यपना कहा। कैसा है जीव द्रव्य ? "एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्र" [एवं] पूर्वोक्त प्रकार [क्रम] पहला विनशे तो अगला उपजे [अक्रम] विशेषणरूप है परन्तु न उपजे न विनशे, इसरूप है [विवर्ति] अंशरूप भेदपद्धति उससे [विवर्त] प्रवर्त रहा है [चित्रं] परम अचम्भा जिसमे ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि क्रमवर्ती पर्याय अक्रमवर्ती गुण इस प्रकार गुण–पर्यायमय है जीववस्तु। और कैसा है ? "य भाव इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरः अपि ज्ञानमात्रमयता न जहाति" [यः भावः] ज्ञानमात्र जीववस्तु [इत्यादि] द्रव्य गुण पर्याय इत्यादिसे लेकर [अनेकनिजशक्ति] अस्तित्व वस्तुत्व प्रमेयत्व अगुरुलघुत्व सूक्ष्मत्व कर्तृत्व भोक्तृत्व सप्रदेशत्व अमूर्तत्व ऐसी है। अनन्त गणनारूप द्रव्यकी सामर्थ्य उससे [सुनिर्भरः] सर्व काल भरितावस्थ है। [अपि] ऐसा है तथापि [ज्ञानमात्रमयतां न जहाति] ज्ञानमात्र भावको नही त्यागता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जो गुण है अथवा पर्याय है वह सर्व चेतनारूप है, इसलिए चेतनामात्र जीववस्तु है, प्रमाण है। भावार्थ इस प्रकार है कि पूर्वमे हुँडी लिखी थी कि उपाय तथा उपेय कहूगा। उपाय–जीव वस्तुकी प्राप्तिका साधन। उपेय–साध्य वस्तु। उसमे प्रथम ही साध्यरूप वस्तुका स्वरूप कहा, साधन कहते है ॥१-२६४॥

(वसन्ततिलका)

नैकान्तसंगतदृशा स्वयमेव वस्तु-
तत्त्वव्यवस्थितिमिति प्रविलोकयन्तः।
स्याद्वादशुद्धिमधिकामधिगम्य संतो
ज्ञानीभवन्ति जिननीतिमलंघयन्तः ॥२-२६५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"सन्तः इति ज्ञानीभवन्ति" [सन्तः] सम्यग्दृष्टि जीव [इति] इस प्रकार [ज्ञानीभवन्ति] अनादि कालसे कर्मबन्ध संयुक्त थे साम्प्रत सकल कर्मोका विनाश कर मोक्षपदको प्राप्त होते है। कैसे हैं सन्त ? "जिननीतिं अलघयन्त." [जिन] केवलीका [नीति] कहा हुआ जो मार्ग [अलंघयन्तः] उसी मार्ग पर चलते है, उस मार्गको उल्लघन कर अन्य मार्ग पर नही चलते हैं। कैसा करके ? "अधिकां स्याद्वादशुद्धि अधिगम्य" [अधिकां] प्रमाण है ऐसा जो [स्याद्वादशुद्धिं] अनेकान्तरूप वस्तुका उपदेश उससे हुआ है ज्ञानका निर्मलपना उसकी [अधिगम्य] सहायता पाकर। कैसे हैं सन्त ? "वस्तुतत्त्वव्यवस्थिति स्वय एव प्रविलोकयन्तः [वस्तु] जीवद्रव्यका [तत्त्व] जैसा है स्वरूप उसके [व्यवस्थितिं] द्रव्यरूप तथा पर्यायरूपको [स्वयं एव प्रविलोकयन्तः] साक्षात् प्रत्यक्षरूपसे देखते है। कैसे नेत्रसे देखते है ? "नैकातसंगतदृशा" [नैकांत] स्याद्वादसे [संगत] मिले हुए [दृशा] लोचनसे ॥२-२६५॥

(वसन्ततिलका)

ये ज्ञानमात्रनिजभावमयीमकंपां
भूमिं श्रयंति कथमप्यपनीतमोहाः।
ते साधकत्वमधिगम्य भवंति सिद्धा
मूढास्त्वमूमनुपलभ्य परिभ्रमंति ॥३-२६६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ते सिद्धा. भवन्ति" [ते] ऐसे हैं जो जीव वे [सिद्धाः भवन्ति] सकल कर्मकलंकसे रहित मोक्षपदको प्राप्त होते हैं। कैसे होकर ? "साधकत्वं अधिगम्य" शुद्ध जीवका अनुभवगर्भित है सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप कारण रत्नत्रय, उसरूप परिणमा है आत्मा ऐसा होकर। और कैसे है वे ? "ये ज्ञानमात्रनिजभावमयीं भूमि श्रयन्ति" [ये] जो कोई [ज्ञानमात्र] चेतना है सर्वस्व जिसका ऐसे [निजभाव] जीवद्रव्यके अनुभवरूप [मयीं] कोई विकल्प नही है जिसमें ऐसी [भूमिं] मोक्षकी

कारणरूप अवस्थाको [श्रयन्ति] प्राप्त होते है–एकाग्र होकर उस भूमिरूप परिणमते है। कैसी है भूमि ? "अकम्पा" निर्द्वन्द्वरूप सुख गर्भित है। कैसे है वे जीव ? "कथ अपि अपनीतमोहा" [कथं अपि] अनन्त काल भ्रमण करते हुए काललब्धिको पाकर [अपनीत] मिटा है [मोहाः] मिथ्यात्वरूप विभाव परिणाम जिनका ऐसे हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि ऐसा जीव मोक्षका साधक होता है "तु मूढा अमू अनुपलभ्य परिभ्रमन्ति" [तु] कहे हुए अर्थको दृढ करते है—[मूढाः] नही है जीववस्तुका अनुभव जिनको ऐसे जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव है वे [अमूं] शुद्ध जीवस्वरूपके अनुभवरूप अवस्थाको [अनुपलभ्य] पाये विना [परिभ्रमन्ति] चतुर्गति ससारमे रुलते है। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध जीव स्वरूपका अनुभव मोक्षका मार्ग है, दूसरा मार्ग नही है ॥३-२६६॥

(वसन्ततिलका)

स्याद्वादकौशलसुनिश्चलसंयमाभ्यां
यो भावयत्यहरहः स्वमिहोपयुक्तः।
ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्री-
पात्रीकृतः श्रयति भूमिमिमां स एकः ॥४-२६७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—ऐसी अनुभव भूमिकाको कैसा जीव योग्य है ऐसा कहते है—"स. एक. इमा भूमि श्रयति" [सः] ऐसा [एकः] यही एक जातिका जीव [इमां भूमिं] प्रत्यक्ष शुद्ध स्वरूपके अनुभवरूप अवस्थाके [श्रयति] अवलम्बनके योग्य है, अर्थात् ऐसी अवस्थारूप परिणमनेका पात्र है। कैसा है वह जीव ? "य स्व अहरह भावयति" [यः] जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव [स्वं] जीवके शुद्ध स्वरूपको [अहरहः भावयति] निरन्तर अखण्ड धाराप्रवाहरूप अनुभवता है। कैसा करके अनुभवता है ? "स्याद्वादकौशलसुनिश्चलसयमाभ्या" [स्याद्वाद] द्रव्यरूप तथा पर्यायरूप वस्तुके अनुभवका [कौशल] विपरीतपनासे रहित वस्तु जिस प्रकार है उस प्रकारसे अगीकार तथा [सुनिश्चलसंयमाभ्यां] समस्त रागादि अशुद्ध परिणतिका त्याग इन दोनोकी सहायतासे। और कैसा है ? "इह उपयुक्त" [इह] अपने शुद्ध स्वरूपके अनुभवमे [उपयुक्तः] सर्वकाल एकाग्ररूपसे तल्लीन है। और कैसा है ? "ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्रीपात्रीकृत" [ज्ञाननय] शुद्ध जीवके स्वरूपका अनुभव मोक्षमार्ग है, शुद्ध स्वरूपके अनुभव बिना जो कोई क्रिया है वह सर्व मोक्षमार्गसे शून्य है [क्रियानय] रागादि अशुद्ध परिणामका

त्याग प्राप्त हुए विना जो कोई शुद्ध स्वरूपका अनुभव कहता है वह समस्त झूठा है; अनुभव नही है, कुछ ऐसा ही अनुभवका भ्रम है, कारण कि शुद्ध स्वरूपका अनुभव अशुद्ध रागादि परिणामको मेट कर होता है। ऐसा है जो ज्ञाननय तथा क्रियानय उनका है जो [परस्परतीव्रमैत्री] परस्पर अत्यन्त मित्रपना—शुद्ध स्वरूपका अनुभव है सो रागादि अशुद्ध परिणतिको मेट कर है, रागादि अशुद्ध परिणतिका विनाश शुद्ध स्वरूपके अनुभव-को लिए हुए है, ऐसा अत्यन्त मित्रपना—उनका [पात्रीकृतः] पात्र हुआ है अर्थात् ज्ञाननय क्रियानयका एक स्थानक है। भावार्थ इस प्रकार है कि दोनों नयोंके अर्थसे विराजमान है ॥४-२६७॥

(वसन्ततिलका)

चित्पिंडचंडिमविलासिविकासहासः
शुद्धप्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः ।
आनंदसुस्थितसदास्खलितैकरूप-
स्तस्यैव चायमुदयत्यचलार्चिरात्मा ॥५-२६८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तस्य एव आत्मा उदयति" [तस्य] पूर्वोक्त जीवको [एव] अवश्य कर [आत्मा] जीव पदार्थ [उदयति] सकल कर्मका विनाश कर प्रगट होता है, अनन्त चतुष्टयरूप होना है। और कैसा प्रगट होता है? "अचलार्चि" सर्वकाल एकरूप है केवलज्ञान केवलदर्शन तेजपुञ्ज जिसका ऐसा है। और कैसा है? "चित्पिण्डचण्डिमविलासिविकासहास" [चित्पिण्ड] ज्ञानपुञ्जके [चण्डिम] प्रतापकी [विलासि] एकरूप परिणति ऐसा जो [विकास] प्रकाशस्वरूप उसका [हासः] निधान है। और कैसा है? "शुद्धप्रकाशभरनिर्भरसुप्रभात" [शुद्धप्रकाश] रागादि अशुद्ध परिणतिको मेट कर हुआ जो शुद्धत्वरूप परिणाम उसकी [भर] वार वार जो शुद्धत्वरूप परिणति उससे [निर्भर] हुआ है [सुप्रभातः] साक्षात् उद्योत जिसमे ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार रात्रिसम्वन्धी अन्धकारके मिटने पर दिवस उद्योत स्वरूप प्रगट होता है उसी प्रकार मिथ्यात्व राग द्वेपरूप अशुद्ध परिणतिको मेट कर शुद्धत्व परिणाम विराजमान जीवद्रव्य प्रगट होता है। और कैसा है? "आनन्द-सुस्थितसदास्खलितैकरूप" [आनन्द] द्रव्यके परिणामरूप अतीन्द्रिय सुखके कारण [सुस्थित] जो आकुलतासे रहितपना उससे [सदा] सर्वकाल [अस्खलित] अमिट है [एकरूपः] तद्रूप सर्वस्व जिसका ऐसा है ॥५-२६८॥

(वसन्ततिलका)

स्याद्वाददीपितलसन्महसि प्रकाशे
शुद्धस्वभावमहिमन्युदिते मयीति ।
किं बंधमोक्षपथपातिभिरन्यभावै-
र्नित्योदयः परमय स्फुरतु स्वभावः ॥६-२६९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अय स्वभाव पर स्फुरतु" [अयं स्वभावः] विद्यमान है जो जीव पदार्थ [परं स्फुरतु] यही एक अनुभवरूप प्रगट होओ। कैसा है ? "नित्योदय" सर्व काल एकरूप प्रगट है। और कैसा है ? "इति मयि उदिते अन्यभावैः किं" [इति] पूर्वोक्त विधिसे [मयि उदिते] मैं शुद्ध जीवस्वरूप हूँ ऐसा अनुभवरूप प्रत्यक्ष होने पर [अन्यभावैः] अनेक है जो विकल्प उनसे [किं] कौन प्रयोजन है ? कैसे हैं अन्य भाव ? "बन्धमोक्षपथपातिभि" [बन्धपथ] मोह-राग-द्वेष बन्धका कारण है, [मोक्षपथ] सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है ऐसे जो पक्ष उनमे [पातिभिः] पड़नेवाले है अर्थात् अपने अपने पक्षको कहते हैं, ऐसे है अनेक विकल्परूप। भावार्थ इस प्रकार है कि ऐसे विकल्प जितने काल तक होते है उतने काल तक शुद्ध स्वरूपका अनुभव नही होता। शुद्ध स्वरूपका अनुभव होने पर ऐसे विकल्प विद्यमान ही नही होते, विचार किसका किया जाय। कैसा हूँ मैं ? "स्याद्वाददीपितलसन्महसि" [स्याद्वाद] द्रव्यरूप तथा पर्यायरूपसे [दीपित] प्रगट हुआ है [लसत्] प्रत्यक्ष [महसि] ज्ञानमात्र स्वरूप जिसका। और कैसा हूँ ? "प्रकाशे" सर्व काल उद्योत स्वरूप हूँ। और कैसा हूँ ? "शुद्धस्वभावमहिमनि" [शुद्धस्वभाव] शुद्धपनाके कारण [महिमनि] प्रगटपना है जिसका ॥६-२६९॥

(वसन्ततिलका)

चित्रात्मशक्तिसमुदायमयोऽयमात्मा
सद्यः प्रणश्यति नयेक्षणखंडयमानः ।
तस्मादखंडमनिराकृतखंडमेक-
मेकांतशांतमचलं चिदहं महोऽस्मि ॥७-२७०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"तस्मात् अह चित् मह अस्मि" [तस्मात्] तिस कारणसे [अहं] मैं [चिन्महः अस्मि] ज्ञानमात्र प्रकाशपुञ्ज हूँ। और कैसा हूँ ?

"अखण्डं" अखण्डित प्रदेश हूँ। और कैसा हूँ ? "अनिराकृतखंडं" किसीके कारण अखण्ड नही हुआ हूँ, सहज ही अखण्डरूप हूँ। और कैसा हूँ ? "एकं" समस्त विकल्पो से रहित हूं। और कैसा हूं ? "एकांतशान्त" [एकांत] सर्वथा प्रकार [शान्तं] समस्त पर द्रव्योसे रहित हूँ। और कैसा हूँ ? "अचल" अपने स्वरूपसे सर्व कालमें अन्यथा नही हूं। ऐसा चैतन्य स्वरूप मै हू। जिस कारणसे "अय आत्मा नयेक्षणखण्डचमान: सद्य. प्रणश्यति" [अयं आत्मा] यह जीव वस्तु [नय] द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक ऐसे अनेक विकल्प वे हुए [ईक्षण] अनेक लोचन उनके द्वारा [खण्डचमानः] अनेकरूप देखा हुआ [सद्यः प्रणश्यति] खण्ड खण्ड होकर मूलसे खोज मिटा–नाशको प्राप्त होता है। इतने नय एकमे कैसे घटित होते है ? उत्तर इस प्रकार है—क्योकि ऐसा है जीवद्रव्य—"चित्रात्मशक्तिसमुदायमय" [चित्र] अनेक प्रकार अस्तिपना नास्तिपना एकपना अनेकपना ध्रुवपना अध्रुवपना इत्यादि अनेक हैं ऐसे जो [आत्मशक्ति] जीवद्रव्यके गुण उनका जो [समुदाय] द्रव्यसे अभिन्नपना [मयः] उस मय अर्थात् ऐसा है जीवद्रव्य; इसलिए एक शक्तिको कहता है एक नय, किन्तु अनन्त शक्तियाँ है, इस कारण एक एक नय करते हुए अनन्ता नय होते हैं। ऐसा करते हुए बहुत विकल्प उपजते है, जीवका अनुभव खो जाता है। इसलिए निर्विकल्प ज्ञान वस्तुमात्र अनुभव करने योग्य है ॥७-२७०॥

न द्रव्येण खंडयामि, न क्षेत्रेण खंडयामि, न कालेन खंडयामि, न भावेन खंडयामि; सुविशुद्ध एको ज्ञानमात्रः भावोऽस्मि ।*

खण्डान्वय सहित अर्थ—"ज्ञानमात्र: भाव. अस्मि" [भावः अस्मि] मैं वस्तु स्वरूप हू। और कैसा हू ? [ज्ञानमात्रः] चेतनामात्र है सर्वस्व जिसका ऐसा हू। "एक" समस्त भेद विकल्पोसे रहित हू। और कैसा हू ? "सुविशुद्ध." द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मरूप उपाधिसे रहित हू। और कैसा हू ? "द्रव्येण न खण्डयामि" जीव स्वद्रव्यरूप है ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हू। "क्षेत्रेण न खण्डयामि" जीव स्वक्षेत्ररूप है ऐसा अनुभवने पर भी मै अखण्डित हू। "कालेन न खण्डयामि" जीव स्वकालरूप है ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हू। "भावेन न खण्डयामि" जीव स्वभावरूप है ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हू। भावार्थ इस प्रकार है कि एक जीव वस्तु स्वद्रव्य

* श्री समयसारकी आत्मख्याति टीकामे इस अशको कलश रूप नही गिनकर गद्यरूप गिना गया है। अत. आत्मख्यातिमे उसको कलश रूपसे नम्बर नही दिया गया है।

स्वक्षेत्र स्वकाल स्वभावरूप चार प्रकारके भेदो द्वारा कही जाती है तथापि चार सत्ता नही है एक सत्ता है। उसका दृष्टान्त—चार सत्ता इस प्रकारसे तो नही है कि जिस प्रकार एक आम्र फल चार प्रकार है। उसका विवरण—कोई अश रस है, कोई अश छिलका है, कोई अश गुठली है, कोई अश मीठा है। उसी प्रकार एक जीव वस्तु कोई अश जीवद्रव्य है, कोई अश जीवक्षेत्र है, कोई अश जीवकाल है, कोई अश जीवभाव है—इस प्रकार तो नही है। ऐसा मानने पर सर्व विपरीत होता है। इस कारण इस प्रकार है कि जिस प्रकार एक आम्र फल स्पर्श रस गन्ध वर्ण विराजमान पुद्गलका पिण्ड है, इसलिए स्पर्शमात्रसे विचारने पर स्पर्शमात्र है, रसमात्रसे विचारने पर रसमात्र है, गन्धमात्रसे विचारने पर गन्धमात्र है, वर्णमात्रसे विचारने पर वर्णमात्र है। उसी प्रकार एक जीव वस्तु स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव विराजमान है, इसलिए स्वद्रव्यरूपसे विचारने पर स्वद्रव्यमात्र है, स्वक्षेत्ररूपसे विचारने पर स्वक्षेत्रमात्र है, स्वकालरूपसे विचारने पर स्वकालमात्र है, स्वभावरूपसे विचारने पर स्वभावमात्र है। इस कारण ऐसा कहा कि जो वस्तु है वह अखण्डित है। अखण्डित शब्दका ऐसा अर्थ है।

(शालिनी)

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव।
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन्
ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ॥८-२७१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्धके ऊपर वहुत भ्रान्ति चलती है सो कोई ऐसा समझेगा कि जीव वस्तु ज्ञायक, पुद्गलसे लेकर भिन्न रूप छह द्रव्य ज्ञेय है। सो ऐसा तो नही है। जैसा इस समय कहते है उस प्रकार है—"अह अय य ज्ञानमात्र भाव अस्मि" [**अहं**] मैं [**अयं यः**] जो कोई [**ज्ञानमात्रः-भावः अस्मि**] चेतना सर्वस्व ऐसा वस्तुस्वरूप हू "स ज्ञेय न एव" वह मैं ज्ञेयरूप हूं परन्तु ऐसा ज्ञेयरूप नही हू। कैसा ज्ञेयरूप नही हू—"ज्ञेय ज्ञानमात्रः" [**ज्ञेयः**] अपने जीवसे भिन्न छह द्रव्योके समूहका [**ज्ञानमात्रः**] जानपना मात्र। भावार्थ इस प्रकार है कि मैं ज्ञायक समस्त छह द्रव्य मेरे ज्ञेय ऐसा तो नही है। तो कैसा है ? ऐसा है—"ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्र ज्ञेय" [**ज्ञान**] जानपनारूप शक्ति [**ज्ञेय**] जानने योग्य

शक्ति [ज्ञातृ] अनेक शक्ति विराजमान वस्तुमात्र ऐसे तीन भेद [मद्वस्तुमात्रः] मेरा स्वरूपमात्र है [ज्ञेयः] ऐसा ज्ञेयरूप हूं। भावार्थ इस प्रकार है कि मैं अपने स्वरूपको वेद्य-वेदकरूपसे जानता हूं, इसलिए मेरा नाम ज्ञान, यतः मैं आप द्वारा जानने योग्य हूं, इसलिए मेरा नाम ज्ञेय, यतः ऐसी दो शक्तियोंसे लेकर अनन्त शक्तिरूप हूं, इसलिए मेरा नाम ज्ञाता। ऐसा नामभेद है, वस्तुभेद नही है। कैसा हूं ? "ज्ञानज्ञेयकल्लोलवल्गन्" [ज्ञान] जीव ज्ञायक है [ज्ञेय] जीव ज्ञेयरूप है ऐसा जो [कल्लोल] वचनभेद उससे [वल्गन्] भेदको प्राप्त होता हूं। भावार्थ इस प्रकार है कि वचनका भेद है, वस्तुका भेद नही है ॥८-२७१॥

(पृथ्वी)

क्वचिल्लसति मेचकं क्वचिन्मेचकामेचकं
क्वचित्पुनरमेचकं सहजमेव तत्त्वं मम।
तथापि न विमोहयत्यमलमेधसां तन्मनः
परस्परसुसंहतप्रकटशक्तिचक्रं स्फुरत् ॥९-२७२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इस प्रकार है कि इस शास्त्रका नाम नाटक समयसार है, इसलिए जिस प्रकार नाटकमे एक भाव अनेक रूपसे दिखाया जाता है उसी प्रकार एक जीवद्रव्य अनेक भावों द्वारा साधा जाता है—"मम तत्त्व" मेरा ज्ञानमात्र जीवपदार्थ ऐसा है। कैसा है ? "क्वचित् मेचकं लसति" कर्म संयोगसे रागादि विभावरूप परिणतिसे देखने पर अशुद्ध है ऐसा आस्वाद आता है। "पुन." एकान्तसे ऐसा ही है ऐसा नही है। ऐसा भी है—"क्वचित् अमेचक" एक वस्तुमात्ररूप देखने पर शुद्ध है। एकान्तसे ऐसा भी नही है। तो कैसा है ? "क्वचित् मेचकामेचक" अशुद्धपरिणतिरूप तथा वस्तुमात्ररूप एक ही बारमें देखने पर अशुद्ध भी है, शुद्ध भी है इस प्रकार दोनों विकल्प घटित होते हैं। ऐसा क्यो है ? [सहजं] स्वभावसे ऐसा ही है। "तथापि" तो भी "अमलमेधसां तत् मनः न विमोहयति" [अमलमेधसां] सम्यग्दृष्टि जीवोंकी [तत् मनः] तत्त्वज्ञानरूप है जो बुद्धि वह [न विमोहयति] संशयरूप नही होती—भ्रमको प्राप्त नही होती है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवका स्वरूप शुद्ध भी है, अशुद्ध भी है, शुद्ध-अशुद्ध भी है ऐसा कहने पर अवधारण करनेमें भ्रमको स्थान है तथापि जो स्याद्वादरूप वस्तुका अवधारण करते हैं उनके लिए सुगम है, भ्रम नही उत्पन्न होता है। कैसी है वस्तु ? "परस्परसुसंहतप्रकटशक्तिचक्र"

[परस्परसुसंहत] परस्पर मिली हुई है [प्रकटशक्ति] स्वानुभवगोचर जो जीवकी अनेक शक्ति उनका [चक्रं] समूह है जीव वस्तु । और कैसी है ? [स्फुरत्] सर्वकाल उद्योतमान है ॥९-२७२॥

(पृथ्वी)

इतो गतमनेकतां दधदितः सदाप्येकता-
मितः क्षणविभंगुरं ध्रुवमितः सदैवोदयात् ।
इतः परमविस्तृतं धृतमितः प्रदेशैर्निजै-
रहो सहजमात्मनस्तदिदमद्भुतं वैभवम् ।१०-२७३।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अहो आत्मन· तत् इदं सहज वैभव अद्भुत" [अहो] सबोधन वचन । [आत्मनः] जीव वस्तुकी [तत् इदं सहजं] अनेकान्त स्वरूप ऐसी [वैभवं] आत्माके गुणस्वरूप लक्ष्मी [अद्भुतं] अचम्भा उपजाती है । किस कारणसे ऐसी है ? "इत अनेकतां गत" [इतः] पर्यायरूप दृष्टिसे देखने पर [अनेकतां] अनेक है ऐसे भावको [गतं] प्राप्त हुई है । "इत. सदा अपि एकता दधत्" [इतः] उसी वस्तुको द्रव्यरूपसे देखने पर [सदा अपि एकतां दधत्] सदा ही एक है ऐसी प्रतीतिको उत्पन्न करती है । और कैसी है ? "इत. क्षणविभगुर" [इतः] समय समय प्रति अखण्ड धाराप्रवाहरूप परिणमती है ऐसी दृष्टिसे देखने पर [क्षणविभंगुरं] विनशती है उपजती है । "इत. सदा एव उदयात् ध्रुव" [इतः] सर्व काल एक रूप है ऐसी दृष्टिसे देखने पर [सदा एव उदयात्] सर्व काल अविनश्वर है ऐसा विचार करने पर [ध्रुवं] शाश्वत है । "इतः" वस्तुको प्रमाणदृष्टिसे देखने पर "परमविस्तृत" प्रदेशोसे लोक-प्रमाण है, ज्ञानसे ज्ञेयप्रमाण है । "इतः निजैः प्रदेशै धृत" [इतः] निज प्रमाणकी दृष्टिसे देखनेपर [निजैः प्रदेशैः] अपने प्रदेशमात्र [धृतं] प्रमाण है ॥१०-२७३॥

(पृथ्वी)

कषायकलिरेकतः स्खलति शांतिरस्त्येकतो
भवोपहतिरेकतः स्पृशति मुक्तिरप्येकतः ।
जगत्त्रितयमेकतः स्फुरति चिच्चकास्त्येकतः
स्वभावमहिमात्मनो विजयतेऽद्भुतादद्भुतः ।११-२७४।

खण्डान्वय सहित अर्थ—"आत्मनः स्वभावमहिमा विजयते" [आत्मनः] जीव द्रव्यकी [स्वभावमहिमा] स्वरूपकी बडाई [विजयते] सबसे उत्कृष्ट है । कैसी है

महिमा ? "अद्भुतात् अद्भुतः" आश्चर्यसे आश्चर्यरूप है। वह कैसा है आश्चर्य ? "एकतः कपायकलिः स्खलति" [एकतः] विभावपरिणामशक्तिरूप विचारने पर [कषाय] मोह-राग-द्वेषका [कलिः] उपद्रव होकर [स्खलति] स्वरूपसे भ्रष्ट हो परिणमता है, ऐसा प्रगट ही है। "एकतः शान्तिः अस्ति" [एकतः] जीवके शुद्ध स्वरूपका विचार करने पर [शान्तिः अस्ति] चेतनामात्र स्वरूप है, रागादि अशुद्धपना विद्यमान ही नहीं है। और कैसा है ? "एकत. भवोपहतिः अस्ति" [एकतः] अनादि कर्मसंयोगरूप परिणमा है इस कारण [भव] संसार चतुर्गतिमें [उपहतिः] अनेक वार परिभ्रमण [अस्ति] है। "एकतः मुक्तिः स्पृशति" [एकतः] जीवके शुद्धस्वरूपका विचार करने पर [मुक्तिः स्पृशति] जीव वस्तु सर्वकाल मुक्त है ऐसा अनुभवमें आता है। और कैसा है ? "एकतः जगत्त्रितयं स्फुरति" [एकतः] जीवका स्वभाव स्वपरज्ञायक है ऐसा विचार करने पर [जगत्] समस्त ज्ञेय वस्तुकी [त्रितयं] अतीत अनागत वर्तमान कालगोचर पर्याय [स्फुरति] एक समय मात्र कालमें ज्ञानमें प्रतिबिम्बरूप है। "एकतः चित् चकास्ति" [एकतः] वस्तुके स्वरूप सत्तामात्रका विचार करने पर [चित्] शुद्ध ज्ञानमात्र [चकास्ति] शोभित होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि व्यवहार मात्रसे ज्ञान समस्त ज्ञेयको जानता है, निश्चयसे नही जानता है, अपना स्वरूपमात्र है, क्योकि ज्ञेयके साथ व्याप्य-व्यापकरूप नहीं है ॥११-२७४॥

(मालिनी)

जयति सहजतेजःपुंजमज्जत्त्रिलोकी-
स्खलदखिलविकल्पोऽप्येक एव स्वरूपः।
स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतत्त्वोपलंभः
प्रसभनियमितार्चिश्चिच्चमत्कार एषः ॥१२-२७५॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एपः चिच्चमत्कारः जयति" अनुभव प्रत्यक्ष ज्ञानमात्र जीव वस्तु सर्व कालमें जयवन्त प्रवर्तो। भावार्थ इस प्रकार है कि साक्षात् उपादेय है। कैसी है ? "सहजतेज.पुञ्जमज्जत्त्रिलोकीस्खलदखिलविकल्पः" [सहजः] द्रव्यके स्वरूप-भूत [तेजः पुञ्ज] केवलज्ञानमे [मज्जत्] ज्ञेयरूपसे मग्न जो [त्रिलोकी] समस्त ज्ञेय वस्तु उसके कारण [स्खलत्] उत्पन्न हुआ है [अखिलविकल्पः] अनेक प्रकार पर्याय-भेद जिसमें ऐसी है ज्ञानमात्र जीववस्तु। "अपि" तो भी "एकः एव स्वरूपः" एक

ज्ञानमात्र जीववस्तु है। और कैसी है ? "स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतत्त्वोपलम्भ" [स्वरस] चेतनास्वरूपकी [विसर] अनन्त शक्ति उससे [पूर्ण] समग्र है [अच्छिन्न] अनन्त काल तक शाश्वत है ऐसे [तत्त्व] जीव वस्तुस्वरूपकी [उपलम्भः] हुई है प्राप्ति जिसको ऐसी है। और कैसी है ? "प्रसभनियमितार्चि" [प्रसभ] ज्ञानावरण कर्मका विनाश होने पर प्रगट हुआ है [नियमित] जितना था उतना [अर्चिः] केवलज्ञान स्वरूप जिसका ऐसी है। भावार्थ इस प्रकार है कि परमात्मा साक्षात् निरावरण है ॥१२-२७५॥

(मालिनी)

अविचलितचिदात्मन्यात्मनात्मानमात्म-
न्यनवरतनिमग्नं धारयद् ध्वस्तमोहम् ।
उदितममृतचन्द्रज्योतिरेतत्समन्ता-
ज्ज्वलतु विमलपूर्णं निःसपत्नस्वभावम् ॥१३-२७६॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"एतत् अमृतचन्द्रज्योति उदित" [एतत्] प्रत्यक्ष-रूपसे विद्यमान "अमृतचन्द्रज्योति." इस पदके दो अर्थ हैं। प्रथम अर्थ—[अमृत] मोक्षरूपी [चन्द्र] चन्द्रमाका [ज्योतिः] प्रकाश [उदितं] प्रगट हुआ। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध जीवस्वरूप मोक्षमार्ग ऐसे अर्थका प्रकाश हुआ। दूसरा अर्थ इस प्रकार है कि [अमृतचन्द्र] नाम है टीकाके कर्ता आचार्यका सो उनकी [ज्योतिः] बुद्धिका प्रकाशरूप [उदितं] शास्त्र सम्पूर्ण हुआ। शास्त्रको आशीर्वाद देते हुए कहते है—"नि सपत्नस्वभाव समन्तात् ज्वलतु" [निःसपत्न] नही है कोई शत्रु जिसका ऐसा [स्वभाव] अबाधित स्वरूप [समन्तात्] सर्व काल सर्व प्रकार [ज्वलतु] परिपूर्ण प्रताप सयुक्त प्रकाशमान होओ। कैसा है ? "विमलपूर्ण" [विमल] पूर्वापर विरोध-रूप मलसे रहित है तथा [पूर्ण] अर्थसे गम्भीर है। "ध्वस्तमोह" [ध्वस्त] मूलसे उखाड दी है [मोहं] भ्रान्तिको जिसने ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि इस शास्त्र-मे शुद्ध जीवका स्वरूप नि.सन्देहरूपसे कहा है। और कैसा है ? "आत्मना आत्मनि आत्मान अनवरतनिमग्न धारयत्" [आत्मना] ज्ञानमात्र शुद्ध जीवके द्वारा [आत्मनि] शुद्ध जीवमे [आत्मानं] शुद्ध जीवको [अनवरतनिमग्नं धारयत्] निरन्तर अनुभव-गोचर करता हुआ। कैसा है आत्मा ? "अविचलितचिदात्मनि" [अविचलित] सर्व

काल एकरूपजो [चित्] चेतना वही है [आत्मनि] स्वरूप जिसका ऐसा है। नाटक समयसारमें अमृतचन्द्र सूरिने कहा जो साध्य-साधक भाव सो सम्पूर्ण हुआ। नाटक समयसार शास्त्र पूर्ण हुआ। यह आशीर्वाद वचन है ॥१३-२७६॥

(शार्दूलविक्रीडित)

यस्माद् द्वैतमभूत्पुरा स्वपरयोर्भूतं यतोऽत्रान्तरं
रागद्वेषपरिग्रहे सति यतो जातं क्रियाकारकैः ।
भुञ्जाना च यतोऽनुभूतिरखिलं खिन्ना क्रियायाः फलं
तद्विज्ञानघनौघमग्नमधुना किंचिन्न किंचित्किल ।१४-२७७।

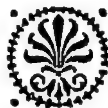
खण्डान्वय सहित अर्थ—"किल तत् किञ्चित् अखिल क्रियाया फलं अधुना तत् विज्ञानघनौघमग्न खिन्ना न किञ्चित्" [किल] निश्चयसे [तत्] जिसका अवगुण कहेंगे ऐसा जो [किञ्चित् अखिलं क्रियायाः फलं] कुछ एक पर्यायार्थिक नयसे मिथ्या-दृष्टि जीवके अनादि कालसे लेकर नाना प्रकारकी भोग सामग्रीको भोगते हुए मोह-राग-द्वेषरूप अशुद्ध परिणतिके कारण कर्मका बन्ध अनादि कालसे होता था सो [अधुना] सम्यक्त्वकी उत्पत्तिसे लेकर [तत् विज्ञानघनौघमग्नं] शुद्ध जीवस्वरूपके अनुभवमे समाता हुआ [खिन्ना] मिट गया सो [न किञ्चित्] मिटने पर कुछ है ही नही; जो था सो रहा। कैसा था क्रियाका फल ? "यस्मात् स्वपरयो. पुरा द्वैतं अभूत्" [यस्मात्] जिस क्रियाके फलके कारण [स्वपरयोः] यह आत्मस्वरूप यह परस्वरूप ऐसा [पुरा] अनादि कालसे लेकर [द्वैतं अभूत्] द्विविधापन हुआ। भावार्थ इस प्रकार है कि मोह-राग-द्वेष स्वचेतना परिणति जीवकी ऐसा माना। और क्रियाफलसे क्या हुआ ? "यतः अत्र अन्तर भूत" [यतः] जिस क्रियाफलके कारण [अत्र] शुद्ध जीववस्तुके स्वरूपमे [अन्तरं भूतं] अन्तराय हुआ। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवका स्वरूप तो अनन्त चतुष्टयरूप है। अनादिसे लेकर अनन्त काल गया, जीवने अपने स्वरूपको नही प्राप्त किया, चतुर्गति ससारका दु ख प्राप्त किया, सो वह भी क्रियाके फलके कारण। और क्रियाफलसे क्या हुआ ? "यत रागद्वेपपरिग्रहे सति क्रियाकारकै जात" [यतः] जिस क्रियाके फलसे [रागद्वेप] अशुद्ध परिणतिरूप [परिग्रहे] परिणाम हुआ। ऐसा [सति] होनेपर [क्रियाकारकैः जातं] जीव रागादि परिणामोका कर्ता है तथा भोक्ता है इत्यादि जितने विकल्प उत्पन्न हुए उतने क्रियाके फलसे उत्पन्न हुए। और क्रियाके

फलके कारण क्या हुआ ? "यत अनुभूति भुञ्जाना" [यतः] जिस क्रियाके फलके कारण [अनुभूतिः] आठ कर्मोके उदयका स्वाद [भुञ्जाना] भोगा। भावार्थ इस प्रकार है कि आठ ही कर्मोके उदयसे जीव अत्यन्त दुखी है सो भी क्रियाके फलके कारण ॥१४-२७७॥

(उपजाति)

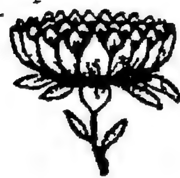
स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वै-
र्व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः ।
स्वरूपगुप्तस्य न किंचिदस्ति
कर्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः ॥१५-२७८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—"अमृतचन्द्रसूरे. किञ्चित् कर्तव्यं न अस्ति एव" [अमृतचन्द्रसूरेः] ग्रन्थकर्ताका नाम अमृतचन्द्रसूरि है, उनका [किञ्चित्] नाटक समयसारका [कर्तव्यं] करना [न अस्ति एव] नही है। भावार्थ इस प्रकार है कि नाटक समयसार ग्रन्थकी टीकाका कर्ता अमृतचन्द्र नामक आचार्य प्रगट हैं तथापि महान् है, बडे है, ससारसे विरक्त है, इसलिए ग्रन्थ करनेका अभिमान नही करते हैं। कैसे है अमृतचन्द्रसूरि ? "स्वरूपगुप्तस्य" द्वादशागरूप सूत्र अनादिनिधन है, किसीने किया नही है ऐसा जानकर अपनेको ग्रन्थका कर्तापना नही माना है जिन्होने ऐसे हैं। इस प्रकार क्यो है ? कारण कि "समयस्य इय व्याख्या शब्दै कृता" [समयस्य] शुद्ध जीवस्वरूपकी [इयं व्याख्या] नाटक समयसार नामक ग्रन्थरूप व्याख्या [शब्दैः कृता] वचनात्मक ऐसी शब्दराशिसे की गई है। कैसी है शब्दराशि ? "स्वशक्तिसंसूचित-वस्तुतत्त्वै." [स्वशक्ति] शब्दोमे है अर्थको सूचित करनेकी शक्ति उससे [संसूचित] प्रकाशमान हुआ है [वस्तु] जीवादि पदार्थोका [तत्त्वैः] द्रव्य-गुण पर्यायरूप, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप अथवा हेय-उपादेयरूप निश्चय जिसके द्वारा ऐसी है शब्दराशि ॥१५-२७८॥



समयसार-कलशकी वर्णानुक्रम सूची

*



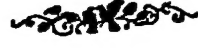
शुद्धि-पत्र



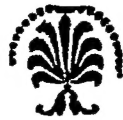
पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२५	८	पिवतीव	पिवतीव
३६	२४	कुम्भाभधाने	कुम्भाभिधाने
७७	२०	भरतौ	भरतो
१४६	१३	अनना	अनेना
१६६	४	कुट:	कुत
१६६	५	कुट:	कुत
१७७	१६	चैश्चिच्	कैश्चिच्
१८१	११	वलादुशुद्धि	बलादशुद्धि
१८२	१४	सञ्चित्य	सञ्चिन्त्य
२०१	१४	तृ	तृप्त



हमारे प्रकाशन



१.	प्रवचनसार गुजराती	—	—	१५००
२.	पचास्तिकाय गुजराती	—	—	१०००
३	प्रवचनसार हिन्दी	—	—	२०००
४	पचास्तिकाय हिन्दी	—	—	२५७०
५.	समयसार नाटक हिन्दी	—	—	३०००
६.	अष्टपाहुड हिन्दी	—	—	२०००
७.	अनुभवप्रकाश गुजराती	—	—	२१००
८.	परमात्मप्रकाश गुजराती	—	—	२२००
९.	आतमावलोकन गुजराती	—	—	२२००
१०.	बृहद् द्रव्यसंग्रह हिन्दी	—	—	२०००
११.	समयसार कलश हिन्दी	—	—	२०००




ॐ
श्री वीतराग सत्साहित्य प्रव शन ग्रन्थमाला
श्री वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट